महाकवि श्रीमदम्बिकादत्तव्यासरचित

शिवराजविजय



म प्रवृत्त हु...
तदनन्तर ...
अनुवाद के ...
के

पूर्व-कथन

संस्कृत गद्य-काव्य में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का अन्यतम स्थान है। [पु]रातन परम्पराओं से कुछ हटकर लिखा गया यह काव्य अपनी मौलिकता, [ऐ]तिहासिकता और सुबोधता के कारण बहुत ही जनप्रिय ही नहीं हुआ अपितु [विद्व]ान् आलोचकों का भी प्रशंसा का विषय बन गया। इस अर्वाचीन कृति के [मह]त्त्व को दृष्टिगत करते हुए कतिपय विश्वविद्यालयों के स्नातकीय या परा-[स्ना]तकीय परीक्षाओं में इसे स्थान दिया गया हैं। अस्तु, यत्किञ्चित्कारी [व्यव]सायात्मिका बुद्धि से प्रेरित होकर इसके प्रथम विराम की व्याख्या करने [मे]ं प्रवृत्त हुआ। व्याख्या में कुछ तथ्य अनमेय हैं—सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद, तदनन्तर संस्कृत-व्याख्या, हिन्दी-व्याख्या तथा टिप्पणी दी गई है। हिन्दी अनुवाद के शाब्दिक अनुवाद करने का प्रयास किया गया है किन्तु किसी विषय को भाषान्तरित करने में शाब्दिक अनुवाद असम्भव हो जाता है। इस कारण यत्किञ्चित् भाषात्मक अन्तर हो सकता हैं। संस्कृत व्याख्या अत्यन्त सरल रूप में दी गई है क्योंकि उसका भी उद्देश्य छात्रों के लिये बोधगम्य बनाना था। हिन्दी-व्याख्या में छात्रों एवं पाठकों की सुविधा के लिये शब्दों का हिन्दी में अर्थ, समास, व्युत्पत्ति, व्याकरण (प्रकृति-प्रत्यय आदि) विशेष रूप से दिये हैं जिससे पाठकों या छात्रों को विश्लेषणात्मक ज्ञान हो सके। इसके बाद टिप्पणी में अलङ्कार, रस, गुण तथा अन्य अन्तर्निहित वैशिष्ट्यों का उल्लेख है। इस प्रकार मूल को अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाने का प्रयास किया गया है। प्रारम्भ की भूमिका में संस्कृत गद्यकाव्य का इतिहास, गद्य की विधाएं अम्बिकादत्त व्यास का परिचय तथा शिवराजविजय की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख किया गया है जिससे परीक्षार्थियों को विशेष लाभ होगा।

इस ग्रन्थ की व्याख्या के लिये प्रेरणाप्रद पूज्य गुरुवर डॉ० कृष्णकान्त [त्रिप]ाठी को शिरोऽवनत हूँ तथा अन्य गुरुजनों एवं सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता [ज्ञापि]त करता हूँ। पुस्तक के प्रकाशन के लिये साहित्य भण्डार के प्रबन्धक [मह]ोदय साधुवाद के पात्र हैं क्योंकि उनकी उत्कृष्ट उत्कण्ठा के कारण ही इस [पु]स्तक के लेखन में मुझे द्रुतगति का आश्रय लेना पड़ा है।

—व्याख्याकार

भूमिका

(क) संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव और विकास

संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। इसमें पाश्चात्य एवं पौरात्य सभी विद्वानों को कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। सम्प्रति संस्कृत वाङ्मय गद्य एवं पद्य द्विविध रूप में प्राप्त है, उपलब्ध साहित्य के आधार पर पद्य की ही प्राचीनता कही जा सकती है। किन्तु गद्य या पद्य के प्राचीनतम आदिम रूप के सम्बन्ध में विद्वानों में वैमत्य है। प्रथम पक्ष के अनुसार गद्य मनुष्य की स्वाभाविक भाषा होने के कारण आरम्भ में गद्यात्मक साहित्य का ही विकास हुआ होगा। ऋग्वेद के संवाद सूक्तों और यजुर्वेद के प्राप्त गद्य-खण्डों के आधार पर इस मत की पुष्टि की जा सकती है। दासगुप्ता ने भी इसी मत को प्रामाणिक सिद्ध किया है। द्वितीय पक्ष यह है कि साहित्य का प्रारम्भिक विकास पद्य के रूप में हुआ। प्राचीनतम ऋग्वेद पद्य में उपलब्ध है। भाषा-विदों ने भी भाषा की उत्पत्ति संगीत के आधार पर बताते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनुष्य की स्वाभाविक भाषा संगीतात्मक थी परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ से पद्य-साहित्य का ही विकास हुआ।

मेरी दृष्टि में द्वितीय मत अधिक समीचीन प्रतील होता है। पद्यात्मक वाणी मनुष्य की सहज प्रवृत्ति होने के कारण ही "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" इस सिद्धान्त की उद्भावना हुई और अलंकृत, परिमार्जित गद्य-विधान को कवियों की कसौटी माना गया। संस्कृत गद्य की प्रधान विशिष्टता 'शब्द लाघव' है इसका कारण समास की सत्ता है। 'ओज' गद्य का प्राण है और इसका प्रधान लक्षण 'समास वहुलता' है। दण्डी ने भी कहा है 'ओजः समास-भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्'। संस्कृत गद्य की वर्णन-शैली अत्यधिक अलंकृत है। संस्कृत में गद्य के लेखकों ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन को ही प्रधान लक्ष्य बनाया है।

संस्कृत गद्य का उद्भव—संस्कृत गद्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण हमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होता है। इस वेद की काठक और मैत्रेयी संहिताओं में भी गद्य की मात्रा न्यून नहीं है। इसके पश्चात् अथर्ववेद का छठा भाग पूर्णतया गद्यात्मक है। आगे चलकर समस्त ब्राह्मण और आरण्यक-ग्रन्थों की रचना भी गद्य में हुई। उपनिषदों में प्राचीन उपनिषद् भी गद्यात्मक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गद्य का उद्भव वैदिक काल में ही होता है। वैदिक साहित्य में गद्य का प्रयोग बहुत व्यापक और उदार रूप में हुआ है।

संस्कृत-गद्य का विकास

वैदिक गद्य साहित्य—वैदिक-साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे 'गाथा' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। वैदिकगद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है। 'ह', 'उ', 'वै' आदि अव्यय वाक्यालंकार के रूप में प्रयुक्त हैं, जिनसे रोचकता तथा सुन्दरता का समावेश हो जाता है। समासों का प्रायः अभाव है। उदाहरणों की बहुलता है। उपमा तथा रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों का सुन्दर संयोजन है। वैदिक गद्य का उदाहरण देखिये—

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।
सः प्रजापति सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥"

पौराणिक एवं शास्त्रीय गद्य—वैदिक गद्य के बाद पौराणिक एवं शास्त्रीय गद्य अत्यन्त प्रौढ़, समास बहुल एवं गाढ़बन्ध वाला है। अलंकृत होने के कारण इसमें साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। विष्णुपुराण का एक उदाहरण देखिये—

"यथैव व्योम्नि वह्निपिराडोपमं त्वामहपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवताकिञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्युक्ते भगवता सूर्येणनिजण्ठा दुन्मुच्यस्यमतकं नाम महामणिवरमवतार्य एकांते न्यस्तम्।"

शास्त्रीय गद्य में तत्वज्ञान सम्बन्धी दर्शन—ग्रन्थ, भाष्य एवं व्याकरण शास्त्र

सम्बन्धी ग्रन्थ आते हैं। ऐसे शास्त्रकारों में पतञ्जलि, शबर स्वामी, शङ्कराचार्य और जयन्तभट्ट प्रमुख हैं। पतञ्जलि के महाभाष्य में गद्य की रमणीयता कथोपकथन शैली में अभिव्यक्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अपने सामने बैठे छात्रों को समझा रहे हैं। यथा –

ये पुनः कार्याभाव निवृत्तौ यावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वा कुरू घटं कार्यमनेन करिष्यामीति।"

प्रौढ़मीमांसक शबर स्वामी ने 'कर्ममीमांसा पर लिखे गये सूत्रों पर भाष्य रचा, जिसमें सीधी सादी व्यास शैली का प्रयोग किया गया है। इसके बाद शंकराचार्य ने अपने भाष्यों में प्रौढ़ एवं प्राञ्जल गद्य का प्रयोग किया है। शंकराचार्य का गद्य माधुर्य तथा प्रसाद गुण सम्पन्न है, अतः उसमें साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। यथा—

"नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति।"

अर्थात् 'पैरों' से दौड़ने में समर्थ व्यक्ति को घुटनों से रेंगना शोभा नहीं देता।

शंकराचार्य का गद्य मात्रा में भी अधिक है। ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदों पर भाष्य लिखना उनके रचना चातुर्य का द्योतक है। जयन्तभट्ट द्वारा रचित 'न्यायमंजरी' का गद्य बड़ा ही सुन्दर, सरस तथा प्राञ्जल है। इनके गद्य में व्यंग्य उक्तियों की अधिकता है।

लौकिक गद्य का अभ्युदय—लौकिक गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें दण्डी, सुबन्धु और बाण की रचनाओं में मिलता है। किन्तु इनकी रचनाओं का गद्य अत्यन्त विकसित रूप में प्राप्त होता है। अतः निश्चय ही ये गद्य-काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। संस्कृत में गद्यात्मक-कथाओं का उदय ईसा से लगभग ४०० वर्ष पूर्व हो चुका था। वैयाकरण वार्तिककार कात्यायन (४०० ई० पू०) संस्कृत गद्य काव्य की आदिकालीन आख्यायिकाओं और आख्यान से परिचित थे। महाभाष्यकार पतञ्जलि (२०० ई० पू०) ने तीन आख्यायिकाओं, वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी का उदाहरण रूप में उल्लेख किया है—

"अधिकृत्य कृतेग्रन्थे" बहुलं लुग्वक्तव्यः वासवदत्ता सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी।"

काशिका में भी इन्हीं नामों का उल्लेख मिलता है परन्तु उनका पता अभी तक नहीं चला है। अतः निश्चय ही संस्कृत-गद्य अत्यन्त प्राचीन है। कुछ उपलब्ध शिलालेखों से संस्कृत-गद्य-काव्य के विकसित रूप की सूचना मिलती है। इनमें प्रमुख रुद्रदामन का गिरनार शिलालेख (१५० ई०) है। इसकी भाषा सरल, प्रवाहमयी एवं आलंकारिक है तथा कुछ बड़े तथा कुछ छोटे समासों का प्रयोग हुआ है।

अतः यह निश्चित हो जाता है कि जिस प्रौढ़ गद्य का प्रणयन दण्डी, सुबन्धु और वाण ने किया उसका उद्भव और विकास शताब्दियों पूर्व हो चुका था, किन्तु प्राचीन गद्यकाव्य के ग्रन्थ आज दुर्भाग्यवश उपलब्ध नहीं है।

संस्कृत गद्य-काव्य का समृद्धि युग—संस्कृत-गद्य-काव्य का समृद्धि युग गद्य काव्यकार दण्डी, सुबन्धु और वाण का युग माना जाता है। इन्होंने संस्कृत गद्य काव्य को अपनी उत्कृष्ट गद्यात्मक रचनाओं से चरम उन्नति प्रदान की।

१. दण्डी—दण्डी 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता भारवि के प्रपौत्र थे। दण्डी विदर्भ के निवासी थे और इन्हें नरसिंह वर्मा प्रथम का राज्याश्रय प्राप्त था। उनका स्थिति काल ७०० ई० के लगभग माना जाता है। राजशेखर के 'त्रयोदण्डि प्रवन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः' के अनुसार दण्डी की तीन रचनायें प्रतीत हैं। जिनमें 'काव्यादर्श' और 'दशकुमारचरित' निःसन्देह उनकी रचनायें हैं। तीसरी रचना के विषय में मतभेद है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के प्रकाश में आ जाने से बहुत लोग इसे ही दण्डी की तीसरी रचना मानते हैं।

'काव्यादर्श' अलंकार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ है। 'दशकुमार-चरित' में दश राजकुमार अपने देश देशान्तरों में भ्रमण तथा विचित्र अनुभवों का मनोरंजक वर्णन करते हैं। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में अवन्ती सुन्दरी की कथा है।

दण्डी की काव्य-शैली पाञ्चाली रीति है। अर्थ की स्पष्टता रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और शब्द का लालित्य ये दण्डी की शैली के विशेष गुण हैं। अतएव प्राचीन समीक्षकों ने कहा है—"दण्डिनः पदलालित्यम्" बड़े-बड़े जटिल समासों से दण्डी की शैली अधिकांशतः मुक्त है। डॉ० कीथ ने

उनकी मुख्य विशेषता उनका चरित्र-चित्रण माना है। दण्डी की काव्यात्मक विशेषताओं के कारण कतिपय आलोचक उन्हें वाल्मीकि और व्यास के बाद तीसरा कवि मानते हैं।

२. सुबन्धु—अलंकृत शैली के गद्य लेखकों में सुबन्धु का स्थान अत्यन्त उच्च है। सुबन्धु के स्थितिकाल के विषय में आलोचकों में मतभेद है। कुछ इन्हें बाण का पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती मानते हैं। अधिकांश विद्वान् इनका स्थितिकाल छठी शताब्दी का अन्तिम भाग निर्धारित करते हैं।

संस्कृत गद्य में सुबन्धु का यश उनकी एकमात्र रचना वासवदत्ता पर अवलम्बित है। वासवदत्ता में राजकुमारी वासवदत्ता की कथा है जिसमें कथानक नितान्त स्वल्प है परन्तु वर्णन प्रचुर मात्रा में है। वस्तुतः कवि का मुख्य ध्येय अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करना ही है। सुबन्धु ने गौडी रीति का प्रयोग किया है उनके ग्रन्थ के प्रत्येक अक्षर में श्लेष है। सुबन्धु ने अपनी श्लेष प्रधान शैली के विषय में कहा है—

"प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्य निधि प्रबन्धम्।
सरस्वती दत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः॥"

श्लेष के अतिरिक्त विरोधाभास, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों की भी कमी नहीं है। दीर्घ समासों से युक्त गौडी रीति के प्रयोग के कारण उनकी शैली में प्रसाद और माधुर्य न होकर आडम्बर कृत्रिमता तथा क्लिष्टता ही अधिक है। सुबन्धु ने वर्णन-वैचित्र्य के कारण विशेष ख्याति अर्जित की।

३. बाण—संस्कृत-गद्य-काव्य का चरमोत्कर्ष हर्षवर्धन के आश्रित कवि बाणभट्ट की कादम्बरी में लक्षित होता है। हर्ष का राज्यकाल ६०६ ई० से ६४८ ई० है। अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है।

महाकवि बाण की पाँच कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—हर्षचरित, कादम्बरी, पार्वती-परिणय, चण्डीशतक और मुकुटताडितक।

बाण के काव्य में अल्पसमास शैली, दीर्घसमास शैली और समास रहित शैली—ये तीन प्रकार की शैलियाँ प्राप्त होती हैं। रीति की दृष्टि से बाण ने "पाञ्चाली रीति" का प्रयोग किया है। कादम्बरी में अर्थ के अनुरूप शब्दों

का प्रयोग किया है। 'ओजः समास भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्, के अनुसार बाण ने ओजगुणमण्डिता समास बहुल वाक्यों का प्रयोग किया है परन्तु उनके काव्य में छोटे-छोटे समास वाले वाक्य भी प्राप्त होते हैं। परिसंख्या, श्लेष, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि इनके प्रिय अलङ्कार हैं। उनकी दृष्टि प्रकृति के घोर और रम्य दोनों रूपों पर पड़ी है। डॉ० कीथ ने बाण की शैली के विषय में कहा है—"बाण ने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है जिसकी प्रशंसा करना तो सरल है पर उसका सफलतापूर्वक अनुसरण करना कठिन है। वास्तव में परवर्ती ऐसी कोई रचना हमारे सम्मुख नहीं है जो क्षणभर के लिये भी उसकी रचनाओं के समकक्ष रखी जा सके"।

परवर्ती संस्कृत गद्यकाव्यकार—महाकवि बाण के बाद प्रमुख गद्यकवि धनपाल (१० वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) ने सुप्रसिद्ध गद्य-काव्य 'तिलक मञ्जरी' की रचना की जिसमें उस समय में प्रचलित कलाओं का अत्यन्त रोचक वर्णन है। धनपाल के ही समकालीन वादीभसिंह का 'गद्यचिंतामणि' जैन पुराणों में उल्लिखित जीवन्धर की कथा का वर्णन सुन्दर शब्दों में करता है। इसमें भी कथानक और भाषा की दृष्टि से बाण का अनुकरण किया गया है। वामनभट्ट १५ वीं शती का 'वेम-भूपाल-चरित' हर्षचरित के अनुकरण पर लिखा गया आख्यायिका ग्रन्थ है। इसके बाद लगभग ४ शताब्दियों तक संस्कृत-गद्य में कोई प्रमुख रचना नहीं हुई।

आधुनिक युग के प्रमुख गद्य-कवि अम्बिकादत्तव्यास हैं जिन्होंने क्षत्रपति शिवाजी के जीवन को आधार बनाकर शिवराजविजय की रचना की। आपका गद्य दण्डी, बाण और सुबन्धु तीनों से प्रभावित है। शिवराजविजय सर्वप्रथम सन् १९०१ में प्रकाशित हुआ। व्यास जी के अतिरिक्त पं० हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य अपनी 'प्रबन्ध मञ्जरी' के कारण प्रसिद्ध हैं। वर्तमान युग के अन्य गद्यकार पण्डिता क्षमाराव, श्रीमदशास्त्री हरसूरकर, श्रीमती राजम्भा, श्री व्यवसाय शास्त्री (मद्रास) आदि हैं। पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने संस्कृत-गद्य में समीक्षात्मक प्रवृत्ति को आश्रय देकर अनेक आलोचनात्मक निबन्ध लिखे। आलोचनात्मक निबन्धों के लिये डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी का नाम भी प्रसिद्ध है।

आधुनिक युग में संस्कृत-गद्य के प्रसार में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का

महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। इनमें भवितव्यम् (नागपुर) पण्डित पत्रिका (काशी), भारतवाणी (पूना), शारदा (बम्बई), संस्कृत रत्नाकर (दिल्ली), सस्कृत पत्रिका (मैसूर) आदि प्रमुख हैं।

संस्कृत-गद्य-काव्य के विकास में उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि संस्कृत-गद्य का जो रूप वैदिक काल में था वह क्रमशः ब्राह्मण, पौराणिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों में विकसित होता हुआ, सप्तम शती में बाण, दण्डी एवं सुबन्धु के द्वारा चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् संस्कृत गद्य का लगभग अभाव रहा। इसका प्रमुख कारण हमारे देश में विदेशियों का आगमन था। बीसवीं शताब्दी में पुनः संस्कृत-गद्य की रचना प्रारम्भ हुई और आज भी संस्कृत-गद्य रचा जा रहा है किन्तु वह पत्र-पत्रिकाओं एवं लघुकाय निबन्धों के रूप में ही सीमित है और गद्य रचनाओं का जो रूप है वह समाज की जीवन झांकी को प्रस्तुत करने में पूर्णतया समर्थ नहीं है। इसका कारण परिवर्तित सामाजिक, राजनैतिक भाषात्मक एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ हैं।

गद्य साहित्य की मुख्यतः दो धाराएँ उपलब्ध होती हैं—

१. कथा या आख्यान साहित्य (नीतिपरक कथासाहित्य)।

२. गद्य काव्य की विधायें (काव्यपरक कथासाहित्य)।

२. **नीतिपरक कथा साहित्य**—विश्व-साहित्य में भारत के आख्यान-साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मौलिकता, रचना नैपुण्य तथा विश्व-व्यापक प्रभाव की दृष्टि से वह अनुपम और अद्वितीय सिद्ध हो चुका है। इन आख्यानों में शुद्ध काल्पनिक जगत् का चित्रण किया गया है। उनमें कहीं कुतूहल है, कहीं घटना वैचित्र्य है, कहीं हास्य और विनोद है, कहीं गम्भीर उपदेश है कहीं सरस काव्य की मधुर झलक है। संस्कृत कथा या आख्यान साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—नीति-कथा और लोक-कथा।

(क) **नीति-कथा**—उपदेशात्मक प्रवृत्ति का मनोरंजनकारी परिपाक नीति-कथाओं में हुआ है। नीति-कथाओं का उद्देश्य रोचक कहानियों द्वारा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की बातों का उपदेश देना है। नीति कथाओं का प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान है।

नीतिकथायें जहाँ नीतिशास्त्र का ज्ञान कराती हैं वहाँ वे संस्कृत भाषा की

सरल एवं रोचक शैली का आदर्श भी उपस्थित करती है। नीतिकथाओं की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें एक प्रधान कथा के अन्तर्गत कई गौण कथाओं का समावेश होता है।

पंचतन्त्र—'पंचतन्त्र' संस्कृत नीति-कथा-साहित्य का अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें नीति की बड़ी मनोहर शिक्षाप्रद कहानियाँ हैं। बादशाह खुसरू अनूशेरवाँ (५३१–५७९ ई०) के हुक्म से पहलवी भाषा में 'पंचतन्त्र' का प्रथम अनुवाद किया गया था। राजकार्य में संस्कृत-भाषी ब्राह्मणों का प्रधान स्थान हो गया था। अतः ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी जो संस्कृत का बोध कराने के साथ-साथ राजनीति की भी शिक्षा दे सकें। उसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर पंचतन्त्र की रचना हुई।

पंचतन्त्र की रचना का मूल उद्देश्य राजकुमारों को नीतिशास्त्र में निपुण बनाना था। पंचतन्त्र में केवल पाँच तन्त्र या भाग हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, सन्धि-विग्रह, लब्धप्रणाश तथा अपरीक्षाकारित्व। प्रत्येक भाग में मुख्य कथा के अन्तर्गत कई गौण कथायें आई हैं। उसमें पशु पक्षी, सदाचार, नीति और लोक व्यवहार के विषय में बातचीत करते हैं तथा धर्म-ग्रन्थों के सूक्ष्म विषयों पर विचार-विनिमय करते हैं।

'पंचतन्त्र' की शैली सरस और मुहावरेदार है। भाषा विषय के सर्वथा अनुरूप है। मुख्यतः बालकों के लिये रचित होने के कारण उसका गद्य अत्यन्त सुबोध है, समास बहुत कम या छोटे-छोटे हैं। कथानक का वर्णन गद्य में है, परन्तु उपदेशात्मक सूक्तियाँ पद्य में निहित हैं। 'महाभारत' तथा पालिजातकावलि संग्रह से भी अनेक पद्य लिये गये हैं। पंचतन्त्र की कथाओं का प्रचार विश्वव्यापि हुआ है। 'बाइबल' के बाद संसार की सबसे अधिक प्रचलित पुस्तक 'पंचतन्त्र' ही है।

हितोपदेश—पंचतन्त्र के बाद 'हितोपदेश' का ही नाम आता है। हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डित थे, जिनके आश्रयदाता बंगाल के कोई धवलचन्द्र राजा थे। 'हितोपदेश' की एक पाण्डुलिपि १३७३ ई० की पाई गई है, अतः उसकी रचना १४ वीं शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी। 'हितोपदेश' की

रचना बहुत कुछ 'पंचतन्त्र' के आधार पर ही हुई है।

हितोपदेश की ४३ कथाओं में से २५ तो पंचतन्त्र' से ही ली गई हैं। 'हितोपदेश' के चार परिच्छेद हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। प्रथम दो परिच्छेद प्रायः पंचतन्त्र से ही लिये गये हैं। पद्यों का बाहुल्य है।

(ख) लोक-कथा—उपदेश-प्रधान नीतिकथाओं के अतिरिक्त-मनोरञ्जनात्मक लोक-कथाओं का भी अस्तित्व संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। लोक-कथाओं का प्राचीनतम संग्रह गुणाढ्य-कृत 'बृहत्कथा' है। ब्यूलर के मतानुसार 'बृहत्कथा' प्रथम या द्वितीय शताब्दी ईसवी की कृति है। गुणाढ्य ने अपने समय की प्रचलित अनेक लोककथाओं को संगृहीत कर 'बृहत्कथा' की रचना की थी। 'रामायण' और बृहत्कथा' भी भारतीय साहित्य की एक अपूर्व निधि थी।

'बृहत्कथा' के दो तमिल संस्करण भी पाये जाते हैं। 'वेतालपंचविंशतिका' में २५ कहानियों का संग्रह है। 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' तथा द्वात्रिंशत्देत्तलिका भी एक मनोरञ्जक कहानी-संग्रह है।

अन्य प्रसिद्ध कथा संग्रहों में ये प्रमुख हैं—१५ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध मैथिल कवि विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा की रचना की, जिसमें ४४ नैतिक और राजनीतिक कहानियाँ हैं। शिवदास कृत 'कथार्णव' में चोरों और मूर्खों की ३५ कथायें हैं। १६ वीं शताब्दी के बल्लालसेन-विरचित 'भोजप्रबन्ध' में संस्कृत महाकवियों की अनेक रोचक दन्तकथायें दी गई हैं। नारायण-बालकृष्ण कृत 'ईस नीति कथा' में ईसप की कहानियों का अनुवाद है। बौद्धों के कथा-संग्रह 'अवदान' नाम से प्रख्यात हैं।

संस्कृत कथा-साहित्य का संसार में इतना अधिक प्रचार हुआ कि वे विश्व साहित्य की एक अंग बन गई। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है—"कि भारतीय आख्यान जितने विचित्र हैं, उससे कहीं अधिक विचित्र आर्य आख्यान साहित्य के विश्वविजय की कथा है।"

२. काव्यपरक कथा-साहित्य—

काव्यपरक गद्य साहित्य लगभग चार रूपों में प्राप्त होता है—

१. कथा, २. आख्यायिका, ३. लघुकथा और ४. उपन्यास।

१. कथा—

गद्य-काव्य की विधाओं में कथा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। दण्डी ने कथा का स्वरूप बताते हुए कहा है—कथा कवि कल्पित होती है। कथा में वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई रहता है। कथा में कन्या हरण, संग्राम, विप्रलम्भ' सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयों का वर्णन रहता है। कथा में लेखक किसी अभि-प्राय से कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग करता है।

'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बाणभट्ट ने इसे स्वयं कथा कहा है। बाण ने 'कादम्बरी' का कथा बीज गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से लिया है। उनमें उन्होंने अपनी प्रतिभा का पुट चढ़ाकर उसे एकसर्वथा नवीन एवं मौलिक रूप दे दिया है। सारी कथा कुतूहलमय रोचकता से ओत-प्रोत है।

बाण ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़े विशद रूप से किया है। सभी पात्र सजीव है। 'कादम्बरी' के चित्रण में बाण ने अपने अप्रतिम कल्पना-वैभव वर्णन-पटुता और मानव मनोवृत्तियों के मार्मिक निरीक्षण का परिचय दिया है।

प्रासाद, नगर, वन तथा आश्रमों का यथातथ्य वर्णन उनके पर्याप्त भ्रमण का द्योतक है। कादम्बरी का प्रधान रस शृङ्गार है। जन्म-जन्मान्तर के संचित संस्कारों का, जननान्तर सौहृद का सजीव चित्रण है, विस्मृत अतीत तथा जीवित वर्तमान को स्मृति के सुकुमार तारों से संयुक्त करने वाली काव्यशृंखला है। मानव हृदय की मूक प्रणय-वेदना की मर्मभरी कथा है।

२. आख्यायिका—

आख्यायिका गद्य-काव्य का एक अंग माना जाता है। आख्यायिका का स्वरूप इस प्रकार है—आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर अवलम्बित होती है। आख्यायिका में नायक स्वयं वक्ता होता है। आख्यायिका को हम एक प्रकार से आत्मकथा कह सकते हैं। आख्यायिका का विभाग अध्यायों में किया जाता है जिन्हें उच्छ्वास कहते हैं तथा उसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द के पद्यों का समावेश रहता है। आख्यायिका में सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयों का वर्णन नहीं रहता है।

'हर्षचरित' बाण की प्रथम कृति है। बाण स्वय कहते हैं कि यह आख्यायिका है। यह कृति आख्यायिका के सम्पूर्ण लक्षणों का संग्रह है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाण की आत्म-कथा वर्णित है तथा

शेष में सम्राट् हर्ष का जीवन चरित्र है। 'हर्षचरित' के रूप में ऐतिहासिक विषय पर गद्य-काव्य लिखने का प्रथम बार प्रयास किया है।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी 'हर्षचरित' में कई विशेषतायें हैं। बाण की अद्भुत वर्णन शक्ति का परिचय स्थान-स्थान पर मिलता है। प्रभाकर वर्णन के अन्तिम क्षणों का वर्णन ओज एवं कारुण्य के लिये हुआ है। छठे उच्छ्वास में सिंहनाद का उपदेश 'कादम्बरी' के शुकनासोपदेश की कोटि का ही है। हर्ष सर्वत्र एक महान् सम्राट् के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। राज्यवर्धन भी आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहशील भाई और शूर योद्धा है। इस प्रकार 'हर्षचरित' एक आख्यायिका मानी जाती है।

३. लघु-कथा—

संस्कृत के लक्षण ग्रन्थकारों ने आधुनिक लघुकथा जैसा कोई साहित्यिक रचना की चर्चा नहीं की है। कथा उस गद्यकाव्य को कहा गया है, जिसमें गद्य में ही सरस वस्तु का निर्माण हो—"कथायां सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ।" 'लक्षण ग्रन्थकारों' द्वारा दिये गये सम्पूर्ण लक्षण काल्पनिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों पर ही प्रयोग में आते हैं। उनके अनुसार 'कादम्बरी' कथा 'हर्षचरित आख्यायिका है तथापि 'गद्य में सरस वस्तु का निर्माण' लघुकथाओं पर ही प्रयुक्त हो सकता है।

लघु कथा के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार कहानी में वस्तु चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैली ये छः तत्त्व होते हैं और उन्ही के आधार पर कहानी साहित्य का मर्म समझा जा सकता है।

वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक संस्कृत के कथा-साहित्य का विकास विभिन्न युगीन परिस्थितियों के अनुकूल है भारतीय कथाकारों के सुन्दर शिल्प और मनोवैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत करने की निपुणता के कारण संसार के अनेक देशों में भारतीत कथायें अनुवाद के रूप में पहुंची है और वहाँ के कथारसिकों ने उनकी प्रशंसा की है। वैदिक संहिताओं में निहित कथातत्वों के बीज ब्राह्मण-ग्रन्थों और आरण्यकों की कथाओं व आख्यानों के रूप में अंकुरित, रामायण महाभारत व पुराणों के उपाख्यानों में पल्लवित, पञ्चतन्त्र, जातक तथा

बृहत्कथा के रूप में पुष्पित और दशकुमारचरित, वेतालपंचविंशतिका, हितोपदेश इत्यादि कथासंग्रहों में फलित हुये हैं।

आधुनिक संस्कृत गद्यकारों में पण्डिता क्षमाराव विशेष- उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं में 'कथा मुक्तावली' विशेष प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक व प्रारम्भिक दशक संस्कृत लघुकथाओं के विकास का युग कहा जा सकता है।' १८९८ ई० से १९१० की अवधि में संस्कृत की लघुकथाओं से सम्बद्ध नौ संग्रह निकले हैं। अम्बिकादत्तव्यास के "रत्नाष्टक" में हास्य व उपदेश प्रधान आठ कहानियों का संग्रह है। १८९८ ई० में व्यास जी का एक दूसरा कहानी संग्रह 'कथाकुसुमम्' नाम से निकला, जिसमें भावपूर्ण कहानियों का समावेश हैं।

४. उपन्यास—

अर्वाचीन गद्य की धाराओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास को सर्वथा नई काव्यरीति कहा जा सकता हैं। संस्कृत में उपन्यास-लेखन अनूदित साहित्य के साथ प्रारम्भ हुआ है। इस प्रकार सर्वप्रथम उपन्यास 'शिवराजविजय' है, जिसको अम्बिकादत्त व्यास ने १८७० ई० में लिखा था। अम्बिकादत्त व्यास की यह रचना मौलिक कृति के रूप में स्वीकार की जाती है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' नामक बंगला कृति का अनुवाद कृष्ण मोहनलाल जौहरी ने अंग्रेजी में 'शिवाजी' के नाम से प्रस्तुत किया था। अनुवाद की शैली को हृदयंगम करने के लिये देखिये–

Shivaji - On this mountain pass was a solitary horse-man galloping his horse.

संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का सौभाग्य 'शिवराज-विजय' को प्राप्त है जो अनुपम वाक्य-विन्यास, अलंकरण एवं शब्दश्लेष की दृष्टि से कादम्बरी से प्रभावित तथा रूपशिल्प की दृष्टि से बंग उपन्यासों के निकट है।"

बंगाली उपन्यासकार बंकिम बाबू के प्रायः समस्त उपन्यास संस्कृत में अनूदित हो चुके हैं। शैल ताताचार्य की 'क्षत्रिय रमणी' सरल भाषा में है। अप्पाशास्त्री ने 'देवीकुमुद्वती', 'इन्दिरा लावण्यमयी' तथा 'कृष्णकान्तस्य निर्वाणम्' कृतियों का अनुवाद करके संस्कृत-साहित्य की उपन्यास विधा को समृद्ध बनाया हैं। विधुशेखर ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के जयपराजयम् का अनुवाद किया था।

अंग्रेजी कृतियों को संस्कृत में रूपान्तरित कर उन्हें उपन्यास रीति में प्रस्तुत करने का श्रेय ए० आर० राजराजवर्म कोइतम्बुरान को है। उन्होंने शेक्सपीयर के नाटक 'ओथेलो' का रूपान्तरण "उद्दालचरितम्" नाम से किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे उपन्यासों की भी रचना हुई, जो रामायण, महाभारत्त व पुराणों पर आधारित कहे जा सकते हैं। इनमें लक्ष्मण सूरि के 'रामायण संग्रह', 'भीष्मविजयम्' 'महाभारतसंग्राम' उपन्यासों में कथाप्रवाह वर्णनातिरेक से अवरुद्ध सा हो गया है। पौराणिक उपन्यासकारों में शंकरलाल माहेश्वर अग्रगणनीय हैं। उनके 'अनसूयाभ्युदयम्' 'भगवती भाग्योदय:' 'चन्द्रप्रभाचरितम्' व 'महेश्वरप्राणप्रिया' हृदयावर्जक उपन्यास हैं। ऐतिहासिक घटनाओं को इस युग में उपन्यासबद्ध किया गया है। सामाजिक उपन्यासों की रचना इसी युग में हुई है।

(ख) पं० अम्बिकादत्त व्यास का स्थितिकाल एवं कृतियाँ

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' नामक गद्य-काव्य की रचना की, जो काशी से १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ। व्यास जी का स्थितिकाल १८५८-१९०० ई० था। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे पर इनके पितामह काशी में आकर बस गये थे। वहीं उनका अध्ययन सम्पन्न हुआ। 'बिहार-विहार' में उन्होंने 'संक्षिप्त निज वृतान्त' स्वयं लिखा है। मृत्यु के समय वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज पटना में प्रोफेसर थे। बिहार में "संस्कृत संजीवनी समाज" स्थापित कर उन्होंने संस्कृत शिक्षा प्रणाली का सुधार किया। व्यास जी ने छोटी-बड़ी मिलाकर संस्कृत और हिन्दी में कुल ७८ पुस्तकें लिखी हैं।

संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का सौभाग्य 'शिवराजविजय' को प्राप्त है। जो अनुपम वाक्य-विन्यास, अलङ्करण एवं शब्दश्लेष की दृष्टि से कादम्बरी से प्रभावित—रूप शिल्प की दृष्टि से बंग उपन्यासों के निकट है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे। १० वर्ष की

अवस्था में ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। लगभग १२ वर्ष की अवस्था में व्यास जी ने धर्मसभा की परीक्षा में पुरस्कार प्राप्त किया और श्री तैलङ्ग अष्टावधान के 'सुकविरेष:' कहने पर भारतेन्दु जी ने "काशीकविता वर्द्धिनी सभा" की ओर से उन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की।

बाल विवाह की प्रथा के कारण तेरह वर्ष की अवस्था में व्यास जी का विवाह हो गया। इनके पिता दुर्गादत्त पौरोहित्य कर्म से जीविकोपार्जन करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त परिवार का भरण-पोषण साधारण रूप से ही हो पाता था। दूसरी ओर व्यास जी का पारिवारिक जीवन भी सुखमय नहीं था। असमय में माता-पिता का देहावसान हो गया। यौवन की चोखट पर पाँव रखते ही उनके छोटे भाई ने अपनी पत्नी के सिन्दूर साफ कर दिये। इनकी छोटी बहन ने भी जीवन के वसन्तकाल में इनका साथ छोड़ दिया। इनके बड़े भाई इनसे द्वेष भाव रखते थे। इन अपार कष्टों, असीम वेदनाओं और अनेक मानसिक आघातों को भी अपने अन्तस् में समेट कर अपने कर्त्तव्य पथ पर हिमाचल की तरह अडिग रहे। उन्होंने शिव के समान सारे अशिव आसव का पान करके भी समाज को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का मिश्रित अमृत पिलाया।

व्यास जी सं० १९३७ में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करके १९४० में एक संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। कुछ दिन बाद वहाँ से त्याग-पत्र देकर मुजफ्फरपुर चले गये। जिला स्कूल के प्रधानपण्डित के पद पर कार्य करने लगे।

व्यास जी अप्रतिमप्रतिभाशाली थे। वक्ता और साहित्य स्रष्टा के साथ ही चित्रकारिता, अश्वारोहिता, संगीत और शतरंज में भी विशेष रुचि रखते थे। सितार, हारमोनियम, जल तरंग और मृदङ्ग इनके प्रिय वाद्य थे। व्यास जी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा के ज्ञाता थे। न्याय, व्याकरण, वेदान्त और दर्शन में इनकी अच्छी गति थी। कविता कला में इतने प्रवीण थे कि एक घड़ी में सौ श्लोकों की रचना कर सकते थे। सौ प्रश्नों को एक साथ ही सुनकर उन सभी का उत्तर उसी क्रम में देने की अद्भुत क्षमता थी। इसीलिये इन्हें "शतावधान' तथा 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी।

व्यास जी की लगभग ८० रचनाओं में 'शिवराजविजयम्' (उपन्यास), 'सामवतम्' (नाटक) गुप्ता-शुद्धि-प्रदर्शनम्, अबोधनिवारण तथा बिहारी विहार' (हिन्दी काव्य) प्रमुख थे।

२२ वर्ष की अवस्था में लिखा गया व्यास जी का 'सामवतम्' नाटक भाष्य, भाव और वर्ण्य की दृष्टि से अधिक उत्तम है। उसके विषय में डॉ० भगवानदास ने लिखा है--

"श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा 'सामवतम्' नामक नाटक दो बार पढ़ा। 'पुराणमित्येव हि साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित 'शकुन्तला' से किसी बात में कम नहीं है।"

"सामवत्तम्' नाटक को सं० १९४५ में मिथिलेश्वर को समर्पित करने के बाद ही शिवराजविजय की रचना आरम्भ कर दी और सं० १९५० में उसे पूरा कर दिया। सं० १९५२ में विहारी के दोहों पर आधारित कुण्डलियों में रचित 'बिहारी विहार' की रचना के बाद हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियों के चर्चा के विषय बन गये। इस ग्रन्थ की शोधपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध में जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है—

I have read the introduction with special interest and was much gratified to see so much fresh light thrown on difficult historical questions, indeed I have no hesitation in saying that it is a model of historical research conducted with industry and sobriety, both of which are unfortunately too often abandoned by writers in the country in favour of credulity and hasty conclusion.[1]

अम्बिकादत्त व्यास की सर्वश्रेष्ठ कृति उनका शिवराजविजय है। शिवराजविजय संस्कृत-गद्य-साहित्य में अन्यतम स्थान रखता है। बाण, दण्डी और सुबन्धु

---

१. 'बिहारी बिहार' परिशिष्ट, पृष्ठ-९।

के बाद व्यास जी का ही नाम आता है। यद्यपि अन्य बहुत से और भी गद्यकार हैं किन्तु साहित्यिक उत्कृष्टता, बौद्धिक प्रतिभा और सामाजिक आकलनों के वैशिष्ट्य के कारण व्यास जी प्रमुख गद्यकारों में परिगणित हैं। इस सबका अधिक श्रेय शिवराजविजय को है।

दुःख का विषय है कि ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति दीर्घायु नहीं हो सका। बयालीस वर्ष की अवस्था में ही महाकवि का सम्मान प्राप्त कर व्यासजी सोमवार, मार्ग शीर्ष त्रयोदशी, सं० १९५७ को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को असहाय छोड़कर पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो गये। किन्तु उनका यशःशरीर अजर और अमर है।

शिवराजविजय : एक कृति—शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक हैं, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथा-वस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गई है। यद्यपि इसमें दो स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं—एक के नायक शिवाजी हैं तो दूसरी के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि एक दूसरे से पूर्ण स्व-तन्त्र और निरपेक्ष नहीं हैं। एक दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व दूसरे से उद्भासित होता है। अतः दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है। शिवराजविजय की सम्पूर्ण कथा तीन निःश्वासों में समाहित है।

व्यास जी के शिवराजविजय में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। उनके सभी पात्र अपने चरित्र निर्वाह में पूरी तरह से खरे उतरते हैं। वीर शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, यशवन्तसिंह, अफजलखाँ, शाइस्तखाँ तथा ब्रह्मचारी आदि सदा अपनी स्वाभा-विकता और यथार्थता का निर्वाह करते हैं। उसमें न कहीं अतिशयता है और न कहीं न्यूनता या अस्पष्टता।

शिवराजविजय वीर रस प्रधान काव्य है तथापि उपकारी रूप में सभी रसों का चित्रण है। व्यास जी ने अलंकार-विधान में सदैव सजगता दिखाई है। यद्यपि इनका वर्णन कहीं पर अलंकृत नहीं है तथापि अनावश्यक अलंकार भार से बोझिल भी नहीं है।

गद्यकारों में सर्वाधिक अलंकार विधान बाण ने किया है। यदि इस क्षेत्र में उनके साथ व्यास जी को देखा जाय तो अन्तर यह दिखेगा कि इनकी कृति अनपेक्षित अलंकार भार से बोझिल नहीं है।

शिवराजविजय की शैली अत्यन्त सरल, सरस प्रवाहमयी है। भाषा की सरलता और भाव की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता होती है। कविकथ्य जितना ही सरल और सुन्दर ढङ्ग से कहा जाय, काव्य उतना ही हृदयग्राही और 'सद्यः परिनिवृतये' की भावना को प्राप्त करने वाला होता है।

अस्तु, 'शिवराजविजय' भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रोढ़ता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तर्द्वन्द्व, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की कसौटी पर खरा उतरता है।

शिवराजविजय का काव्य-शिल्प

भाषा-शैली—मनोगत भावों को परहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना-विधान को ही सम्भवतः शैली भी कहा जाता है। अतः सामन्यतः 'भाषा-शैली' से ऐसा प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस आधार के साथ यह कहा जा सकता है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है। '**शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्**, के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर। अतः भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है।

डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। दण्डी ने काव्यादर्श में—'अस्त्यनेको गिराममार्गः सूक्ष्मभेदपरस्परम्, कहा है।

इन भावनाओं के अनुसार स्थूलतः शैली के दो भेद किये जाते हैं—(१) समास शैली (२) व्यास शैली। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के आधार पर आजकल विद्वानों ने मार्ग (शैली) को चार प्रकार का माना है। किन्तु अनन्तर काल में इन्हें शैली न कहकर रीतियाँ कहा जाने लगा है। ये रीतियाँ चार हैं—(१) वैदर्भी (२) गौणी (३) पाञ्चाली (४) लाटी।

(१) कोमल वर्णों और असमानता अथवा अल्पसमासा, माधुर्यपूर्ण रचना वैदर्भी रीति है।

(२) महाप्राण-घोषवर्णा, ओजगुणसम्पन्ना तथा समास बहुला रचना गौणी है।

३. वैदर्भी और गौणी का सम्मिश्रण पाञ्चाली रीति है।

४. वैदर्भी और पाञ्चाली का सम्मिश्रण लाटी रीति है।

शिवराजविजय की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। पदावलियों के प्रयोग वर्ण्य-विषय के अनुसार होने चाहिये। एक ही विधा प्रत्येक वर्णन को प्रभावमय नहीं बना सकती और व्यास जी ने ऐसा ही किया है। अतः कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्यविन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है।

व्यास जी ने अवसर के अनुकूल एक ओर दीर्घ समास बहुला पदावली का प्रयोग किया है। तो दूसरी ओर सरल लघु पदावलि का। पूर्वोक्त रीतियों के सन्दर्भ में शिवराजविजय में व्यास जी ने पाञ्चाली रीति का आश्रय लिया है। इनके साक्ष्य में तथ्य द्रष्टव्य हैं—अफजल खाँ के शिविर का वर्णन करते हुए व्यास जी समस्त (दीर्घ) पदावली में कहते हैं—

"इतस्तु स्वतन्त्र यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाः निर्झरवारिधारा-पूर-पूरित-प्रबल-

प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्तं-प्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बन-चञ्चुरायाः, रिङ्गत्-तरङ्ग-भङ्गोद्भूतावर्त्तशत-भीमायाः भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्-वकुल कुल-कुसुम-कदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः कटूकुर्वन्; हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीन वर्गः, पट-कुटीर-कूट विहित-शारदाम्भोध्र-विडम्बनः निरपराध-भारताभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमाननोलध्वजै रूप-लक्षितः……।"

दूसरी ओर व्यास जी की लघुसमास शैली भी अत्यन्त भावपूर्ण और मार्मिक है। उसमें अभिव्यक्ति की स्पष्टता और सूक्ष्मता निहित है—

"एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभागस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य अवलम्बो रोलकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य।"

व्यास जी की इस रचना में समासरहित सुन्दर पदावलियों का प्रयोग भी अत्यन्त हृद्य है

"बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षवर्षीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुविशाललोचनश्चासीत्।"

अम्बिकादत्त व्यास विद्वान् थे, भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता। भाव के अनुकूल भाषा का संयोजन करने का ध्यान सदैव रखते थे। जैसा कोमल या कठोर भाव का वर्णन करना होता था उसी के अनुसार भाषा संयोजन करते थे। शान्त, स्निग्ध एवं नीरव-निशा का वर्णन देखिये—

"धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनीकामिनी चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी कपटेन सुधाधारमिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु कैरवविकाश हर्षप्रकाशमुखरेषु चञ्चरीकेषु"।

भावों की सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिये उनकी भाषा द्रष्टव्य है—

"क्वचिद् हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रम् चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, शृंगवेरं शृंगवेरम्, रामहं रामहम्, मत्स्यण्डी, मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं, कुककुटाण्डम् पललं पललमिति—"

अस्तु, इस कृति के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भाषा और शैली का प्रयोग भाव के अनुसार ही किया है। यत्र-तत्र व्याकरणिक शब्दों का भी प्रयोग उनकी विद्वत्ता की ओर संकेत करता है। सन्नन्त, यङन्त यङ्लुङन्त शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा-शैली उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में पूर्णतः उपजीव्य है।

अलङ्कार योजना कविता कामिनी का शृङ्गार है, अलङ्कार योजना। जिस प्रकार आभूषण से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलङ्कार से काव्य का भी चमत्कार एवं हृदय-संवेद्यता बढ़ जाती है। अनलंकृत भाषा एवं रमणी दोनों चित्ताकर्षक नहीं होते। कुछ अर्थालङ्कार तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके विधान से काव्य के सर्वस्व वे ही प्रतीत होने लगते हैं। इसी कारण तो कुछ अलङ्कारवादियों ने अलङ्कार को ही काव्य की आत्मा मानना प्रारम्भ कर दिया। कुछ भी हो काव्य में अलङ्कार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अलङ्कार के अभाव में काव्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलङ्कारों से सजाया है। अनुकूल एवं समुचित अलङ्कार का संयोजन किया है। बाण की कृति अलङ्कार के भार से बोझिल हुई प्रतीत होती है किन्तु व्यास की कृति विरलालङ्कार विभूषिता लावण्यमयी तन्वंगी के समान है। उन्होंने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। शब्दालङ्कार तो पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। अनुप्रास अलङ्कार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"भामिनी-भ्रू भङ्गभूरिभाव प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भटेषु"

× × × ×

"चञ्चचन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्यचिल्लीभूत-चक्षुषका"।

यत्र-तत्र यमक का भी प्रयोग किया है—

"विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः।"

कवि की कल्पना का बहुत बड़ा सम्बल है—उत्प्रेक्षा अलङ्कार। बाण की तरह व्यास जी ने भी उत्प्रेक्षा की पर्याप्त संयोजना की है। एक मालोत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है—

"गगनसागरमीने इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव, विरहिनिंवक्रन्तेन रौप्यकुन्त प्रांते इव, पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव, शारदाभ्रसारे इव, सप्तसप्ति सप्तिपादच्युते राजतखुरत्रे इव मनोहरतामहिला ललाटे इव, कन्दर्पकीर्तिलताङ्कुरे इव, प्रजाजननयनकर्पूरखण्डे इव, तमीतिमिरकर्तन शाणोल्लीढनिस्त्रिंशे इव च समुदिते चैत्रखण्डे"।

उपमा अलङ्कारों में प्रमुख माना जाता है क्योंकि उपमा एक प्रकार से वक्तव्य के कहने का ढङ्ग है, जिसका व्यवहार सर्वाधिक होता है। साधर्म्य अलङ्कारों की माला में उपमा 'सुमेरु' है। उपमा का प्रयोग भी व्यासजी ने बड़े सरल तथा स्वाभाविक ढङ्ग से किया है—

"सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशैरोलम्बकदम्बान्, ललाटेन कलाधरकलाम् लोचनाभ्याम् खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नाम्"।

व्यास जी ने परम्परा से हटकर नये उपमानों का भी प्रयोग किया है, जैसा कि संस्कृत कवियों में प्रायः नहीं देखा जाता है। कवि ने नौका की उपमा एक कुम्भड़े की फांक से देते हुए लिखा है—"कुष्माण्डफक्किकाकारया नौकया"।

विरोधाभास व्यास जी का प्रिय अलङ्कार है। विरोधाभास के चित्रण में कवि, बाण की समानता करता हुआ दिखाई पड़ता है। शिवाजी के वर्णन में विरोधाभास की छटा बरबश पाठों को आकृष्ट करती है—

खर्वामप्यखर्वपरिक्रमाम् श्याममपि यशःसमूहश्वेतीकृत त्रिभुवनाम्, कुशासानश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, पठनपाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णाताम् स्थूलदर्शनाममपि सूक्ष्मदर्शनाम्, ध्वंसकाण्ड व्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीम्, कठिनामपि

कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम् शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिर्बन्धाम्, कलित गौरवा-मपि कलितलाघवाम् .....।"

चित्तौड़गढ़ की स्त्रियों के वर्णन में श्लेष गर्भित विरोधाभास द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है—

'क्षत्रियकुलाङ्गना: कमला इव कमलाः, शारदा इव विशारदा, अनुसूया इवानुसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव सुवर्णाः, सत्य इव सत्यः ।"

इसके अरिरिक्त दीपक, श्लेष, उदात्त, यथासख्य, आदि अलङ्कारों का भी योजना की है। डॉ० भगवानदास कादम्बरी से तुलना करते हुए लिखते हैं— "जहाँ वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थ पथिक सर्वथा भूल भटक कर खोजता है; उसका पता ही नहीं लगता, वहाँ शिवराजविजय के सुललित उद्यान में, उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है। कादम्बरी के शब्दों की विकट अरण्यानी की तरह शिवराजविजय के शब्दसंसार को देखकर उसका मन घबरा नहीं उठता अपितु उसमें प्रविष्ट होकर उसके आनन्द को लेने की उत्सुकता को जगाता है।"

अस्तु, व्यास जी ने अलङ्कारों का प्रयोग मात्र कविता कामिनी को सजाने के लिये ही किया है।

रस-योजना—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। यह सच भी है कि 'रसहीन' काव्य नहीं हो सकता है। अतः काव्य में रस योजना होती ही है। यद्यपि रसों में उच्चावचता या श्रेणी विभाग नहीं होता है तथापि वर्ण्य की दृष्टि से रस की मुख्यता या गौणता अवश्य होती है।

शिवराजविजय का प्रधान रस है 'वीर'। प्रायः अन्य सभी रस इसमें उप-कारी रूप में निहित हैं। उद्देश्य के अनुसार इसमें वीर रस का विशेष रूप से चित्रण किया है। शिवाजी के शौर्य का जो अद्भुत वर्णन किया गया हैं, वह अत्यन्त स्पृहणीय है। गौरसिंह अफजलखाँ से कहता है—

"को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवा-रोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासचालनेचतुरः, स एव मल्लविद्यामर्मज्ञ, स—

एव वाणविद्यावारिधिः, स एव वीरवारवरः पुरुषपौरुष परीक्षकः, स एव दीन-दुखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः।"

× × ×

आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु 'केचन मूर्च्छिताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशास्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाकुञ्चितोदरा विशिथिलवाससो नग्नाः भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणियातपरम्परां रचयन्तो जीवनं याचन्ते।

व्यास जी ने यत्र-तत्र श्रृङ्गार रस का भी चित्रण किया है। इन्होंने श्रृङ्गार का वर्णन अत्यन्त शिष्ट और सात्त्विक रूप में किया है, उसमें मादकता या उच्छृंखलता लेपमात्र की नहीं है—

"सा चावलोक्य तमेव पूर्वविलोकितं युवानम्, वीराभरमन्थरापि तातांज्ञया बलादिवप्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती' आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना स्वपादाग्रमेवा लोकयन्ती मोदकभाजनसमाजितं सव्येतरं करं तदग्रेप्रसारयत्। ······पुनश्च सा अञ्चलकोणं कटिकच्छप्रान्ते आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नतकन्धरस्य रघुवीरसिंहस्य ग्रीवायां चिक्षेप इषत्कम्पितगात्रयष्टिश्च शनैर्यथा निवव्रते।

कहीं-कहीं करुण रस का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया गया है—

"माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेशीयावेव आखेट व्यसनिनौ महार्हभूषणभूषितौ तुरगावरुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृतौ इति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानतस्य पुत्रीति स्व-पुत्रीवमयैव सह नीता वर्द्धयसे च। अहह !·· वारंवारम् बालैव सुन्दरकन्याविक्रय व्यसनिभिर्यवन वराकैरपह्रियसे।"

व्यास जी ने एकत्र वात्सल्य रस का भी अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। डाकुओं के चंगुल में फंसे हुए गौरसिंह और श्यामसिंह अपनी भगिनी के विषय में सोचते हैं—

"हन्त ! हत भाग्या सा बालिका, या अस्मिन्नेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, अवयवोरपि अदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं कदर्थयति। अहह ! सततमस्मक्रोडैकक्रीड-

निकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्रचकोरीम्, सततमस्मत्कण्ठरत्नमालाम्, सततमस्मन्सह भोजनीम्..."

इस प्रकार पं० अम्बिकादत्त व्यास के द्वारा रसों की योजना अत्यन्त परिपक्व और साधिकार है, मुख्यत: वीररस का चित्रण करते समय इसमें सभी रस वर्णन यत्किञ्चद् रूप में उपलब्ध होते हैं।

काव्य-अभिव्यञ्जना

वस्तु एवं प्रकृति-चित्रण—काव्य में अभिव्यञ्जना का महत्त्व शिल्प की अपेक्षा अधिक होता है। हृदयग्राही मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना ही काव्य की सफलता है। वस्तुघटना, भाव या दृश्य का यथातथ्येन वर्णन करना ही कवि की विशेषता है। इसमें अम्बिकादत्त व्यास अत्यन्त निपुण और बहुमुखी है। संस्कृत कवियों में प्रकृति-वर्णन की परम्परा रही है। जितनी सफलता के साथ प्रकृति का चित्रण जिस कवि ने किया है, वह उतना ही अधिक सफल हुआ है। व्यास जी ने भी शिवराजविजय में प्रकृति नटी का सुन्दर अंकन किया है। यह अवश्य है कि वे कठोर प्रकृति की अपेक्षा कोमल प्रकृति के चित्रण में अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं। प्रकृति के कठोर रूप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"सुन्दरमस्मात्स्थानात् कोङ्कण देश: मध्ये च विकटा अटव्य शतश: शैल श्रेणय: त्वरित धारा धुन्य:, पदे-पदे च भयानकभल्लूकानामम्बूकृतं-सङ्कुलानाम्, मुस्त-मूलोत्खननघुर्घुर्घोषित-घोर-घोणानाम् घोणिनाम्, पङ्कपरिवर्तोन्मथितकासाराणां, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षणाम्, विकटकरटिकटविपाटन-पाटव-पूरितसहनानां सिंहानाम्, नासाग्र-विषाणशोणनच्छलविहित-गण्डशैल-खण्डाना खड्गिनाम् दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल पेपीयमान-दानधारा-धुरन्धराणां-सिन्धुराणां ।"

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति के कठोर रूप के वर्णन में तो उतने सक्षम नहीं हो पाये हैं, किन्तु प्रकृति के मनोरम पक्ष के वर्णन में अत्यन्त सफल हुए हैं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त एवम् रात्रि आदि के वर्णन में व्यास जी ने अत्यन्त कुशलता का परिचय दिया है। सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कवि कहता है

जगत: प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि-सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य, सकल-

चराचरचक्षुः सञ्चारशक्ति शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज मण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी सेवनेनेव माञ्जिष्ठमाञ्जिम रञ्जितः, अनवरत भ्रमणपरिश्रम-श्रान्त इव सुषुप्सुः, म्लेच्छगणदुराचारदुःखाऽऽक्रान्त-वसुमतीवेदनामिव समुद्र-शायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संजात निर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः, धर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः, सायं समयम-वगत्य सन्ध्योपासनमिवविधित्सुः,······अन्धतमसे च जगत पातयन्, चाक्षुषाम-गोचर एव संजात।"

आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्रपानीयं परस्सस्त्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकूलंकूजितपूजितं पयः पूर पूरितंसर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझझंर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वादचपलित-चञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिकविनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्॥"

व्यास जी ने रात्रि की नीरवता का अत्यन्त सटीक और स्वाभाविक वर्णन किया है। नीरव निशा का चित्र खींचते हुए लिखते हैं—

"धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्पमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी कामिनीचन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीरूपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकालयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु।"

झञ्झावात का भी चित्रण इतनी सफलता के साथ किया है कि उसे पढ़कर आँधी की वास्तविकता उसके नेत्रों के सामने उपस्थित हो उठती है। उसका भयानक दृश्य व्यास जी के शब्दों में देखिये—

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायं समयप्रयुक्तः स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः झञ्झावातोद्धूतैः रेणुभिः शीर्ण-पत्रैः कुसुमपरागैः शुष्कपुष्पैश्च। पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यका-तोऽधित्यकाः, उपत्यकात् उपत्यकाः, न कोऽपि सरलोमार्गः, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते।······पदे-पदे दोधूयमाना वृक्षशाखाः सम्मुख

माध्नन्ति। परितः सहडहडाशब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्रवृक्षाणां, वाताघात संजात पाषाण पातानां प्रपातानाम्, महान्ध तमसेन ग्रस्यमान इव सत्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन-स्वनेन कवली कृतमिव गगनतलम्।"

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति-चित्रण के साथ अन्य वस्तुओं के वर्णन में सचेष्ट रहे हैं। छाया-चित्र उपस्थित करने में भी व्यास जी ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। आजकल के शिविर का वर्णन व्यास जी के शब्दों में इस प्रकार है—

"आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मृखमाद्रेपटेन प्रोञ्छ ललाटे सिन्दूरविन्दुतिलकं विरचय्य, उष्णीषिकामपहाय, शिरशि सूचिर-यूतांसौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रितामुष्णीषिकां संधार्यशरीरे हरितकौशेयकञ्चु-किकामायोज्य, पादयोः शोणपट्टनिर्मितमघोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मितेमहार्हे उपानाहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सहनेतुं सहचरहस्ते समर्प्य,…"

पूर्वीबङ्गाल के वर्णन को पढ़कर पाठक ऐसा अनुभव करता है, जैसे वह नदी के तट पर खड़ा हुआ सारा दृश्य अपनी आँखों से देख रहा है—

"पूर्ववङ्गमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः। यत्र प्रान्तप्ररुढां पद्मावलीं परि-मर्दयन्तीपद्म व द्रवीभूता पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः पद्मा प्रवहति 'यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रुसेनानाशनकुशलाः ब्रह्मदेशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं क्षाल-यति। यत्र साम्लसुमधुररसपरितानि फूत्कारोद्धूतभूतिज्वलदङ्गारविजित्करवर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारङ्गाण्युद्भवन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां ताल-नारिकेलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेशरसज्ञानां साम्रेडं कर्णं स्पृशति, यत्र भयंकराऽऽवर्तं सहस्राऽऽकुलासुस्रोतस्वतीषु सहोहोकारंक्षेपणीः क्षिपन्तः अरित्रं चालयन्तः, वडिशं योजयन्तः, कुवेणीस्थाम्रियमाणा मत्स्यपरीवर्तानालोकमालोक-मानन्दतः,……।'

सुन्दर सरोवर के किनारे दर्भासन पर बैठे सविधि पूजन करने वाले मुनि-जनों का अतीव हृदयहारी चित्रण व्यास जी ने किया है—

"तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानां पक्षतिकण्डूतिकषणचञ्चल-चञ्चुपुटानां मल्लिकाक्षाणां, लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लाङ्गरुहाणां सारसानां, भ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारविद्रावितनिद्राणां कारण्डवनां च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ,

तडाग तट एव पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एवम-सृणपाषाणपट्टिकासु कुशासनानिमृगचर्मासनानि उर्णासनानि च विस्तीर्णोप-विष्टानां,……।"

इसप्रकार व्यास जी ने शिवराजविजय में जिसका वर्णन किया है उसका यथारूप में चित्र खींचकर पाठक को भावविभोर कर दिया है। वस्तु या दृश्य वर्णन की कुशलता व्यास जी में कूट-कूट कर भरी है। वस्तु वर्णन में व्यास जी अपने पूर्ववर्ती गद्य कवियों की पंक्ति में विराजमान होते हैं।

सामाजिक-चित्रण—संस्कृत गद्य काव्य में गद्य की अनेक विधाएँ निहित हैं और विविध भावों के वर्णन का भी समन्वय है। किन्तु शिवराजविजय के पूर्व जिन आख्यानों या कथाओं का वर्णन मिलता है, वे या तो चरित्र प्रधान हैं या दृश्य (विम्व) प्रधान। शिवराजविजय एक मात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और चरित्रों का समग्र रूप से वर्णन किया गया है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' शिवराजविजय इस कथन की कसौटी पर खरा उतरता है।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में मुगलकालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उस समय राजा अकर्मण्य विलासी और विद्वेषी थे। हिन्दु जाति मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित थी। दूसरी ओर मुसलमानों का साम्राज्य भारत में निरन्तर बढ़ता जा रहा था और उसके साथ-साथ ही मुसलमानों के द्वारा हिन्दु कन्याओं का अपहरण, मन्दिरों और मूर्तियों के विध्वंस, पवित्र धर्म-ग्रन्थों के विनाश और अनाथ हिन्दुओं के प्रपीडन को अपना कर्त्तव्य समझते थे। हिन्दु राजा मुसलमान शासकों की दासता स्वीकार कर उनकी प्रशंसा में रत थे और उनकी कृपा पर जीवित थे।

ऐसी विषम परिस्थिति में महाराष्ट्राधीश्वर वीर शिवाजी ने अपने शौर्य पराक्रम और सदाचरण द्वारा हिन्दु जनता और हिन्दुत्व की रक्षा की तथा हिन्दुओं के अस्तंगत शौर्य को बड़ी कुशलता और वीरता से पुनर्जागृत किया। उन्होंने देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति आत्मविश्वास, स्वधर्मानुराग एवम् मातृभूमि की सेवा भाव का हिन्दु जनता में सञ्चार किया।

अति अनीति की पराजय सर्वदा होती है। जिस विलासिता और व्यसन के कारण हिन्दु राजाओं का पतन हुआ उसी विलास और भोगप्राचुर्य के कारण मुस्लिम शासकों का भी पराभव हुआ। हिन्दुओं पर उनका अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उनके अत्याचारों का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं—

"···क्वचिद्दारा अपह्रियते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद्गृहनिपातः, श्रूयते अवलोक्यते च परितः।"

मुसलमान शासक इतने मदान्वित और विलासी प्रवृत्ति के हो चुके थे कि अफजल खाँ भी वीर शिवाजी जैसे शक्तिशाली और सर्वसमर्थ राजा को पराजित करने की प्रतिज्ञा विजयपुर नरेश के सामने करके आया था, सदैव भोग-विलास और नशे में चूर रहता था। जिसका वर्णन करते हुये व्यास जी कहते हैं—

"स प्रौढ़ि विजयपुराधीश महासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि शिवप्रतापञ्च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना अद्य भ्रुकुंसकः, अद्य वीणा वादनम् इति स्वच्छन्दैरुच्छश्रृङ्खलाचरणैर्दिनानि गमयति॥"

इसी का परिणाम था कि गायक (गौरसिंह) के समक्ष अफजल खाँ सगर्व अपनी भावी गोप्य योजना (शिववीर को सन्धिव्याज से पकड़ने) की घोषणा स्पष्ट रूप से कर देता है। इस प्रकार तत्कालीन मुस्लिम राजाओं में उसी वृत्ति का सञ्चार हो रहा था जिसके कारण हिन्दु राजओं की पराजय हुई थी। उस समय हिन्दु राजाओं में आपसी वैरभाव वढ़ा हुआ था, वेश्याओं और मदिरा के चक्कर में अपनी सम्पत्ति नष्ट कर चुके थे, मिथ्या प्रशंसा करने वाले चाटुकारों को ही सबसे निकट और हितैषी समझते थे और स्वार्थ की वृत्ति सर्वोपरि हो चुकी थी। इसी कारण तो भारतवर्ष सैंकड़ों वर्ष तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसका वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं।

"शनैः शनैः पारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रूभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भटेषु, स्वार्थचिन्तासन्तान

वितानैकतानेषु अमात्यवर्गेषु प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, ।'इन्द्रस्त्वं कुबेरस्त्वं वरुण-स्त्वमिति वर्णनमात्रसक्तेषु बुधजनेषु ।"

किन्तु महाराष्ट्राधीश्वर, वीर शिवाजी उन हिन्दु राजाओं मे अपवाद रूप थे; न तो उनमें उक्त प्रकार की कमजोरी थी और न ही स्वार्थ लिप्सा । वे एक वीर, पराक्रमी, राजनीति पारंगत एवं कुशल प्रशासक थे। उनकी क्षमता व्यूहरचना, ओजस्विता एवं धीरता अपूर्व थी । इसी कारण विशाल सेना वाले मुस्लिम शासक के विरुद्ध उन्होंने विजय प्राप्त की । उनके गुप्तचर गौरसिंह आदि तथा द्वारपाल के चरित्र एवं कार्यों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं । गौरसिंह अपनी गुप्तचरीय व्यूहरचना का वर्णन करते हुए कहता है—

"भगवन् ! सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानां धारितमुनिवेषाणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति । प्रत्याश्रमञ्च वलीकेषु गोपयित्वा स्थापिताः परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविता शक्तयः कुशपुञ्जान्तः स्थापिताः भुशुण्डयश्च समुल्लसन्ति । उञ्छस्य शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्गुदी-पर्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र परिमार्गणस्य; कुसुमावाचयनस्यः तीर्थाटनस्य, सत्सङ्गस्य च व्याजेन केचन जटिलाः, परे मुण्डिनः इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः, सञ्चरन्ति । विजयपुरादुड्डीयात्रागच्छत्या मक्षिकाया अप्यन्तःस्थितं वयं विद्मः, किं नाम एषां यवनहतकानाम् ।'

वीर शिवाजी सदैव योग्य और विश्वस्त व्यक्ति को ही गुप्तचर के रूप में नियुक्त करते थे । गुप्तचर की निपुणता, कार्यक्षमता, विश्वसनीयता और गम्भीरता आदि की परीक्षा लेने के बाद ही राजपक्ष के लोग गुप्तचरों को रहस्य की बातें बताते थे, केवल गुप्तचर होने मात्र से न तो उनकी सन्तुष्टि हो पाती थी और न ही वे उन्हें गुप्त सन्देशों के कहने योग्य समझते थे । तोरण दुर्ग का अध्यक्ष शिवाजी के गुप्तचर की परीक्षा लेकर ही उसे रहस्य की बातं बताने के लिये तैयार होता है—

'नैतेषु विषयेषु कदापि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषुचिद् विषयेषु समर्पयिषामि ।"

गौरसिंह गुप्तचर का कार्य करते हुये कभी ब्रह्मचारी बनता है तो कभी सन्यासी; कभी गायक बनता है तो कभी उत्कट योद्धा । और सर्वत्र अपना कार्य बड़ी कुशलता से करता है । दूसरी ओर शिवाजी के द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारी अपना कार्य अत्यन्त निष्ठा विश्वास और स्वामिहित भावना से करते थे। वे किसी बहकावे या उत्कोच आदि के प्रलोभन में नहीं आते थे। स्वामी की आज्ञा के सामने ब्रह्मा तक के आदेश मानने को तैयार नहीं होते थे। स्वामी का आदेश ही उनके लिये ब्रह्मा का आदेश होता था । इसी प्रकार के आचरण की एक द्वारपाल की उक्ति द्रष्टव्य है—

"सन्यासिन् ! सन्यासिन् !! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिक धर्म रक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च, संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चाप्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरशा वहामः।"

महाराज शिवाजी एक स्वाभिमानी शासक थे। अपने शत्रु मुगल शासकों से सन्धि करना या उनकी अधीनता स्वीकार करना उन्हें स्वीकार न था। इस स्थिति में शत्रुओं से रक्षा का एकमात्र उपाय युद्ध ही था। शत्रु से सन्धि करने की अपेक्षा अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देना वे कहीं अधिक श्रेयष्कर समझते थे। अपने इन विचारों पर वे सदैव दृढ़ रहे। शिवाजी के हृदय में यवनों से प्रतिशोध लेने की भावना कितनी प्रवल थी इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

"ये अस्मादिष्टदेव मूर्तीभङ्त्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य तीर्थस्थानानि पक्वणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा, वेद पुस्तकानि विदीर्य च आर्यवंशीयान् वलाद्यवनीकुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरञ्जलिं वद्धवा लालाटिकतामङ्गी कुर्याम् ? एवं चेद् धिक् मां कुलकलङ्कक्लीवम्। या प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासे तां वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, वध्येय, ताडयेय वा तदैव धन्योऽहम् धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भावदृशां विदुपामत्र कः सम्मतिः ?"

इस प्रकार व्यास जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं

सांस्कृतिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण किया है। जिससे साहित्य समाज का दर्पण होता है की उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है।

धार्मिक चित्रण—पण्डित अम्बिकादत्त व्यास धार्मिक भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति थे और दूसरी ओर शिवाजी, रघुवीरसिंह तथा गौरसिंह आदि भी धर्म का समादर करने वाले थे। अतः शिवराजविजय में धार्मिक भावनाओं का समावेश अत्यन्त स्वाभाविक है। काव्य का प्रारम्भ ही धार्मिक चित्रण से होता है। इसमें सूर्य की महिमा और स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया है—

"अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां मरीचिमालिनः । एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्तीखेचर चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्ड भाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोक-विमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वं व्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य । अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभिनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एषएवाङ्गी करोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्धं संख्या, असावेव चर्कर्ति वर्भर्ति जर्हर्ति च जगत् ।"

इसके बाद गुरुकुल और ब्रह्मचारी के स्वरूप और कार्यों का वर्णन भी धार्मिक भावना का अभिव्यञ्जक है। आश्रम के समीप का पर्वत गुफा में रहने वाले महामुनि योगिराज अपनी समाधि से उठकर उस आश्रम में आते हैं, तो उनका विधिवत् सत्कार होता है और वे अतीत का वर्णन बड़े ही विलक्षण ढङ्ग से करते हैं तथा यह सिद्ध करते हैं कि जगत् में जो कुछ हो रहा है, उस सबका कर्त्ता-धर्त्ता ईश्वर ही है; वह सर्वशक्तिमान् है, उसकी इच्छा के विना पत्ता भी नहीं हिल सकता। अतः मनुष्य को सुख-दुःख में, सदसद् में अथवा सदाचार तथा कदाचार में विचलित नहीं होना चाहिये, अपितु धैर्य और संयम से स्वकर्त्तव्यस्त रहना चाहिये। योगिराज के ईश्वर महिमा का वर्णन द्रष्टव्य है।

"विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः । स एव कदाचित् पयः पूरपूरितानि अकूपारतलानि मरू करोति । सिंह व्याघ्रभल्लूकगण्डकफेरुशशसहस्रव्याप्तान्यरण्यानि जनपदी करोति, मन्दिरप्रसादहर्म्य-

शृङ्गाटकचत्वरोद्यानगोष्ठमयानि नगराणि च काननी करोति । निरीक्ष्यतां कदाचिदिहैव भारते वर्षे यायजूकैः राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवातातपहिमसहानि तपांसि अताधिषत् "

ब्रह्मचारि गुरु ने योगिराज से आसनवद्ध योगियों के स्वरूप का जो चित्रण किया है वह योगपरक है

"भगवन् ! बद्धसिद्धासनैर्निरुद्धनिश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशेन्द्रियैरनाहतनादतन्तुम् अवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजः पुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः ।"

गौरसिंह और द्वारपाल के वार्तालाप से साधुओं और सन्यासियों के सम्मान की भावना की पुष्टि होती है —

"कथमस्मान् सन्यासिनोऽपि कठोर भाषणैस्तिरस्करोषि ?"

शिवराजविजय में हनुमानमन्दिर का विशेष वर्णन मिलता है, जिससे देवी-देवताओं में हनुमान की पूजा विशेष रूप से प्रचलित प्रतीत होती है । मुसलमानों के अत्याचारी को रोकने, पीड़ित हिन्दुओं की रक्षा करने तथा हिन्दु और हिन्दु-धर्म की सुरक्षा के लिये सन्यासी वेष में फैले हुए शिवाजी के गुप्तचर तथा हनुमान् के मन्दिर और उनकी भीषण मूर्ति विशेष साधन थे। हनुमान् जी की एक भीषण मूर्ति का वर्णन करते हुए व्यास जी ने लिखा है—

"ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मितां, साकारामिव वीरताम् गदामुद्यम्य दुष्टदलदलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरिकिशोरमूर्तिम्, न जाने कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार इव वसन्ते हिम इव, वोधोदयेऽबोध इव ब्रह्म साक्षात्कारे भ्रम इव झटित्यपससार आवयोः शोकः ।"

मन्दिर के पुजारी और सन्यासी भी शस्त्र-विद्या में निपुण, बुद्धिमान और राजनीति में पारंगत होते थे । मन्दिरों, आश्रमों और कुटीरों में असीम शस्त्रास्त्र गुप्त रखे जाते थे । देवी देवताओं में अखण्ड विश्वास था । हनुमान् जी सब कुछ ठीक कर देंगे' इस प्रकार के आश्वासन के साथ मन्दिराध्यक्ष अतिथियों, असहायों और पीड़ितों को शरण प्रदान करते थे । मन्दिराध्यक्ष के आतिथ्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"हनुमान् सर्वं साधयिष्यति, मास्मचिन्ता सन्तान-वितानैरात्मानं दुःखादुरुतम्। यथा सरलेनोपायेन कोङ्कणदेशं प्राप्स्यथस्तथा प्रभाते निर्देक्ष्यामि। साम्प्रतमित आगम्यताम्, पीयतामिदमेलागोस्तनीकेसरशर्करासम्पर्कंसुधापर्द्धि महिषि-दुग्धम्।"

इस प्रकार शिवराजविजय में वर्णितधार्मिक भावनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अत्याचारों से प्रपीड़ित हिन्दु समाज विशेष रूप से बलशाली हनुमान की पूजा-शत्रुओं की प्रतिरोध की भावना से करता था और अन्य साधु-सन्यासी भी उसी रूप में कार्यरत रहते थे। अतः तत्कालीन समाज में धार्मिक भावना की प्रबलता थी।

चरित्र-चित्रण—उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विशेष स्थान होता है। काव्य की सफलता अधिकांश रूप में चरित्र-चित्रण पर निर्भर होती है। पंडित अम्बिकादत्त व्यास अपने शिवराजविजय में सभी पात्रों के चरित्राङ्कन में विशेष सफल हुए हैं। उनके सभी पात्र जीवन्त एवं प्रभावी हैं। व्यास जी के चरित्रांकन की विशेषता यह रही है कि जिसे जैसा होना चाहिए, उसे वैसा ही वर्णित किया है; जबकि बाण ने 'भवितव्य' का बहुत अधिक बढ़ाचढ़ाकर चित्रण किया है। अतः बाण जैसी अस्वाभाविकता व्यास जी के चित्रण में नहीं हैं। इनके सभी पात्रों का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है।

आश्रमवासी ब्रह्मचारी गुरु, गौरबटु तथा योगिराज आदि का वर्णन अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट है। महाराष्ट्र केसरि वीर शिवाजी, रघुवीर सिंह तथा अफजल खाँ आदि के चित्रण में व्यासजी ने अत्यन्त वास्तविकता और स्वाभाविकता का आश्रय लिया है, कहीं पर भी कृत्रिमता का पुट नहीं है। जो जैसा था उसका वैसा ही चित्रण किया। यही उनकी विशेषता है।

वीर शिवाजी स्वधर्म रक्षा के व्रती, राजनीति में निष्णात तथा भारतीय आदर्शों और संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। सनातन धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार रहते थे। उनका शौर्य, पराक्रम एवं वीरता अद्भुत थी। उनकी वीरता से शत्रुओं के दिल दहल जाते थे। शिवाजी के आतंककारी वीरता का वर्णन करते हुए व्यास जी ने लिखा है—

"कथं वा आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु

केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशस्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासा कुञ्चितोदरा विशिथिल वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडम् प्रणिपातपरम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते।"

शिववीर में अपने देश के प्रति प्रेम था, गर्व था। उसकी रक्षा के लिये प्राणपण से सन्नद्ध रहते थे। इस भावना का अत्यन्त सुन्दर चित्रण व्यास जी ने किया है—

"शिववीरः—भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुल जाताः, अस्तिचेदं भारतवर्षम् भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्मा समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च—'प्राणाः यान्तु न च धर्मः" इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः।"

दूसरी ओर मुगल शासकों की परम्पराओं से फिरा हुआ सेनापति अफजल खाँ का चरित्र स्वाभाविक तथा सत्य रूप में चित्रित किया है। अन्य शासकों के समान वह भी विलासी, अदूरदर्शी, आत्मश्लाघी तथा सूक्ष्म राजनीतिक कला-बाजियों से अनभिज्ञ है। व्यास जी ने उसके चरित्र को अत्यन्त रोचक ढंग से चित्रित किया है। वह मद के वशीभूत हुआ अपनी योजना को गोप्य नहीं रख पाता और कह उठता है—

"इतिं कथयति तानरङ्गे, अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत् भो-भो योद्धारः! सूर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्चापि सहस्राणि सादिनां दशापि च सहस्राणि पत्तीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथपण्डित-द्वारा ऽऽहूतोस्ति मया शिव वराकः। तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः, अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूलीकरिष्यामः।'

व्यास जी ने अफजल खाँ के सैनिकों की कायरता, भयाकुलता तथा अत्याचारों को भी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल काव्यात्मक ढङ्ग से चित्रित किया है—

"वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम्! 'यवनानां पराजयो भविष्यति अफजलखानो विनङ्क्ष्यति न विघ्नः को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे ।"

गौरसिंह, शिवाजी के लिये गुप्तचर का कार्य करने वाले, का जैसा उन्नत, प्रशंस्य तथा वास्तविक चित्र व्यास जी ने खींचा है, वह वास्तव में अद्वितीय है। गौरसिंह अच्छा सुभट है, राजनीति में प्रवीण है, योद्धाओं में अग्रणी है, वेष परिवर्तन में निपुण है तथा अपने कार्य में दृढ़, अनालस एवं सतत सजग है। गौरसिंह वीरता के साथ अपहृत बालिका को यवनों से छीनता है, बड़ी चतुरता से शिववीर के द्वारपाल की परीक्षा करता है तथा अफजल खाँ के शिविर में जाकर बड़ी पटुता से उसकी भावी योजना की जानकारी करता है और शिवाजी की प्रशंसा भी कर आता है। शिवाजी के दिये गये कार्य का बड़ी बुद्धिमत्ता से सम्पादन करता है। दो-दो कोस की दूरी पर आश्रमों की स्थापना तथा विविध वेषधारी तपस्वियों के माध्यम से अवैरङ्गजेब तथा उसके सेनापति की प्रत्येक गतिविधियों की जानकारी कर लेता है, जिससे उसकी राजनीतिक चेतना का परिचय मिलता है।

अन्य जितने भी उपन्यास के पात्र हैं, उन सभी का चरित्र व्यास जी ने अपनी प्रतिभा लेखनी से अत्यन्त जीवना रूप में चित्रित किया है। न कहीं न्यूनता है, न कहीं अधिकता; न कहीं स्वाभाविकता का अभाव है और न कहीं कृत्रिमता का आधान ।

इस प्रकार पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का शिवराज विजय वर्ण्य पात्रों के चरित्राङ्कन तथा विषय वस्तु की दृष्टि से अपनी काव्यात्मक विधा पर खरा उतरता है। और निश्चित रूप से संस्कृत-गद्य-साहित्य में उसका अपना एक विशिष्ट स्थान है, जो किसी अन्य काव्य को नहीं प्राप्त है। इस ऐतिहासिक उपन्यास की अपनी निजी विशेषतायें हैं जो उसको उत्कृष्टता के शिखर पर पहुंचा देती है। शिवराजविजय भारतीय गौरव, संस्कृत भाषा-वैशिष्ट्य तथा कवि के उत्कृष्ट कवित्व का प्रतीक है।

शिवराजविजय की कथावस्तु

'शिवराजविजय' का कथानक तीन विरामों में विभक्त है । प्रत्येक विराम में चार निःश्वास है । संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—

दक्षिण में मुसलमानों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया । उस काल में दो-दो कोस पर आश्रम बने हुए थे, जो मुसलमानों की गतिविधि का परिचय रखते थे । शिवाजी की निरन्तर विजयों से उद्विग्न होकर बीजापुर-दरबार ने उनसे युद्ध करने के लिये अफजल खाँ को भेजा । उस समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे । अफ़जल खाँ ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर शिविर डाल दिया । बीजापुर के शासक सन्धि का धोखा करके शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे, किन्तु उनकी इस अभि-सन्धि का शिवाजी को पता लग गया । एक यवन गुप्तचर बीजापुर दरबार का पत्र ले जा रहा था । मार्ग में उसने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया, किन्तु वह कन्या एक आश्रम के अध्यक्ष—ब्रह्मचारि गुरु के शिष्यों—गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गयी, यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया तथा बीजापुर का गुप्त संदेश उसके वस्त्रों में से गौरसिंह को प्राप्त हुआ ।

इस गुप्त संदेश को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजल खाँ को छलने की योजना बनाई । बीजापुर के दरबार से सन्धि-प्रस्ताव लेकर भेजे गये, पं० गोपीनाथ द्वारा प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफजल खाँ से मिलने का शिवाजी ने प्रबन्ध किया । गौरसिंह भी गायक के वेश में अफजल खाँ के शिविर में जाकर सम्पूर्ण षड्यन्त्र का भेद निकाल लाया । शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगल में तथा अफजल खाँ के शिविर के आस पास छिपा दी । प्रातःकाल अफजल खाँ शिवाजी से मिलने आया । शिवाजी अपने कपड़ों के अन्दर कवच और हाथों में बाघनख नाम का हथियार पहन कर गये । परस्पर आलिंगन करने पर शिवाजी ने अफजल खाँ के कन्धों और गर्दन को फाड़कर उसे पटक दिया तथा उनकी सेना ने मुसलमानी सेना को मार कर भगा दिया ।

गौरसिंह द्वारा जिस ब्राह्मण कन्या की रक्षा की गयी थी, उसके संरक्षक

एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर रहस्योद्‌घाटन हुआ कि वह कन्या गौरसिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देव शर्मा है। तदनन्तर ब्रह्मचारि गुरु के अनुरोध पर गौरसिंह ने अपना वृत्तान्त सुनाया—

वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद तीनों बहिन भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहते थे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़े गये। किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले और एक हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। यहाँ भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ताखाँ पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंह दुर्ग में अपना एक संदेश रघुवीरसिंह द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास भेजा। आँधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण दुर्ग पहुँच कर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देव शर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देख कर रघुवीर सिंह के हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जाग्रत हुई। शिवाजी के आदेश के अनुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खाँ के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिये देव शर्मा के पास गया। देव शर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिला कर गले में एक माला डलवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृत्तान्त सुनाने के लिए कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में पराजय यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी पुनः सौवर्णी से भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान जी का प्रसाद लेकर सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा।

एक बार शिवाजी पण्डित के वेश में माल्यश्रीक के साथ शाइस्ता खाँ के निवास पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आये और संदेह करने पर पीछा करने वाला चाँद खाँ शिवाजी के द्वारा मारा गया। शिवाजी

ने यशवन्त सिंह को पूना से दूर रहने के लिये अनुरोध करके कुछ चुने हुये साथियों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाइस्ताखाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया, चाँद खाँ और शाइस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गये। शाइस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। दूसरी ओर इसके पूर्व ही रघुवीरसिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा को गिरफ्तार कर लिया था।

एक समय ब्रह्मचारिगुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्व वृत्तांत बताया। उधर रघुवीर सिंह की प्रेयसी सौवर्णी ने क्रूर सिंह द्वारा किये जाने वाले अपने अपमान की बात बताई। तभी संयोगवश क्रूर सिंह की नियुक्ति अन्यत्र हो गई और उसका कष्ट दूर हो गया।

इधर रोशनआरा अपना प्रेम शिवाजी से प्रकट कर रही थी परन्तु उन्होंने कह दिया कि वे उसे पिता द्वारा दिये जाने पर ही स्वीकार कर सकते हैं। तभी जयसिंह ने ससैन्य आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से उससे मुगलों की कुछ शर्तें मानकर सन्धि करने को विवश हुए। इसी सन्धि के अनुसार रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया।

उसके बाद बीजापुर एक किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह की सहायता से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया। परन्तु रहमत खाँ और क्रूरसिंह द्वारा रघुवीरसिंह को राजद्रोही बताये जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया। बाद में, ज्ञात हुआ कि राजद्रोही वास्तव में क्रूरसिंह ही था।

अपमानित रघुवीरसिंह राघव स्वामी का वेष धारण कर शिवाजी का उपकार करता रहा और सौवर्णी अपहरण के करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी १६६६ में औरंगजेब के राजदरबार दिल्ली में उपस्थित हुए। मार्ग में राधास्वामी (रघुवीर सिंह) के कई बार रोकने का प्रयास करने पर भी शिवाजी नहीं माने।

दरबार में उपस्थित होने के बाद औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा लगवा दिया। परन्तु स्वयं की योजना तथा रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गये। बाद में यह जानकर कि राधास्वामी ही रघुवीर सिंह हैं शिवाजी ने क्षमा याचना की।

इसके बाद रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट आता है उसे मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने विवाह में सम्मिलित होकर आशीर्वाद दिया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिये गये सभी किले जीत लिये गये हैं।

बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहब्बत खाँ भगा दिया गया।

शिवराजविजय की ऐतिहासिकता—

आधुनिक समालोचकों की दृष्टि में 'शिवराजविजय' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। वर्तमान समय में उपन्यास एक वह साहित्यिक विधा है, जो संसार के प्रायः सभी देशों में प्रचलित है। संसार के प्रायः सभी विद्वानों ने इसे मानव जीवन की अभिव्यक्ति स्वीकार किया है जिसमें मनुष्य जीवन के रहस्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है।[1] उपन्यासों में भी अनेक विधाएँ हैं, जिनमें ऐतिहासिक उपन्यास अधिक लोकप्रिय है।

उपन्यासकार जब ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर अपने कथानक का निर्माण करता है तब वह ऐतिहासिक उपन्यास कहलाता है। इसमें काल विशेष से सम्बन्धित घटनाओं के साथ काल्पनिक घटनाओं का भी समावेश हो सकता है। कवि तद्युगीन देश-काल को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ सीमा में काल्पनिक पात्रों को भी रख सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का भी समावेश होता है तथापि उसमें प्रमुख

१. दी नावेल एण्ड दी पीपुल-शल्फ फाक्स।

तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जाती है। इसके साथ ही इसमें कवि अपने व्यक्तित्व को विशिष्ट कल्पनाओं से भूतकाल की चरित गाथाओं, सामाजिक व्यवहारों और परम्पराओं को इस प्रकार से जीवित करता है कि उनको पढ़कर पाठक का हृदय प्राचीन गौरव से अनुप्राणित हो जाता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास में संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रकृति का प्रत्येक रहस्य, जीवन का हर एक पहलू विषय बनाया जा सकता है और इसका महत्त्व तथा गहराई उपन्यास के सफल होने में सहायक होते हैं।[1]

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक कथाएँ लिखी जाती रही हैं। संस्कृत में प्रायः अधिकांश महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा नाट्यकाव्य भी ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं परन्तु वर्णन की प्रधानता, आदर्श की प्रतिष्ठा तथा कल्पना के अतिरेक के कारण उन्हें ऐतिहासिक काव्य नहीं कहा जा सकता है, तथापि कुछ ऐसे भी काव्य हैं जिन्हें ऐतिहासिक काव्य माना जाता है। इनमें से प्रमुख हैं—राजतरङ्गिणी, विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहसाङ्कचरित, पृथ्वीराजविजय तथा हर्षचरित आदि।

संस्कृत भाषा में प्राचीनकाल से कथा साहित्य की अनेक विधाएँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित गद्यकाव्य को आख्यायिका कहा जाता था।[2] परन्तु यथार्थवादी दृष्टि से औपन्यासिक कला का प्रचलन आधुनिक युग की देन है।

संस्कृत भाषा में १८ वीं सदीं उपन्यास विधा की काव्य रचना का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस नवीन, मनोरम तथा चमत्कारी मार्ग की ओर संस्कृतज्ञों की प्रवृत्ति न होते देखकर व्यास जी संस्कृत साहित्य की इस दुर्बलता को दूर करने के लिए प्रवृत्त हुए[3] और महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी के चरित पर आधारित इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्यविधा का सूत्रपात किया। व्यास जी की 'गद्यकाव्य मीमांसा

---

१. साहित्य शिक्षा (उपन्यास का विषय) प्रेमचन्द।
२. द्र० इसी पुस्तक की भूमिका पृ० १०।
३. शिवराजविजय-निर्माण हेतुः।

भाषा' के अध्ययन से विदित होता है कि वे यूरोपीय सम्पर्क से प्रोत्साहित बंगला उपन्यासों की शैली से प्रभावित थे। उन्नीसवीं सदी में भारतीय जनता में सांस्कृतिक चेतना का पुनर्जागरण हुआ। पराधीनता और जातीय गौरव के विनाश ने निश्चित रूप से व्यास जी को विह्वल किया होगा। और उस समय स्वातन्त्र्य तथा जातीय गौरव का सन्देश देने वाले महाराष्ट्र जीवन प्रभात, राजसिंह तथा आनन्दमठ आदि उपन्यासों का अनुसरण करते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा में ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके भारतीय जनता को जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का सन्देश दिया। कुछ आलोचकों ने कल्पना और इतिहास की विभाजक रेखा की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के चार प्रकार माने हैं—

१. पूर्ण प्रामाणिक तथा साहित्य से ओत-प्रोत।

२. ऐतिहासिक वातावरण से युक्त तथा कल्पित पात्र और घटनाओं से युक्त।

३. ऐतिहासिक पात्रों से युक्त किन्तु कल्पित घटनाओं से ओत-प्रोत।

४. ऐतिहासिक घटनाओं के सत्य का निदर्शन करने वाले।

उक्त विभाजन के अनुसार 'शिवराजविजय' को प्रथम श्रेणी का उपन्यास माना जा सकता है। इस श्रेणी के उपन्यास में इतिहास और कल्पना का समन्वय लेखक को करना होता है। शिवराजविजय में न तो कल्पना द्वारा इतिहास को विकृत किया गया है और न ही ऐतिहासिक यथार्थ के बाहुल्य से इसे नीरस अथवा घटना का द्योतक बनाया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक यथार्थता और कल्पना का इस प्रकार सम्मिश्रित चित्रण किया है कि दोनों को अलग-अलग पहिचानना कठिन है। इसमें ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों पात्रों का चरित देश काल के अनुरूप ही है। इसकी सभी प्रमुख घटनाएँ भी ऐतिहासिक तथा वास्तविक हैं। इस प्रकार इस उपन्यास की ऐतिहासिकता की समीक्षा हम—१. पात्र-योजना, २. चरित्र-चित्रण तथा ३. घटनाओं के वर्णन के आधार पर कर सकते हैं।

१. पात्रों की दृष्टि से शिवराजविजय की ऐतिहासिकता—शिवराज-

विजय में पात्रों की संख्या प्रचुर है। इसमें ऐतिहासिक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। ऐतिहासिक पात्रों में भी दो प्रकार के पात्र हैं

१. शिवाजी के पक्ष के ऐतिहासिक पात्र–शिवाजी, माल्यश्रीक आदि ।

२. शिवाजी के विपक्ष के ऐतिहासिक पात्र—औरंगजेब, बीजापुर नरेश, शाइस्ता खाँ, अफजल खाँ, जयसिंह, जशवन्तसिंह तथा औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा ।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के पात्रों में शिवाजी, जयसिह तथा औरंगजेब आदि पात्रों का व्यक्तित्व इतिहास के अनुकूल वर्णित है तथा रोशनआरा, मुअज्जम आदि कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो ऐतिहासिक होते हुए भी उनका चरित काल्पनिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शिवराजविजय में वर्णित काल्पनिक पात्र भी दो प्रकार के हैं—

१. शिवाजी के पक्ष में पात्र, जैसे—गौरसिंह, श्यामबटु, रघुवीर सिंह ब्रह्मचारि गुरु आदि ।

१. शिवाजी के विपक्ष के पात्र, जैसे— चाँदखाँ, रहमानखाँ आदि ।

१. शिवाजी – महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी इतिहास प्रसिद्ध राजा हैं। उन्हीं को व्यास जी ने अपने उपन्यास का नायक बनाया है। उनकी ऐतिहासिकता निर्विवाद है ।

२. माल्यश्रीक शिवाजी का बालमित्र है। वह नीति निष्णात, परम साहसी तथा वीर योद्धा है। उसने अनेक युद्धों में शिवाजी के साथ युद्ध किया है। प्रायः सभी इतिहासकारों ने उसका वर्णन किया है ।

३. गोपीनाथ—शिवराज विजय में गोपी नाथ ऐतिहासिक पात्र अवश्य प्रतीत होते हैं। उनका चरित भले ही इतिहास के विपरीत हो। ग्रांट डफ के अनुसार गोपीनाथ को शिवाजी के पास प्रेषित किया गया था[1] जब कि कुछ इतिहासकार गोपीनाथ को शिवाजी का ही दूत मानते हैं।[2]

१. 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज'—ग्रांट डफ, पृ० ७६ ।

२. 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—जे० एन० संरकार, पृ० ६५ ।

४. भूषण कवि—ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भूषण कवि की ऐतिहासिकता तो सिद्ध होती है, परन्तु उनका व्यास के समकालीन होना विवादास्पद है। जदुनाथ सरकार और सरदेसाई के अनुसार भूषण कवि शिवाजी के समकालीन नहीं अपितु राजा साहू के समकालीन थे।[1]

५. औरंगजेब—औरंगजेब प्रतिनायक है। वह शिवाजी का विरोधी है। वह भारत के मुगल शासकों में प्रमुख था। उसके द्वारा सोमनाथ मन्दिर का तोड़ना, दिल्ली पर अधिकार कर लेना, ये सभी घटनायें इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

६. शाइस्ताखाँ औरंगजेब का दक्षिण का सूबेदार शाइस्ताखाँ भी इतिहास प्रसिद्ध पात्र है। ग्राँट उफ तथा जे० एन० सरकार आदि ने उसका उल्लेख किया है।

७. अफजल खाँ—बीजापुर नरेश के सेनापति अफजल खाँ का भी वर्णन प्रायः सभी इतिहासकारों ने किया है।

८. जयसिंह—जयसिंह शिवाजी का विपक्षी हिन्दू राजा था। उसकी ऐतिहासिकता सर्वमान्य है। जे. एन. सरकार, ग्रान्ट उफ तथा पटवर्धन आदि सभी ने उसका उल्लेख किया है।

इस प्रकार इन प्रमुख पात्रों की ऐतिहासिकता सिद्ध है। आवश्यकतानुसार इनके चरित्रों में कुछ परिवर्तन किया गया है। अतः पात्रों की दृष्टि से शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

(ii) घटनाओं की दृष्टि से शिवराजविजय की ऐतिहासिकता—'शिवराज विजय' में वर्णित अधिकांश घटनाएँ शिवाजी से सम्बद्ध हैं क्योंकि कथा के फल के अधिकारी प्रमुख पात्र हैं। इसकी कथा अफजल खाँ के पराजय से प्रारम्भ होकर शिवाजी के दिल्ली से लौटने तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ समाप्त होती है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख घटनाएँ ऐसी हैं, जिनका स्रोत ऐतिहासिक है—

(१) शिवाजी का अफजल खाँ से युद्ध।

(२) शाइस्ताखाँ के पूना निवास पर शिवाजी द्वारा आक्रमण।

---

१. द्र०—'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स'—जे. एन. सरकार पृ०, ३७८ तथा 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज, सरदेसाई, पृ० २६८।

(३) शिवाजी और भूषण कवि।
(४) शिवाजी और शाहजादा मुअज्जम'।
(५) शिवाजी द्वारा सूरत नगर की विजय।
(६) शिवाजी और जयसिंह का संघर्ष तथा सन्धि।
(७) शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति।
(८) शिवाजी का महाराष्ट्र वापिस आना तथा सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करना।

(१) शिवाजी और अफजल खाँ का युद्ध हुआ और अफ़जल खाँ मारा गया। यह एक ऐतिहासिक घटना है। इसका उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। ग्रान्ट उफ के अनुसार सन्धि के ब्याज से कपटपूर्ण ढंग से शिवाजी ने अफजल खाँ पर आक्रमण किया और वह विश्वासघात का शिकार हुआ।[1] परन्तु अब शिवराजविजय के वर्णन के अनुरूप ही 'बीजापुर नरेश द्वारा शिवाजी को धोखे से पकड़ने का षड्यन्त्र किया गया था'—यह सिद्ध हो चुका है।[2] साथ ही नवीन गवेषणाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि प्रथम आक्रमण अफजल खाँ ने ही किया था तब शिवाजी ने अपने गुप्त शस्त्रों से उसे मार डाला।[3]

(२) शिवाजी ने शाइस्ताखाँ के पूना निवास पर आक्रमण किया। ग्रान्ट उफ के अनुसार शाइस्ताखाँ मराठों की दुर्ग युद्ध की विभीषिका से पूना में किसी भी व्यक्ति का प्रवेश रोकने का प्रबन्ध किया था। तब शिवाजी बारात के माध्यम से पूना में प्रवेश की अनुमति प्राप्त करके २५ सैनिकों के साथ प्रवेश किया। मराठे सैनिकों ने पीछे की दीवार तोड़कर अन्दर किले में प्रवेश किया। जब इसकी जानकारी स्त्रियों द्वारा शाइस्ताखाँ को हुई तब वह खिड़की से निकल कर भागा परन्तु खड्ग के प्रहार से उसकी उँगली कट गई। फिर भी वह भाग गया परन्तु उसका पुत्र और अनेक रक्षक मारे

१. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—ग्रांट उफ, पृ० ७८।
२. ग्रेट मैन आफ इण्डिया—चार्ल्स किनसिड, पृ० १९३।
३. वही, पृ० १९३।

गये । शिवाजी सैनिकों के साथ निर्विघ्न बाहर निकल आये और पूना से ३–४ मील दूर मसालें जलाकर सिंह दुर्ग में प्रविष्ट हो गये ।[1] यह ऐतिहासिक घटना है और इसी रूप में व्यास जी ने भी इसका वर्णन किया है । कुछ इतिहासकारों ने इस घटना को कुछ अन्य रूप में वर्णित किया है ।[2]

(४) शिवाजी और भूषण कवि का मिलन एक किंवदन्ती के अनुसार बतलाया जाता है । यद्यपि इन दोनों के समकालीन होने पर कुछ इतिहासकार सन्देह करते हैं परन्तु शिवराजभूषण तथा कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उनका समकालीन होना सिद्ध होता है ।

(४) इतिहास के अनुसार मुअज्जम ने जनवरी १६६४ में शाइस्ताखाँ का स्थान ग्रहण किया था । शिवराजविजय के अनुसार मुअज्जम को शिवाजी के सैनिक कैद कर लेते हैं । परन्तु इतिहास के अनुसार उसके कैद की पुष्टि नहीं होती है ।

(५) इतिहास के अनुसार ५ जनवरी १६६४ को शिवाजी ने स्वयं सेना लेकर सूरत नगर पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था ।[3] परन्तु व्यास जी ने सूरत नगर को जीतने के लिये शिवाजी को न भेजकर सेनापति धीरेन्द्र सिंह को भेजा है ।

(६) इतिहास के अनुसार ३० सितम्बर १६६४ को औरंगजेब ने जयसिंह और दिलेरखाँ को शिवाजी के दबाने के लिये भेजा था । युद्ध में शिवाजी पराजित हुए और उनकी अनेक शर्तें स्वीकार की तथा औरंगज़ेब के दरबार में जानें को सहमत हुए ।[4] जयसिंह के साथ इस संघर्ष और सन्धि की घटना को व्यास जी ने कुछ परिवर्तन करके लिखा है । इसमें युद्ध का वर्णन नहीं है तथा जयसिंह से पराजय की दुर्बलता को भी छिपाने के लिए देव शर्मा की

---

१. शिवराजविजय तथा 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज'—ग्रान्ट उफ, पृ० ८७–८८ ।

२. 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—जे०. एन० सरकार, पृ० २०३–२०४ ।

३. शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स—जे० ए० सरकार, पृ० ९१ ।

४. 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज'—ग्रान्ट उफ ।

भविष्यवाणी द्वारा ढकने का प्रयास किया गया है ।[1]

(७) ग्रान्ट उफ के अनुसार शिवाजी पाँच सौ घुड़सवारों तथा एक हजार पदातियों के साथ दिल्ली जाकर औरंगजेब के दरबार में उपस्थित हुए। कुछ इतिहासकारों ने दिल्ली जाने कोन लिखकर, आगरा जाने का उल्लेख किया है और शिवाजी ने वहीं मुगल सम्राट से भेंट की।[2]

(८) औरंगजेब की कैद से वापस लौटने के बाद शिवाजी की उपस्थिति प्रताप दुर्ग में दिखाई गई है परन्तु इतिहास के अनुसार वे रायगढ़ में प्रकट हुए थे।[3] कुछ इतिहासकारों के अनुसार शिवाजी ने दक्षिण पहुँचकर मुगलों को दिये हुए सभी किलों को जीत लिया। शिवराजविज्य में भी ऐसा ही वर्णन है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उन्होंने ३ वर्ष तक पुरन्दर सन्धि का पालन किया उसके बाद युद्ध करके सभी किले जीते। इसी प्रकार जयसिंह की कारुणिक मृत्यु, मोहब्बत खाँ का मराठों द्वारा हराया जाना आदि व्यास जी द्वारा वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं।[4]

इस प्रकार शिवराजविजय में वर्णित अधिकाश प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। यत्र-तत्र लेखक ने साहित्यिक आवश्यकता तथा नेतृगत एवं प्रतिनेतृगत चरित्रों की संगति के लिये ऐतिहासिक कथा में परिवर्तन किया है, फिर भी इसकी ऐतिहासिकता का आघात नहीं हुआ है।

(iii) चरित्र की दृष्टि से शिवराजविजय की ऐतिहासिकता—जैसा कहा गया है कि शिवराजविजय में ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। ऐतिहासिक पात्रों में शिवाजी, जयसिंह, औरंगजेब आदि पात्रों का चरित्र इतिहास के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। कुछ ऐतिहासिक पात्र ऐसे भी हैं, जिनके चरित्रों को कवि ने बहुत कुछ अशों में काल्पनिक रूप में चित्रित किया है। इसी सन्दर्भ में यह भी कहना अनुचित न होगा कि व्यास जी ने काल्पनिक पात्रों को भी ऐतिहासिक चरित्रों के साथ इतना मिला दिया है कि वे भी ऐतिहासिक ही प्रतीत होते हैं।

---

१. शिवराजविजय।
२. ग्रेटमैन आफ इण्डिया 'चार्ल्स किनसिड, पृ० १६५।
३. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज—पृ० ६७।
४. हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज आदि।

अस्तु, शिवराजविजय एक ऐसा काव्य है जिसमें पूर्ण साहित्यिक कलात्मकता के आधान के बाद भी ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक तत्व केवल इतिवृत्त के निर्वाह-मात्र के लिये नहीं होते, अपितु वे कथा के रस अथवा भावों के अनुकूल होते हैं। कवि की कल्पना इतिहास की मर्यादा को भंग नहीं करती, अपितु इतिहास-गत मुख्य कथानक से एक रूप हो जाती है। व्यास जी ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास में मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया है।

शिवराजविजय की औपन्यासिकता—संस्कृत साहित्य में कथा-आख्यायिका आदि विविध रूपों में गद्य काव्य लिखे जाते रहे हैं जो कि कृष्णमाचार्य के अनुसार एक ही जाति के दो नाम हैं। संस्कृत में व्यास जी से पूर्व उपन्यास का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यद्यपि नाटचशास्त्र आदि उपन्यास शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है परन्तु इस अर्थ के लिये उसका प्रयोग नहीं हुआ है— "वज्रम् पुष्पमुपन्यासः वर्णसंहार इत्यादि।" (दशरूपक) इस नवीन (काव्य विधा) उपन्यास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बगला साहित्य में हुआ और उसी से हिन्दी में भी इसका प्रचलन हुआ।

पं० अम्बिकादत्तव्यास संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान् थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। सम्भवतः उन्हीं से उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। व्यास जी की 'गद्यकाव्य मीमांसा भाषा' से यह प्रतीत होता है कि संस्कृत में उपन्यास के अभाव से वे दुःखी थे और उसकी पूर्ति हेतु 'शिवराजविजय' की रचना में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार संस्कृत साहित्य की गद्य परम्परा में शिवराजविजय एक नवीन एवं आधुनिक काव्य-विधा होने के कारण उन्हीं मानदण्डों के अनुसार इसकी आलोचना भी संगत होगी। आधुनिक समालोचनात्मक दृष्टि से उपन्यास के ६ तत्व माने गये हैं – (१) कथानक, (२) संवाद, (३) रचना-शैली, (४) चरित्र-चित्रण, (५) देशकाल और (६) उद्देश्य। इन्हीं तत्वों के आधार पर शिवराजविजय की समीक्षा प्रस्तुत है।

कथानक—कथानक उपन्यास का आधार स्तम्भ है। अन्य तत्व इसी के

आश्रित होते हैं। व्यास जी ने अपनी काव्य-रचना के लिये ऐसी कथा का चयन किया जो भारतीय हिन्दू जन के लिए अत्यन्त हृदयग्राही था और उसके नायक शिवाजी देश, जाति एवं धर्म के उद्धारक के रूप में समादृत थे। व्यास जी ने प्राचीन गद्यकाव्य की परम्पराओं से कुछ अलग हटकर अपनी कथावस्तु की योजना की। शिवराजविजय का कथानक शिवाजी के ऐतिहासिक रूप को उपस्थित करने में समर्थ है। इसमें प्रासंगिक कथा के नायक रघुवीरसिंह का भी चरित्र कम विकसित नहीं है। जहाँ प्राचीन गद्यकाव्यों में कथानक की यथार्थता पर विशेष ध्यान नही दिया जाता था वहीं व्यास जी की प्रवृत्ति इससे भिन्न है। इसमें उन्होंने आधुनिक उपन्यास कला के अनुसार यथार्थता का पर्याप्त समावेश किया है। कथानक की दूसरी विशेषता होती है उसकी साकांक्षता एवं सम्प्रेषणीयता जिसका उपन्यास में विशेष महत्व है। व्यास जी ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। कहीं पर भी अनावश्यक विशेषणों तथा वर्णनों की भरमार से कथा-गति को शिथिल नहीं होने दिया है।

व्यास जी ने शिवराजविजय की कथा का प्रारम्भ ही बिलकुल नये ढंग से किया है जो प्राचीन परम्पराओं से भिन्न है। सूर्योदय होने पर एक ब्राह्मण वटु कुटी से बाहर निकलकर पूजा के लिये फूलों का चयन प्रारम्भ करता है। काव्य की समाप्ति अवश्य कुछ प्राचीन मार्ग पर ही आधृत प्रतीत होती है।

शिवराजविजय का कथानक संगठित घटनात्मक की अपेक्षा शिथिल कथनात्मक ही अधिक है क्योंकि इसकी प्रत्येक घटनाएँ एक दूसरे का परिणाम न होकर स्वतन्त्र हैं। गौरसिंह का वृत्तान्त, वीरेन्द्र सिंह की कथा, रघुवीर सिंह और सौवर्णी की प्रेम गाथा आदि पृथक्-पृथक् घटनाएँ हैं। लेखक ने उन्हें एक सूत्र में पिरो कर साकांक्ष बना दिया है।

अस्तु, कथानक की दृष्टि से शिवराजविजय संस्कृत जगत् से हट कर आधुनिकता का परिवेश लिये हुए संस्कृत जगत् में अवतरित हुआ है। व्यास जी ने बड़ी कुशलता के साथ काव्यात्मकता का पुट देकर भी उसके ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखा है।

देशकाल—प्रत्येक कथानक के पात्रों की क्रियायें तथा संवाद आदि किसी स्थान विशेष तथा देश में घटित होते हैं। काव्य में इन्हें देशकाल कहा जाता है। प्राचीन गद्यकारों ने तो कहीं-कहीं पर तो वर्ण्य से भी अधिक देशकाल का वर्णन किया है। केवल दण्डी ही इसके अपवाद हैं व्यास जी ने देशकाल के वर्णन में मध्यम मार्ग का आश्रय लिया है। न तो दण्डी के समान देशकाल की उपेक्षा की है और न ही बाण और सुबन्धु के समान अत्यधिक विस्तृत वर्णन ही किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल की अपेक्षा तद्युगीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि के चित्रण का महत्व अधिक होता है। व्यास जी ने इस बात का पूरी तरह से ध्यान रखा है। देशकाल का अपेक्षित चित्रण ही किया है और साथ ही तद्युगीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उचित रूप में उपस्थित किया है।

पात्र—काव्यों में दो प्रकार के पात्रों की योजना उपलब्ध होती है—(१) प्रतिनिधि पात्र तथा (२) व्यक्तित्व प्रधान पात्र। जब कोई पात्र किसी वर्ग, जाति अथवा समान भावनात्मक समूह का प्रतिनिधित्व करता है तब वह प्रतिनिधि पात्र कहलाता है और जब कोई पात्र अपनी निजी विशेषता को लेकर ही कथानक में पदार्पण करता है तब वह व्यक्तित्व प्रधान पात्र कहलाता है।

संस्कृत के प्राचीन गद्यकाव्यों के अधिकांश पात्र व्यक्तित्व प्रधान पात्र ही हैं। दण्डी राजहंस, मान, सार, राजवाहन आदि, बाण के तारापीड, चन्द्रापीड, वैशम्पायन, कादम्बरी तथा महाश्वेता आदि एवं सुबन्धु के वासवदत्ता तथा कन्दर्पकेतु आदि ऐसे ही व्यक्तित्व प्रधान पात्र हैं।

व्यास जी के सभी पात्र प्रायः प्रतिनिधि पात्र के रूप में चित्रित किये गये हैं। शिवाजी एवं उनके सभी साथी देश-प्रेम, जाति-प्रेम एवं धर्म-प्रेम से युक्त हैं। वे सभी एक प्रकार की भावना वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। गौरसिंह तथा रघुवीरसिंह राजपूत हैं और वे इस जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। जयसिंह राजपूत होकर हिन्दुओं पर अत्याचर करने वाले औरंगजेब का साथ देता है तथापि उसका चरित्र वीरता, प्रतिज्ञा-पालन, शरणागत-वत्सलता

आदि राजपूत की विशेषताओं को व्यक्त करता है। दूसरी ओर विरोधी मुसलमान सेनापति दम्भी, उत्पीडक अन्यायी और विश्वासघाती है, जो मुस्लिम शासकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

व्यास जी के पात्र केवल कवि प्रतिपादित विशेषताओं से ही युक्त नहीं हैं, अपितु उनकी अपनी विशेषताएँ भी हैं, जो उनकी क्रियाओं द्वारा परिलक्षित होती हैं। रघुवीर सिंह की वीरता और साहस उनकी क्रियाओं से ही परिलक्षित होता है। इस प्रकार व्यास जी ने पात्रों की योजना में प्राचीन परम्पराओं की उपेक्षा करके ऐतिहासिक उपन्यास के अनुरूप ही पात्रों की योजना की है।

रचना-शैली—व्यास जी ने शिवराजविजय में गद्य की प्राचीन परम्पराओं का पालन करते हुए उसकी अतिशयता से बचने की चेष्टा की है। वैदर्भी रीति का आश्रय लेते हुए अधिक समासों से उपन्यास को क्लिष्ट नहीं बनाया है। अलङ्कारों का भी प्रयोग उचित मात्रा में करके उससे काव्य को बोझिल नहीं बनाया है। कहीं-कहीं पर नाटकीय मोड़ से उपन्यास को अत्यधिक मार्मिक एवं हृद्य बना दिया। जयसिंह द्वारा शिवाजी के सैनिकों को पारितोषिक दिये जाते समय रघुवीर का अपमानित किया जाना, आगरे में शिवाजी की कृत्रिम रुग्णता के अवसर पर मुरेश्वर का यवन चिकित्सक के रूप में आना आदि भावनात्मक घटनाओं के नाटकीय दृश्य शिवराजविजय की विशेषताएँ हैं।[1]

संवाद-योजना—प्राचीन गद्यकाव्यों में अथवा सम्पूर्ण श्रव्य काव्य में संवाद-योजना का कोई महत्त्व नहीं था। काव्यशास्त्रियों ने भी संवाद को काव्य के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया है। परन्तु आधुनिक युग में उपन्यास आदि में संवादों का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। हडसन के अनुसार संवाद उपन्यास के सर्वाधिक आनन्ददायी तत्वों में से एक है।[2]

व्यास जी ने शिवराजविजय में नाटकीय एवं प्रभावशाली संवादों की योजना करके संस्कृत गद्यकाव्य के लिये एक नई दिशा प्रदान की। सन्यासी

---

१. रचना शैली विशेष विवेचन काव्यशिल्प के प्रसंग में देखिये। भूमिका इसी पुस्तक में।

२. 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ लिटरेचर'—पृ० १५४।

(गौरसिंह) तथा द्वारपाल (प्रहरी) के संवाद तथा तानरंग (गौरसिंह) एवं अफजल खाँ के संवाद अत्यन्त नाटकीय एवं रोचक हैं।[1] शिवराजविजय के संवाद अत्यन्त स्वाभाविक एवं चरित्रों के अनुकूल हैं।

उद्देश्य—संस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुसार ये ६ उद्देश्य माने गये हैं—यशः प्राप्ति, धन प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, दुःख विनाश, आनन्द प्राप्ति तथा उपदेश। प्रायः इन्हीं उद्देश्यों के लिये काव्यों की रचना की जाती थी। काव्य-रचना उद्देश्य की दृष्टि से भी व्यास जी के शिवराजविजय में कुछ नवीनता दृष्टि-गोचर होती है। उन्होंने परम्परागत प्रयोजनों को रखते हुए भी देश, जाति और धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा और इससे जनमानस आप्लावित करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया—"परं मया तु सनातन धर्मधूर्वह शिवराजवर्णनेन रशना पावितैव, प्रसंगतः सदुपदेश निर्देशैः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिक काव्य रुचीनि स्वमित्राणि रंजितान्येव .... ।"[2]

व्यास जी का दूसरा उद्देश्य यह रहा कि संस्कृत साहित्य में नवीन, मनोरम तथा चमत्कार पूर्ण मार्गों का आधान किया जाय। व्यास जी अपनी सशक्त लेखनी से शिवराजविजय उपन्यास विधा को स्रावित करके अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल हुए हैं।

व्यास और बाण की तुलनात्मक समीक्षा—

कोई भी कवि या लेखक अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रवृत्तियों से बिल्कुल अछूता नहीं रह सकता है। व्यास जी के पूर्ववर्ती गद्यकारों में तीन प्रमुख थे—बाण, दण्डी और सुबन्धु। इन तीन गद्यकारों में बाण और सुबन्धु की रचना और भाव के चित्रण की शैली लगभग एक-सी रही है परन्तु दण्डी की भाषा-शैली तथा भावाभिव्यञ्जना दोनों ही पृथक् रही हैं। इन दोनों परम्पराओं के रहते हुए भी आधुनिकता से प्रभावित पं० अम्बिकादत्तव्यास ने कुछ-कुछ अंशों में उक्त दोनों गद्य परम्पराओं का अनुकरण किया तथा कुछ अंशों में अपने उपन्यास को आधुनिक औपन्यासिक तत्वों से सजा कर एक नवीन विधा

---

१. द्र०—शिवराजविजय द्र० १०१–१०८ तथा १६७।

२. 'शिवराजविजय' निर्माण हेतुः।

के रूप में प्रस्तुत किया। अतः शिवराजविजय को बाण और दण्डी के काव्यात्मक मान-दण्डों तथा आधुनिक मान-दण्डों का एक सम्मिश्रित रूप कहा जा सकता है। शिवराजविजय के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिवराज पर बाण की काव्य-शैली का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इसीलिए समालोचकों ने व्यास जी को अभिनव बाण 'व्यासस्त्वभिनवोबाणः' कहकर उनकी प्रतिभा और काव्य-शैली का उचित मूल्यांकन किया है। यह सच है कि अलंकृत गद्यकाव्य परम्परा में बाण के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में व्यास जी को ही माना जा सकता है। बाण और व्यास की संक्षिप्त तुलना इस प्रकार है।

बाण ने अनेकों ग्रन्थों की रचना की परन्तु अलंकृत गद्य-शैली के प्रतीक कादम्बरी और हर्षचरित ही उनकी अमर कृतियां मानी जाती हैं। व्यास जी ने कुल तो लगभग ७८ ग्रन्थों का प्रणयन किया है, परन्तु शिवराजविजय एकमात्र ऐसी कृति है जो उनकी यशोगाथा को विकसित करने वाली है। अतः इनकी तुलना करते हुए हम सकते हैं कि—

(१) कथानक—हर्षचरित की कथा ऐतिहासिक है, कादम्बरी की कल्पित। इन दोनों कथानकों का समाहार करते हुए हर्षचरित के आधार पर व्यास जी ने हर्षवर्धन की भाँति महाराष्ट्र-केसरी वीर शिवाजी के ऐतिहासिक कथा को स्वीकार किया और कादम्बरी की प्रेमगाथा के अनुरूप सौवर्णी की प्रणय-कथा की कल्पना की। हर्षचरित की ऐतिहासिक कथा का संघटनात्मक कथानक है, शिवराजविजय की कथा का शिथिल कथनात्मक है।[1] कादम्बरी में वर्णनों और विशेषणों के आधिक्य से कथा की गति मन्द पड़ जाती है परन्तु व्यास जी की कथा ऐसी नहीं है। कथा के संयोजन में दोनों लेखकों ने संश्लिष्टात्मकता पर विशेष ध्यान दिया है। बाण का कथानक परम्परावादी दृष्टिकोण से वर्णित है परन्तु व्यास जी के कथनाक में नवीनता का प्रयोग है।

पात्र - बाण के पात्र ऐतिहासिक एवं कल्पित दोनों हैं। व्यास जी ने भी दोनों प्रकार के पात्रों की योजना की है। बाण के पात्रों में अतिशयता और अतिमानवीनता का आधान है परन्तु व्यास जी के पात्र इससे रहित हैं। वे

१. उद्धरण आदि के लिए काव्यशिल्प देखिये—भूमिका—इसी पुस्तक की।

यथार्थ के धरातल पर स्थित है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में बाण का दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक और यथार्थवादी कम है। व्यास का दृष्टिकोण यथार्थवादी अधिक तथा आदर्शवादी कम हैं।

रचना-शैली—बाण की भाषा-शैली आलंकारिक, समासबहुला तथा जटिल पदविन्यासात्मिका है। व्यास जी की भाषा-शैली भी आलंकारिक है परन्तु अलंकारों का प्रयोग उचित मात्रा में किया गया है। अधिक लम्बे समास नहीं हैं परन्तु विन्यास सरल हैं। नूतन शब्दों का प्रयोग भी व्यास जी ने बाण की अपेक्षा कम किया है। बाण के काव्य में विभिन्न शैलियों तथा रीतियों का निदर्शन होता है और यह विशेषता व्यास जी के काव्य में भी विद्यमान है किन्तु बाण के जितनी दक्षता और प्रौढ़ता इनके काव्य में नहीं है। बाण के काव्य में पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना विशेष लक्षित होती है परन्तु शिवराज-विजय में पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना का अभाव है। समग्र दृष्टि से बाण के काव्य में काल्पनिक चमत्कार और भावों के विशद वर्णन के लिए प्रयुक्त भाषा में जटिलता और दुरूहता है इसीलिए तो बाण के काव्य को नारिकेल फल सम्मितं वचः' कहा गया है। परन्तु व्यास जी के काव्यों में इस प्रकार की जटिलता नहीं है। उनकी भाषा बड़ी ही सुबोध तथा प्रवाहमयी है।[1] इसी दृष्टि से डॉ० भगवानदास ने लिखा है—" वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है, उसका पता ही नहीं लगता। कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है; वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं—विपरीत इसके 'शिवराजविजय' में भाषा उत्तमोत्तम ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुबोध्य भी, यथा-स्थान, यथावसर उद्दाम भी कोमल भी है।"

विविध वर्णन—महाकवि बाण पृथ्वी से आकाश तक के वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं। भावतत्व हो या वस्तु—बाण की लेखिनी से अछूता नहीं रह गया है। इसी दृष्टि से 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्—' की उक्ति प्रसिद्ध है। व्यास जी विविध वर्णनों के चक्कर में उतना नहीं पड़ते हैं। कथानक की यथार्थता को प्रदर्शित करने के लिए जितना अपेक्षित होता है, उतना ही वर्णन करते हैं।

प्राकृतिक चित्रण भी बाण बड़ी विशदता के साथ करते हैं। पहाड़ हो

१. उद्धरण आदि के लिए काव्य शिल्प देखिए—भूमिका इस पुस्तिका की।

या नदी, जंगल हो या सरोवर, पशु हो या पक्षी, सभी का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता के साथ करते हैं। प्राकृतिक चित्रण व्यास जी ने भी किया है, परन्तु उनके चित्रण की इतनी विशदता तथा सूक्ष्मता नहीं है। बाण और व्यास दोनों ने प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों पक्षों का चित्रण किया है।

जीवन के गहन अनुभवों की जितनी मार्मिक अभिव्यंजना बाण ने की है, उतनी व्यास जी नहीं कर सके हैं। सौन्दर्य और प्रेम की जैसी जीवन्त प्रतिमाएँ कादम्बरी और महाश्वेता हैं। वैसी सौवर्णी और रोशनआरा नहीं हैं। चन्द्रापीड जैसी प्रेमी शिवराजविजय में कोई नहीं है। फिर भी प्रणय की उदार भावना की अभिव्यंजना दोनों ने समान रूप से की है।

बाण ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षिणी शक्ति, कल्पना और ज्ञान से मानवीय भावों और प्रवृत्तियों के विशद चित्रण में, विविध वस्तुओं के प्रतीक प्रकाशन में तथा सिद्धान्तों के सुस्पष्ट प्रतिपादन में अत्यन्त सफल और सिद्धहस्त हैं। यद्यपि ऐसा प्रयास व्यास जी ने भी किया है और बहुत कुछ अंशों में सफल भी हुए हैं, परन्तु बाण की समानता नहीं कर सके हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि व्यास बाण के अनुगामी हैं। उनकी बहुत-सी परम्परागत विशेषताओं का अनुकरण करके अपने काव्य को अलंकृत किया है। जहाँ तक कलावादिता के प्रत्येक क्षेत्र में व्यास को बाण से पीछे रह जाने की बात है उसका एक कारण यह भी है कि व्यास जी शुद्ध रूप से केवल बाण अनुगामी नहीं रहे हैं अपितु उपन्यास की आधुनिक प्रवृत्तियों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर काव्य लिख रहे थे। अतः दोनों के दृष्टिकोण में भी अन्तर था।

दण्डी और व्यास की तुलनात्मक समीक्षा—महाकवि दण्डी के दो गद्य-काव्य माने जाते हैं—१. अवन्तिसुन्दरीकथा और २. दशकुमारचरित। अवन्तिसुन्दरीकथा के अपूर्ण तथा सन्देहास्पद होने के कारण उनकी काव्य-शैली का मापदण्ड दशकुमारचरित ही माना जाता है। इसमें दस राजकुमार अपने-अपने पर्यटनों, अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोहारी वर्णन करते हैं। इसमें झूँठ, कपट, चोरी, जुंआ, मार-काट की भरमार है। सभी राजकुमार उचित-अनुचित का विचार छोड़कर अपनी कार्यसिद्धि के लिए प्रयास करते हैं। सम्भवतः इसीलिए चन्द्रशेखर पाण्डे तथा शान्तिकुमार आदि इसे धूर्तों का रोमांस मानते हैं।

रात्रि के तीन पहर व्यतीत कर दिये थे, वह (कन्या) इस समय सो रही है, उठकर पुनः वैसे ही रोयेगी, अतः उसके माता-पिता और घर का पता लगाना चाहिए।" यह सुनकर, गर्म सांस लेकर जब तक उस (गौर बटु) ने भी कुछ कहना चाहा, तभी अचानक उन दोनों की दृष्टि पर्वत शिखर पर पड़ी।

संस्कृत-व्याख्या—अलं भो अलम्=अलमिति पर्याप्ते तथा भो इति सम्बोधने, मया = श्यामबटुना, एवं, पूर्वम्=आदौ, कुसुमानि=पुष्पाणि, अवचितानि=संकलितानि, त्वं तु=गौरबटुस्तु, चिरं=चिरकालम् यावत्, रात्रौ=निशायां, अजागरीः=न अशयिष्ठाः, इति =अस्माद्धेतोः, क्षिप्रं=शीघ्रम् न, उत्थापितः=जाग्रतः, गुरुचरणा=गुरुवर्यः, अत्र=इह, तडागतटे= सरस्तीरे, सन्ध्याम्—प्राप्तस्पूजनम्, उपासते=सम्पादयन्ति, संस्थापिता= निक्षिप्ता, मया=श्यामबटुना, निखिला=समग्रा, सामग्री=पूजनोपकरणम्, तेषाम्=गुरूणाम्, समीपे=पार्श्वे। यां=यां कन्याम्, च, सप्तवर्षकल्पाम्= सप्तवर्ष-देशीयाम्, यावनत्रासेन = यवनभयेन, निःशब्दम् = शब्दमकुर्वाणा, रुदतीम् = विलपन्तीम्, परमसुन्दरीम् = अनिन्द्य-सुन्दरीम्, कलित मानव देहाम्=कलित, धारितः=मानवस्य, मनुष्यस्य, देह, शरीरम् यया सा, ताम्; इव सरस्वतीम् = वीणापाणिम्, सान्त्वयन् = आश्वासयन्, मरन्दमधुरा= पुष्परसेन मिष्ठाः, अपः=जलानि, पाययन् पातुं प्रददन्, कन्दखण्डानि= ऋषीणाम् खाद्यविशेषाणां भागान् भोजयन् खादयन्, त्वं=गौरबटुः, त्रियामायाः=निशायाः, यामत्रयम्=प्रहरत्रयम्, अनैषीः= अयापयषीः, सेयम्= सा बालिका, अधुना = इदानीम्, स्वपिति = शेते, उद्बुद्ध्य=उन्निद्रय, पुनस्तथैव=भूयोपूर्ववत्, रोदिष्यति=विलपिष्यति, तत्=तस्मात्, तस्याः= बालिकायाः, पितरौ=जननी जनकौ, गृहं च=सद्म च, परिमार्गणीयानि= अन्वेष्टव्यानि-इति=एवम संश्रुत्य=निशम्य, उष्णं निःश्वस्य=अशीतमुच्छ्वस्य, यावत् यदैव, सोऽपि=गौरबटुरपि, किञ्चिद्, वक्तुम्=कथयितुम, इयेष= इच्छति स्म, तावद्=तदैव, अकस्मात्=सहसा, पर्वत शिखरे=पर्वत श्रृंगे, उभयोः=गौरबटुश्यामबट्वोः, दृष्टिः, निपपात=अपतत्।

हिन्दी-व्याख्या—**अलं भो अलम्** = अलम्, पर्याप्त हो गया है, बस करो, **भो** = सम्बोधन सूचक पद है। **अवचितानि** = तोड़ लिये गये हैं, अव + √चि + क्त (न पुं०, प्र० व०)। **चिरम्** = देर तक, अव्यय पद। **रात्रौ-अजागरीः** = रात्रि में-जागते रहे, √जागृ + लुङ् (म० पु०, ए० व०)। **क्षिप्रम्** = शीघ्र। **न उत्थापितः** = नहीं उठाये गये, 'उत् + √स्था + पुक् णिच् + क्त'। **गुरुचरणाः** = गुरु जी (आदर के लिये ब० व०)। **तडागतटे** = तालाब के किनारे, तडागस्य तटे (तत्पु०)। **सन्ध्याम्** - नित्यकृत्य पूजन। **उपासते** = उपासना कर रहे हैं, उप + √आस् + लट् (त), आत्मनेपद। **संस्थापिता** = रख दिया है, सम् + स्था णिच् + पुक् + क्त (स्त्री लि०)। **निखिला** = सम्पूर्ण। **सामग्री** = पूजा की सामग्री। **सप्तवर्षकल्पाम्** = लगभग सात वर्ष अवस्था वाली, 'सप्तवर्ष + कल्पत्' यहाँ 'ईषद् असमाप्ति' (कुछ कमी) के अर्थ में 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देशीयरः' से 'कल्पप्' प्रत्यय हुआ है। **यावनत्रासेन**—यवन के भय के कारण, 'यवनेभ्यः आगतः' अथवा 'यवनानाम् अयम्' इस अर्थ में यवन से अण् होकर 'यावन' बनता—'यावनश्चासौत्रासः तेन' यावनत्रासेन, संस्कृत साहित्य में यवन और जवन दोनों शब्द मिलते हैं। विवेचन के आधार श्री पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य ने जवन शब्द को ही उचित माना है। **निःशब्दम्**—बिना शब्द किये हुये, भय के कारण रोने में शब्द नहीं कर रही थी, 'निर्गतः शब्दः यथा, तथा निःशब्दम्'। **रुदतीम्** - रोती हुई को, √रुद् + शतृ + ङीप् (स्त्री० द्वि० ए० व०)। **कलितमानवदेहाम्** = कलितः मानवः देहः या सा, ताम् (बहु०) मानव शरीर को धारण करने वाली। **सान्त्वयन्** = ढाढस बंधाते हुए। **मरन्दमधुरा** = पुष्प रस के मिश्रण से मधुर, 'मरन्द' का प्रयोग पण्डितराज ने किया है—"अपि दलदरविन्द ! स्यन्द मानम् मरन्दम्, तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा" मरम् द्यति इति मरन्दः' अर्थात् भ्रमर के मरण को नष्ट करने वाला 'मरन्द' होता है। मरन्द भ्रमर का जीवन होता है। **अपः** = जल। **पाययन्** = पिलाता हुआ, √'पा + णिच् + शतृ'। **कन्दखण्डानि** = कन्द के खण्डों को, कन्द ऋषियों का एक विशेष प्रकार का भोजन है। पृथ्वी के भीतर होने वाली जड़ के रूप में होता है 'कन्दमस्त्री, 'मूलसस्यम्' (वैजयन्ती)। **भोजयन्** = खिलाते हुए, √'भुज + णिच् + शतृ'।

त्रियामायाः=रात्रि के, यह योगरूढ शब्द है, 'रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपेत्यमरः।' यामत्रयम् तीन पहर (तीन घण्टे का एक पहर होता है।) अनैषीः=बिता दिया था, √नी+लुङ् (म० पु०, ए० व०)। स्वपिति= सो रही है। उदबुद्धय=जगकर, 'उद्+√बुध+ल्यप्,'। रोदिष्यति= रोयेगी। परिमार्गणीयानि=खोजना चाहिए, परि+√मृज्+अनीयर (ब. व)। एतस्याः=इसके। पितरौ माता पिता को, माता च पिता च (एकशेष द्वन्द)। संश्रुत्य=सुनकर, सम्+√श्रु+ल्यप्। निःश्वस्य=श्वास लेकर, निः+√श्वस्+ल्यप्। वक्तुम्=कहने के लिये, √वच्+तुमुन्, इयेष=इच्छा की, √इष्+लिट् (तिप्)। पर्वतशिखरे=पर्वत की चोटी पर, पर्वतस्य शिखरे (तत्पु०)। दृष्टि=दृष्टि, 'दृश्+क्तिन्'। निपपात=पड़ी 'नि+√पत्+लिट् (तिप्)'।

टिप्पणी—(i) 'कलित मानव देहामिव सरस्वतीम्'—यहाँ मानव के रूप में अवतीर्ण हुई सरस्वती के समान में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इव संभावना वाचक है।

(ii) यावन त्रास से त्रस्त सप्तवर्ष देशीय के वर्णन से यवनों की क्रूरता और अत्याचार का निर्देश किया गया है। और उस कन्या की दुःखद स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान्कन्दरः तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिभङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिवटुभ्यामदर्शि।

हिन्दी-अनुवाद—उस पर्वत पर एक बहुत बड़ी गुफा थी। उसी में एक महामुनि समाधि में स्थित थे। इन्होंने कब समाधि लगाई, यह कोई नहीं जानता। गाँव के प्रधान तथा गाँवों के लोग बीच-बीच (कभी-कभी) वहाँ आकर उनका पूजन, प्रणाम और स्तवन किया करते थे। इनको कोई कपिल, कोई लोमस,

कोई जैगीषव्य और कोई मार्कण्डेय समझता था। वही इस समय (पर्वत) शिखर से उतरते हुए (उन) दो ब्रह्मचारी बालकों के द्वारा देखे गये।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मिन् = पूर्वोक्ते, पर्वते = अचलशिखरे, आसीत्, एकः महान्कन्दरः = विशालगुहाः, तस्मिन् एव, एकः महामुनिः = एकः महर्षि, समाधौ = चित्तवृत्तिनिरोधात्मके योगे, तिष्ठति स्म = स्थितः आसीत्, कदा = अज्ञात काले, सः मुनिः, समाधिम् = योगम्, अंगीकृतवान् = धारयामास, इति, कोऽपि = कश्चिदपि, न वेत्ति = न जानाति, ग्रामणीग्रामीणग्रामाः = ग्रामाधिपग्रामवासिनां समूहाः, समागत्य, = समेत्य, मध्ये मध्ये = अन्तरेऽन्तरे, तम् = योगि-राजम्, पूजयन्ति = पूजां कुर्वन्ति, प्रणमन्ति, नमन्ति स्तुवन्ति = स्तुतिं कुर्वन्ति, तं केचित्, कपिलं इति अपरेलोमशः इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति = इत्यादीनि विविधनामानि योगिराजस्य, विश्वसन्ति स्म = विश्वासं कुर्वन्ति स्म। स एव = योगिराज एव, अयम् = एषः अधुना इदानीम्, शिखरात् = पर्वत शृंखलायाः, अवतरन् = अवरोहन्, ब्रह्मचारिवटुभ्याम् = आश्रमवासिशिष्याभ्याम्, आदर्शि = दृष्टः।

हिन्दी-व्याख्या—महान्कन्दरः = पर्वत की बड़ी गुफा। समाधौ = चित्त की एकाग्रता की स्थिति में (तिष्ठति स्म) = बैठे थे। 'स्म' के योग से धातु का भूतकालिक अर्थ हो जाता है। अङ्गीकृतवान् = अङ्गीकार किया था। वेत्ति = जानता है। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामा = गाँव के प्रधान तथा गाँव के निवासियों का समूह, ग्रामण्यश्च ग्रामीणाश्च तेषां ग्रामाः। समागत्य = आकर 'सम् + आ + गम्। ल्यप्'। पूजन्ति = पूजा करते हैं। प्रणमन्ति = प्रणाम करते हैं, 'प्र + नम् + लट् (झि)'। स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं, √स्तुञ् + लट् (झि)।' कपिल, लोमश, जैगीषव्य तथा मार्कुण्डेय आदि पदों से 'इति' निपातन से अभिहित होने के कारण द्वितीया विभक्ति नहीं हुई है। विश्वसन्ति स्म = विश्वास करते थे, लट् लकार के 'स्म' लगा देने से भूतकाल की क्रिया हो जाती है। अवतरन् = उतरते हुए, अव + √तृ + शतृ। आदर्शि = देखे गये, दृश् + लुङ् (त) आत्मनेपद, (भावकर्म का रूप)

टिप्पणी—(i) 'समाधि' एक यौगिक साधना है जिसमें चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए ध्यान लगाया जाता है।

(ii) 'ग्रामणी···ग्रामाः' में अनुप्रास अलङ्कार है। एक ही मुनि का अनेक रूपों में उल्लेख करने से उल्लेखालङ्कार है।

(iii) शान्त रस का वर्णन किया गया है।

"अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धोमुनि ! इत एवागच्छति, इत एवागच्छति सत्कार्योऽयम्, सत्कार्योऽयम्" इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः।

अथ समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्य-नियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरबटौ छात्रगण सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत, सामग्रीषु 'इत आगम्यताम् सनाथ्यतामेष आश्रमः' इति सप्रणाममभि-गम्य वदत्सु निखिलेषु योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठं भास्वानि-वोदयगिरिमारुरोह उपाविशच्च।

हिन्दी-अनुवाद—'अहो ! मुनि जग गये ! मुनि जग गये ! इधर ही आ रहे हैं, इधर ही आ रहे हैं, ये सत्कार्य हैं, ये सत्कार्य हैं', इस प्रकार (कहते हुए) वे दोनों बटु संभ्रान्त (भाव व्याकुल) हो गये।

इसके बाद सन्ध्यावन्दनादि क्रिया समाप्त करके गुरु के आ जाने पर, उनकी आज्ञा से नित्यनियम सम्पादित करने के लिए गौरबटु के चले जाने पर, छात्रगण की सहायता से स्वागत सामग्री के प्रस्तुत हो जाने पर तथा प्रणाम पूर्वक सभी लोगों के 'इधर आइये, इस आश्रम को सनाथ कीजिये' इस प्रकार कहने पर (वे पर्वत से उतरने वाले) योगिराज आकर मुनि के द्वारा निर्दिष्ट काष्ठासन पर उदयाचल पर सूर्य के समान, चढ़कर बैठ गये।

संस्कृत-व्याख्या—अहो = इति साश्चर्यखेदे, प्रबुद्धः = जागृतः, मुनिः = ऋषिः, इत एव = आश्रमाभिमुखमेव आगच्छति = आयाति, सत्कार्योऽयम् = सत्कारयोग्योऽयं महर्षिः, इति = एवम्, सम्भ्रान्तौ = क्षुभितौ बभूवतुः = जातौ।

अथ = तदनन्तरम् समापित सन्ध्या·· समापिता = सम्पादिता, सन्ध्या-वन्दनादयः = सन्ध्यावन्दनदेवगुरुपितृपूजनमन्त्रजपादयः, क्रियाः कर्माणि = येन सः—तस्मिन्, समायाते = आगते, गुरौ = मुनौ, तदाज्ञया = मुनेराज्ञया, नित्य नियम सम्पादनाय = स्नानपूजन सन्ध्यावन्दनादि कर्म कर्तुम्, गौरबटौ = गौराङ्ग-बालके, छात्रगणसहकारेण—शिष्यवृन्द साहाय्येन, प्रस्तुतासु = उपस्थितासु

च, स्वागतसामग्रीषु = उपचारद्रव्येषु, "इत अत्र, आगम्यताम् = आयातु, सनाथ्यताम् - समलंक्रियताम्, एषः = अयम्, आश्रमः - तपस्विनां स्थानम्" इति = एवम्, सप्रणामम् = प्रणामपूर्वकम् अभिगम्य - आगत्य, वदत्सु = कथयत्सु, निखिलेषु = उपस्थितेषु सर्वेषु, योगिराजः - महामुनिः, आगत्य = एत्य, तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम् = मुनिसंकेतितकाष्ठासनं, भास्वान् इव = सूर्य इव, उदयगिरिम् = उदयाचलम्, आरुरोह = अधिशिश्रिये, उपाविशत् च = आसिवान् च ।

हिन्दी-व्याख्या—अहो = आश्चर्य और प्रसन्नता का सूचक है । **प्रबुद्धः** = जग गये, 'प्र + √बुध + क्त' । **इत एव** = इधर को ही । **सत्कार्यं** = सत्कार के योग्य । 'प्रबुद्धः···सत्कार्योऽयम्' में वाक्य की द्विरावृत्ति प्रसन्नता के कारण हुई है । **सम्भ्रान्तौ** = हर्ष से व्याकुल हुये, कन्दरा में बहुत दिन तक समाधिस्थ रहने के बाद मुनि बाहर आये हैं, अतः दोनों बटु हर्षोद्रेक से व्याकुल हो गये ।

अथ = तदनन्तर । **समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये** = सन्ध्यावन्दनादि क्रिया को समाप्त कर चुके हुए, समापिता संध्यावन्दनादिक्रिया येन सः तस्मिन् (ब० व्री०) । **समायाते** = आने पर, 'सम् + आ + √या + क्त' (सप्त० ए० व० ।) **गुरौ** = मुनि के । **तदाज्ञया** = मुनि की आज्ञा से, तस्य आज्ञया (तत्पु०) । **नित्यनियमसम्पादनाय** = स्नान सन्ध्यापूजन आदि नित्य कर्म करने के लिये । **प्रयाते** = चले जाने पर, प्र + √या + क्त (स० ए० व०) । **गौरबटौ** = गौरबटु के, 'यस्य भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति । **छात्रगणसहकारेण** = छात्रों के सहयोग से, छात्राणां गणः, तस्य सहकारः तेन (तत्पु०) । **प्रस्तुतासु** = प्रस्तुत हो जाने पर । **स्वागतसामग्रीषु** = स्वागत सामग्री के (उक्त नियम से सप्तमी) । **आगम्यताम्** आइये (भावकर्म, आत्मनेपद) । **सनाथ्यताम्** = अलंकृत कीजिये, (पूर्वोक्त क्रिया) । **इति** इस प्रकार । **सप्रणामम्** = प्रणाम पूर्वक । **अभिगम्य** = आकर, 'अभि + √गम् + ल्यप्' । **वदत्सु** कहने पर, √'वद + शतृ (+ स० ब० व०) । **निखिलेषु** = सभी लोगों के (उक्त नियम से सप्तमी) । **योगिराजः** = महामुनि, योगः अस्ति अस्मिन् इति योगी, तेषां राजा, इति योगिराजः 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से 'टच्' । **तन्निर्दिष्ट काष्ठपीठम्** = मुनि के संकेतित चौकी पर, तेन निर्दिष्टम् काष्ठपीठम् (तत्पु०) । **भास्वान् इव** = सूर्य के समान । **उदयगिरिम्** उदयाचल पर जिस पर प्रातःकाल सूर्य

उदित होते हैं। आरुरोह = चढ़ गये, आ + √रुह + लिट् (तिप्)। उपाविशत = उप + आ + √विश + लङ्।

टिप्पणी—(i) बहुत काल की समाधि के बाद योगिराज के उठने पर आश्रमवासियों में प्रसन्नता की लहर छा गई।

(ii) चौकी पर बैठने वाले मुनि की उपमा उदयगिरि उदित होने वाले सूर्य से दी गई है, अतः उपमा अलंकार है।

तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित इति आयात, इति च" आकर्ण्य कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यंगानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

हिन्दी-अनुवाद—उनके (योगिराज के) पूजन के समय ही "योगिराज (समाधि से) उठ गये हैं और यहाँ आये हुए हैं" (यह समाचार) कर्णपरम्परा से (एक दूसरे से) सुनकर चारों ओर बहुत से लोग स्थित (जमा) हो गये। (उनके) सुघटित शरीर, घनी जटा, विशाल अंगों, अंगार के सदृस (तेजस्वी) नेत्र तथा मधुर और गम्भीर वाणी का वर्णन करते हुए (लोग) चकित से हो गये।

संस्कृत-व्याख्या—तस्मिन् = योगिराज, पूज्यमाने = अर्च्यमाणे, "योगिराड् = महामुनिः, उत्थितः = अवबुद्धः, इति = एवम्, आयात इति च = अत्रागत इति च" आकर्ण्य = श्रुत्वा, कर्णपरम्परया = श्रुतिपरम्परया, बहवो जनाः = अनेके नराः, परितः = समन्तात्, स्थिताः = समुपस्थिताः। सुघटितम् = यथावस्थित शोभनावयवसंस्थानम्, सान्द्रां = घनाम्, जटाम् = सटाम्, विशालान्यङ्गानि = नातिस्वह्लास्वावयवान्, अङ्गारप्रतिमेनेत्रे = स्फुलिङ्गसदृशे नयने मधुरा = मृद्वीम्, गम्भीराम् = ओजस्वनीम्, च, वाणीं = वचनम्, वर्णयन्तः = प्रशंसयन्तः, चकिताः = आश्चर्यान्विताः, इव, सञ्जाताः = बभूवुः।

हिन्दी-व्याख्या—पूज्यमाने = पूजा के समय ही, '√पूज् + य + शानच्'। योगिराड् = महामुनि। उत्थितः = उठ गये हैं, 'उत् + √स्था + क्त'। आयातः = आये हुये हैं। आकर्ण्य = सुनकर। कर्णपरम्परया = क्रमशः एक दूसरे से बहवः = बहुत अधिक। परितः = चारों ओर, स्थिताः = एकत्र हो गये सुघटितम् = सुगठित, यथास्थितिशोभन अवयवों वाला। सान्द्राम् = घनी जटां = बालों को। विशालान्यंगानि = विशाल अंगों को। अंगारप्रतिमे = अंगार के समान। नयने = नेत्रों को। वर्णयन्तः = प्रशंसा करते हुए। चकिता इव = आश्चर्यचकित से। सञ्जाताः = हो गये।

टिप्पणी –(i) अंगार के प्रतिम (समान) नेत्र थे, यहाँ प्रतिम शब्द उपमावाची है, अतः उपमा अंलकार है।

(ii) 'चकिता इव' चकित से हो गये। यहाँ इव शब्द उत्प्रेक्षावाची है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीरात् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्।

ततः "किमिति ? कुत इति ? केयमिति ? कथमिति ?" पृच्छा परवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरूणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम्—

हिन्दी-अनुवाद—तदनन्तर योगिराज की सम्यक् पूजा करके जैसे ही (ब्रह्मचारी के गुरु ने) कुछ कहने की इच्छा की वैसे ही कुटी से उस बालिका का करुण क्रन्दन सुनाई पड़ा। तब योगिराज के "यह क्या है ? कहाँ से (आई है ?) यह कौन है ? यह कैसे (आई) ?" पूँछने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने श्यामबटु को बालिका को शान्त कराने के लिये आदेश देकर कहना आरम्भ किया—

संस्कृत-व्याख्या—अथ—ततः, योगिराजम् महामुनिम्, सम्पूज्य = पूजां कृत्वा, यावत् = यदैव, किमपि—किञ्चित् आलपितुम = कथयितुम्, ईहीतम् = चेष्टितम्, तावद = तदैव, कुटीरात् - उटजात्, तस्या एव बालिकायाः = पूर्वोक्तायाः कन्यायाः, सकरुणरोदनम् = करुणक्रन्दनम्, अश्रूयत = आकर्णयत। ततः = तदनन्तरम्, किमिति = किमिदम्, कुतः इति = कुत्रत्य इति, केयमित्ति = कास्ति एषा, कथमिति = कथमायातेति, पृच्छा परवशे = प्रश्नपरतन्त्रे, योगिराजे महामुनौ, ब्रह्मचारिगुरुणा = आश्रमवासि मुनिना, बालिका = कन्यकाम्, सान्त्वयितुम् = शान्तं कर्तुं, श्यामबटुम् = श्यामब्रह्मचारिणम् आदिश्य = आदेशं दत्वा, कथितम् = उक्तम्।

हिन्दी-व्याख्या—**सम्पूज्य** = पूजा करके, सम् + √पूज् + ल्यप् **ईहितम्** = इच्छा किया, 'ईह + इट् + क्त'। **किमपि** = कुछ। **आलपितुम्** = कहने के लिये, 'आ + √लप् + तुम्'। **कुटीरात्** = कुटी से। **अश्रूयत** = सुनाई पड़ा। **सकरुण-रोदनम्** = करुणया सहितम् यद् रोदनम्, तत, करुणक्रन्दन। **ततः** = उसके बाद। **पृच्छापरवशे** = पूंछने की इच्छा से परवश होने पर, पृच्छया परवशः, तस्मिन्। **योगिराजे** = योगिराज के। **ब्रह्मचारिगुरुणा** = ब्रह्मचारी के गुरु के द्वारा, ब्रह्मचारिणः गुरुः, तेन (तत्पु०)। **सान्त्वयितुं** = शान्त करने के

लिये। आदिश्य आदेश देकर, आ + √'दिश् + ल्यप्' कथितम् = कहा, √कथ् + इ + क्त'।

भगवन् ! श्रूयताम् यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तकृत्ये, अत्रैव कुशास्तरणमधितिष्ठते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु, व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव-विकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्,कम्पमान निःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधान श्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतम् क्रन्दनमश्रौषम्।

हिन्दी अनुवाद भगवन् ! यदि (आपको इसका वृत्तान्त जानने की) उत्कण्ठा है (तो) सुनिये। कल सायंकालीन कृत्य सम्पादित करके मैं यहीं कुशा-सन पर बैठा हुआ था, चारों ओर छात्रगण बैठे हुये थे, मन्द-मन्द वायु के स्पर्श से लताएं धीरे-धीरे हिल रही थीं, निशा नायिका के चन्दन बिन्दु के समान चन्द्रमा (शोभित हो रहा था), चन्द्रिका (चाँदनी) के ब्याज से आकाश अमृत की धारा सी बरसा रहा था, मानो, हम लोगों की नीतिवार्ता को सुनने के लिये पक्षिकुलों ने मौन धारण कर लिये थे, कुमुदों के खिलने से हर्षातिरेक से भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, (उसी समय) अस्पष्ट अक्षरों वाला, प्रकम्पित निःश्वास वाला, रुंधे हुए कंठ वाला, घर्घर ध्वनि वाला, चीत्कार तथा दीनता से पूर्ण, बहुत ध्यान देने से सुनाई पड़ने के कारण जिसके बहुत दूर होने का अनुमान था, (ऐसा) करुण क्रन्दन मैंने सुना।

संस्कृत-व्याख्या = भगवन् ! महर्षे ! यदि, = चेत्, कुतूहलम् = कौतुकम्, (तर्हि) श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्। ह्यः = गतदिने, सम्पादितसायन्तकृत्ये = कृत सायंकालिककार्ये, अत्रैव = इहैव, कुशास्तरणम् = दर्भासनम्, अधितिष्ठिते = स्थिते, मयि = मुनौ, परितः = समन्तात्, समासीनेषु = तिष्ठत्सु, छात्रवर्गेषु = शिष्यगणेषु, धीरसमीर स्पर्शेन = मन्दगतिर्वायुस्पर्शेन, मन्दम्-मन्दम् = शनैः शनैः, व्रततिषु = लतासु, आन्दोल्यमानासु - सञ्चाल्यामानासु, समुदिते = उदयं प्राप्ते, यामिनी = निशीथिनी, एव कामिनी = कान्ता, तस्याश्चन्दनबिन्दौ = ललाट तिलके, इव, इन्दौ = चन्द्रमसि, कौमुदी कपटेन = चन्द्रिकाछलेन, सुधा-

धारमिव=अमृतस्यन्द इव, वर्षति = वृष्टिं कुर्वंति, गगने = आकाशे, अस्मन्नीति-वार्तां=अस्मन्नीतिमन्त्रणाम् शुश्रूषुषु:=श्रोतुमिच्छु:, इव, मौनम्=तूष्णीम्, आकलयत्सु =धारयत्सु, पतंगकुलेषु=पक्षिसमूहेषु, कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेषु =कैरवाणां=कुमुदानां=विकासेन=प्रफुल्लेन यः हर्षप्रकाशः=प्रमोदाभि-व्यक्तिः, तेन मुखरेषु शब्दायमानेषु, चञ्चरीकेषु=भ्रमरेषु, अस्पष्टाक्षरम्= अव्यक्तवर्णम्, कम्पमान। निःश्वासम्=सोत्कम्पोच्छ्वासम्, श्लथत्कण्ठम्= स्तम्भितकण्ठम्, घर्घरितस्वरम्=घर्घरितिध्वनि युक्तम्, चीत्कारमात्रम्= चीत्कारमयम्, दीनतामयम्=कातरतामयम्, अत्यवधानेन=विशेषध्यानेन, श्रव्यत्वात्=श्रोतव्यत्वात्, अनुमितदविष्ठतं=विज्ञातातिदूरतमम्, क्रन्दनम्= रोदनम्, अश्रोषम्=अकर्णयम्।

हिन्दी-व्याख्या—श्रूयताम्=सुनें। कुतूहलम्=कौतुक अर्थात् समाचार जानने की उत्कण्ठा। ह्यः=कल। सम्पादितसायन्तनकृत्ये=सायंकालिक क्रियाओं को समाप्त कर चुकने पर, सम्पादितम् सायन्तनम् कृत्यम् येन सः, तस्मिन् (ब० व्री०), सायन्तनम्=सायम् अव्यय पद 'घञ्' प्रत्यय करके 'साय' बनता है। ततः 'साये भवः' यहाँ भव (होने के) अर्थ में 'सायम् चिरम् प्राह्णे पगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौतुट् च' ये ट्यु (यु) और तुट (त्) प्रत्यय होकर 'साय त् यु' तथा यु' तथा यु को 'अन्' और मान्तता के निपातन से 'सायन्तन' रूप बनता है—सायंकाल में होने वाला। कुशास्तरणम्=कुशा का आसन, कुशानाम् आस्तरणम् इति, 'कुशास्तरणम्' में, अधिशीङ्स्थासां कर्म' से अधि स्था के योग में द्वितीया विभक्ति हुई है। समासीनेषु=बैठे हुए। छात्रेषु=छात्रों के; 'यस्य भावेन' से सप्तमी। धीरसमीरस्पर्शेन = मन्द-पवन स्पर्श से, धीरश्चासौ समीरः, तस्य स्पर्शः तेन (तत्पु०)। मन्द-मन्दमान्दोल्यमानासु = धीरे-धीरे हिलने वाली। व्रततिषु=लताओं के, वल्ली तु व्रतनिर्लता' (अमरकोष) समुदिते=उदित होने पर 'सम्+उद्+इ+क्त'। इन्दौ=चन्द्रमा के। यामिनी कामिनी चन्दनबिन्दौ इव = रात्रि रूपी नायिका के चन्दन बिन्दु के समान, यामिनी एव कामिनी तस्याः चन्दन बिन्दुः तस्मिन् (तत्पु०)। कौमुदी कपटेन =चाँदनी के बहाने, कौमुदयाः कपटेन (तत्पु०) गगने=आकाश के। सुधाधाराम्=अमृत की धारा, सुधायाः धाराम् (तत्पु०)। वर्षति इव=मानो वर्षा कर रहा हो। अस्मन्नीतिवार्तां=हम लोगों की नीति सम्बन्धी चर्चा को, अस्माकम् नीते वार्ताम्। शुश्रूषुषु=सुनने की इच्छा वाले, √श्रु+सन्+

उं (धातु को द्वित्व सप्तमी ब० व०)। इव मानों। पतंगकुलेषु = पक्षियों के कुलों के, पतङ्गानां कुलानि तेषु (तत्पु०)। मौनम् = शान्ति। आकलयत्सु = धारण किये हुए, आ · √कल + शतृ (सप्तमी)। कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु = कुमुदों के खिलने की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति के कारण मुखरित होने पर कैरवाणां विकाशेन हर्षस्य प्रकाशः, तेन मुखरिताः तेषु (तत्पु०)। चञ्चरीकेषु = भ्रमरों के, 'इन्दिन्दिरोमधुकरश्चञ्चरीकोमधुव्रतः।' अस्पष्टाक्षरम् = अभव्यक्त अक्षरों वाला, अस्पष्टानि अक्षराणिर्यस्मिस्तत्, (बहु० व्री०)। कम्पमाननिःश्वासम् = कम्पमानः निश्वासः यस्य तत्, कंपती हुई श्वास वाला, √कम्प् + शानच्। श्लथत्कण्ठम् = श्लथन्कण्ठः यस्मिन् तत्, रुंधे हुए गले वाला। घर्घरितस्वनम् = घर्घरिता स्वनाः, यस्मिंस्तत्, 'घरघर' शब्द से युक्त। चीत्कारमात्रम् = चिल्लाना मात्र था जिसमें। दीनतामयम् = दीनता से पूर्ण, 'दीनता + मयट्'। अत्यवधानश्रव्यत्वात् = विशेष ध्यान देने से सुनाई पड़ने के कारण, अत्यवध्यानेनश्रव्यः, तस्य भावः, तस्मात् श्रव्यत्वात = 'श्रू + तव्य + त्व' (पंचमी, हेतु के अर्थ में)। अनुमित दविष्ठतम् = बहुत दूर होने का अनुमान् किया जाने वाला, अनुमिता दविष्ठता यस्य तत्, (ब० व्री०), दविष्ठता = अतिशयेन दूरं दविष्ठम्, तस्य भावः दविष्ठता, 'दूर + इष्ठन् + ता'। क्रन्दनम् = विलाप को। अश्रौषम् = सुना, श्रू + लुङ् (मिप्)।

टिप्पणी—(१) 'समुदिते····· पतंगकुलेषु' में आये हुए 'इव' उत्प्रेक्षा-वाचक हैं, चन्द्रमा में चन्दन बिन्दु की आकाश से अमृतधार बरसने तथा पक्षियों में नीतिवार्ता के सुनने की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(२) 'यामिनी कामिनी' में यहाँ यामिनी में कामिनी का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

(३) पूर्व की पंक्तियों में प्रसाद गुण तथा शान्त रस है। अन्त में करुण रस है।

(४) 'नीतिवार्ता शुश्रूषुषु' से यह व्यक्त होता है कि आश्रमों में नीति सम्बन्धी मन्त्रणायें हुआ करती थीं और अल्पकाल में ऋषिमुनि ब्रह्मचारी सभी सुरक्षात्मक व्यवस्था के प्रति सचेष्ट हो जाते थे।

(५) 'अस्पष्टाक्षरम्······दविष्ठतम्' ये सात विशेषण क्रन्दन के अत्यन्त स्वाभाविक विशेषण हैं।

तत्क्षणमेव च "कुत इदम् ? किमिदमिति दृश्यताम् ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहै स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। ताञ्च चन्द्रकलयेव निर्मिताम् नवनीतेनेव रचिताम्, मृणालगौरीम् कुन्दकोरकाग्रदतीम् सक्षोभ रुदतीमवलोक्यास्माभिरपि न पारितं निरोद्धु नयन वाष्पाणि।

हिन्दी अनुवाद – उसी समय, "यह (करुण क्रन्दन) कहाँ से ? क्या (कारण) है ? यह देखकर पता लगाओ" ऐसा आदेश देकर मेरे (द्वारा) छात्रों के भेजने पर, क्षणभर बाद ही एक छात्र, भयभीत, वेग से उष्ण और दीर्घ (लम्बी) सांस लेती हुई, व्याघ्र (बाघ) से सूंघी हुई मृगी के समान, आँसुओं की धारा से स्नान की हुई तथा कांपती हुई एक कन्या को गोद में रखकर लाया। बहुत देर तक ढूंढ़ने के बाद भी उसका साथी या कोई सखी नहीं प्राप्त हुई। चन्दमा की कलाओं से रची गई के समान, नवनीत (मक्खन) से बनाई गई के समान, कमल नाल के समान गोरी तथा कुन्द कलिका के अग्रभाग के समान दाँतों वाली उस कन्या को व्याकुलता से युक्त, रोते देखकर हम लोग भी अपने आँसू रोक नहीं सके।

संस्कृत-व्याख्या—तत्क्षणमेव = संपद्येव, च कुत इदम् = कुत्रत्य इदम् रोदनम्, किमिदम् = किं कारणम्, इति = एतत् सर्वम्, दृश्यताम् = अवलोकस्य, ज्ञायताम् = जानीहि, इतिं = एवम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, छात्रेषु = शिष्येषु, विसृष्टेषु = प्रेषितेषु, क्षणानन्तरम् = किंचित्कालान्तरम्, छात्रेणैकेन = शिष्यैकेन, भयभीता = भयक्रान्ता, सवेगम् = तीव्रम्, अत्युष्णम् = संतप्तम्, दीर्घम् = विलम्बायितम्, च, निःश्वसती = श्वासं गृहणन्ती, मृगी हरणी, इव, शार्दूलाक्रान्ता, अश्रुप्रवाहैः – नेत्रवाष्पैः, स्नाता = संसिक्ता, सवेपथुः = सकम्पा. कन्यकैका = एका वालिका, अंके = क्रोडे, निधाय = निक्षिप्य, समानीता, चिरान्वेषणेनापि – चिरं यावत् अनुसन्धानेनापि च तस्याः = वालिकायाः, सहचरी = सखी, सहचरोवा = सखा वा, न प्राप्त = न दृष्टः। ताम = बालिकाम्, च चन्द्रकलया = इन्दु प्रभया, इव, निर्मिताम् = सम्पादिताम्, नवनीतेनेव = हैयङ्गवीनेनेव, रचिताम् = विनिर्मिताम्, मृणालगौरीम् = कमलदण्डसिताम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम् = सुदतीम्, सक्षोभम् = ससाध्वसम्, रुदतीम् = विलम्पन्तीम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, अस्माभिः = आश्रमवासिभिः, अपि, न, पारितत् = शक्तम्, निरोद्धुं = अवरोद्धुं नेत्र वाष्पाणि = अश्रूणि।

हिन्दी व्याख्या—तत्क्षणमेव = उसी समय । **दृश्यताम्** = देखिये । **जायताम्** = जानिये । **इत्यादिश्य** = इस प्रकार आदेश देकर । **विसृष्टेषु** = भेजने पर । **छात्रेषु** - छात्रों के, 'यस्यभावेन' से सप्तमी । **भीता** = डरी हुई, √'भी + क्त + टाप्' । **संवेगम्** = जल्दी-जल्दी, वेगेन सहितम्, संवेगम् । **निःश्वसती** = सांस लेती हुई, 'निर् + √श्वस् + शतृ (स्त्री)' । **मृगीव** = हरिणी के समान । **व्याघ्राघ्राता** = बाघ से सूँघी हुई, व्याघ्रेण आघ्राता (तत्पु०) । **अश्रुप्रवाहैः** = आँसुओं के प्रवाह से, अश्रूणाम् प्रवाहैः (तत्पु०) । **स्नाता** नहाई हुई, √'स्ना + क्त + टाप्' । **संवेपथुः** = काँपती हुई, 'स + √वेपृ (कम्पने) + अथुच्' । **निधाय** = रखकर, नि + धा √ + ल्यप् । **समानीता** = लाई गई, 'सम् + आ √नी + क्ता + टाप्' । **चिरान्वेषणेनापी** = चिरकाल तक ढूंढने से भी । **सहचरी** = सखी, सह चरतीति—सह + √चर + अच् + (स्त्रियां ङीष्) अर्थात् साथ चलने वाली । **सहचरः** = साथी । **न प्राप्तः** = नहीं प्राप्त हुआ, प्र + √अप् + क्त । **ताम्** = उस कन्या को । **चन्द्रकलया** = चंद्रमा की कला से, चन्द्रस्य कला, तया (तत्पु०) । **निर्मिताम्** = बनी हुई । **नवनीतेन** = मक्खन से । **मृणालगौरीम्** = कमलनाल के समान गोरी, मृणालस्य इव गौरीम् । **कुन्दकोकाग्रतीम्** = कुन्द (पुष्प) कली के अग्रभाग के समान दाँतों वाली, कुन्दस्य कोरकाणाम् अग्राणि इव दन्ताः यस्यः सा, ताम् (ब० व्री०), "अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च" सूत्र से 'दन्त' को 'दंतृ' आदेश तथा ङीप् (उगितत्वात्) होता है—दन्त → दतृ (ऋ इत्) → दत् + ङीप् = दती । **सक्षोभं** = व्याकुलतापूर्ण । **रुदतीं** = रोती हुई √रुद् + शतृ + ङीप् (स्त्रियाम्) । **अवलोक्य** = देखकर, 'अव + √लोक् + ल्यप्' । **अस्माभि** = हम लोगों के द्वारा । **नयन वाष्पाणि** = आँसुओं को, नयनस्य वाष्पाणि (तत्पु०) । **निरोद्धुं** = रोकने के लिये, 'नि + √रुध् + तुमुन्' **न पारितम्** = समर्थ नहीं हुये ।

टिप्पणी—(१) 'चन्द्र कलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्' में चन्द्रकला अथवा मक्खन से बनी हुई होने की सम्भावना की गई है । अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

(२) 'मृणाल के समान गोरी तथा कुन्द-कलिका के अग्रभाग के समान दाँतों वाली में लुप्तोपमालंकार है ।

अथ कन्यके । मा भैषीः, पुत्रि ! त्वाम् मातु, समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि, नदेव करिष्यामाः मा स्म रोदनैः प्राणान् संशय-पदवीमारोपयः, मास्मकोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः "इति सहस्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोशे उपवेश्य, "बालिके ! कथय क्व ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता ? किं ते कष्टम् ? कथमारोदीः ? किं वाच्छसि ? किं कुर्मः ?" इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचन-विन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यदेषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मण स्यतनयाऽस्ति ।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद "पुत्रि ! डरो मत बच्ची ! तुम्हें माता-पिता के पास पहुँचा देंगे, बेटी दुःख मत करो, देवि ! कुछ खाओ, दूध पिओ, ये सब तुम्हारे भाई हैं, जो कहोगी वही करेंगे, रोने से अपने प्राणों को सन्देह में मत डालो, शोक-ज्वाला से अपने कोमल शरीर को मत झुलसाओ" इस तरह हजारों प्रकार से समझाने से किसी प्रकार शान्त हुई और थोड़ा सा दूध पिया। उसके बाद उसे मैंने अपनी गोद में बैठाकर। 'बालिके कहो, तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं ? कैसे इस आश्रम में (प्रान्त में) तुम आई ? तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम क्यों रोती थी ? क्या चाहती हो ? (हम सब) क्या करें ?" इस प्रकार पूछने पर भोलेपन के कारण भाषण की चतुरता से अनभिज्ञ, भय के कारण अस्त-व्यस्त शब्दों में बोलने वाली, लज्जा से धीमे स्वरों वाली, शोक से रुँधे हुए गले वाली, भयभीत हुई सी किसी प्रकार हमें बताया कि इसी अति समीप के ही गाँव में रहने वाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = ततः, "कन्यके = पुत्रि, मा भैषीः - भयं मा वह, पुत्रि = कन्यके, त्वाम् = बालिकाम्, मातुः = जनन्याः, समीपे, अन्तिके, प्राप-

यिष्यामः = प्रेषयिष्यामः, दुहितः = पुत्रि, खेदं दुःखम्. मा वह = मा कुरु, भगवति - देवि, भुङ्क्ष्व = अशान, किञ्चित् - ईषत्, पिव पय = दुग्धम् पिब, एते = अत्रत्याः, तव भ्रातरः, = वन्धवः, यत् कथयिष्यसि - यत् वदिष्यसि, तदेव, करिष्यामः, रोदनैः = विलपनैः, प्राणान् = असून्, संशयपदवीम् = सन्देहावस्थाम्, आरोपयः = प्राप्नुहि, कोमलम् = सुकुमारम्, इदम् शरीरम् एतत् तनुम्, शोक-ज्वालावलीढ़म् = शोकसंतप्तम्, मास्मकार्षीः = मा कुरु," इति = एवम्, सहस्त्रधा = अनेकधा, बोधनेन = सान्त्वना प्रदानेन, कथमपि, सम्बुद्धा = बोधिता, किञ्चिद् -- ईषद्, दुग्धम् = क्षीरम्, पीतवती = अपिवत्, ततश्च = तदनन्तरम्, मया = मुनिना, क्रोडे = अङ्के, उपवेश्य = प्रस्थाप्य, बालिके = पुत्रि ! कथय = वद, क्व = कुत्र, ते = तव, पितरौ जनकौ, कथम्, एतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते = इह-तपोवने, समायाता = आगता, किं ते - किम् तव, कष्टम् दुखम्, कथमारोदीः रोदनमकरोः, किं वाच्छसि = किमिच्छिसि, किं कुर्मः = किं कुर्याम, इति = एवम्, पृष्टा = पृष्टे सति, मुग्धतया = सरलतया, अपरिकलितवाक्पाटवा = अविज्ञात भाषणचातुर्यं, भयेन = भीत्या, विशिथिलवचनविन्यासा = अस्तव्यस्तभाषणा, लज्जया = ह्रिया, अति मन्दस्वरा = अनुच्चगिरा, शोकेन = चिन्तया, रुद्धकण्ठा = कलुषित कण्ठा, चकितचकितेव = अतिभीतेव, कथं कथमपि = येनकेनापि प्रकारेण, अवोधयत = अज्ञापयत्, अस्मान् = आश्रमवासिनः यत्, एषा = बालिका, अस्मिन् = एतस्मिन्, नेदीयसि, अतिसमीपे, एव, ग्रामे = पुरे, निवसतः, कस्यापि = कस्य-चित्, ब्राह्मणस्य = विप्रस्य, तनया = पुत्री, अस्ति ।

हिन्दी-व्याख्या—मा भैषीः = मत डरो । प्रापयिष्यामः = भेज दूंगा, 'प्र + आ + √अप् + णिच् + लृट् (मिप्)' । दुहितः = पुत्रि । मा वह = मत करो, यहाँ 'मा' निषेधार्थक है, 'माङ्' का 'मा' नहीं है, अतः लोट् लकार का प्रयोग हुआ है । भुङक्ष्व = खाओ, √'भुज् + लोट्'—'भुज्' धातु भक्षण के अर्थ में आत्मनेपद तथा अन्य अर्थ में परस्मैपद होता है । संशयपदवीम् = संशय पदवी को । आरोप्यः = प्राप्त करो, 'मा' के योग के कारण लङ् लकार हुआ है । शोकज्वालावलीढम् = शोकाग्नि से व्याप्त, शोक एव ज्वाला तया व्याप्तम् (तत्पु०), अवलीढम् = व्याप्त । कार्षीः = करो, मास्म के योग में 'लुङ्' लकार । बोधनेन = समझाने से । सम्बुद्धा = आश्वस्त हुई । पीतवती = पी, 'पा + क्तवतु

+ङीप्' (स्त्री०)। क्रोडे = गोद में। उपवेश्य = बैठाकर। आरोदीः = रोई। पृष्टा = पूछी गई। मुग्धतया = बालस्वभाव के कारण। अपरिकलितवाक्पाटवा = भाषण चातुरी से रहित, 'अपरिकलितम् वाक्पाटवम् यया सा। विशिथिल-वचनविन्यासा = लड़खड़ाते हुए शब्दों में बोलने वाली = विशिथिलः। वचन-विन्यासः यस्याः सा (ब० व्री०)। अतिमन्दस्वरा = अत्यन्त धीमे स्वरों वाली। रुद्धकण्ठा = रुँधे हुए गले वाली, 'रुध् + क्त' = रुद्ध (रुँधा हुआ)। चकितचकिता = अत्यन्त चकित हुई। नेदयसि = अति निकट के ही (गाँव का विशेषण)। अतिशयेन अन्तिकमिति नेदीयान्, 'अन्तिक → नेद + इयसुन् 'अन्तिकबाढयोर्नेद-साधौ' से 'अन्तिक' के 'नेद' आदेश तथा इयसुन् प्रत्यय हुआ है। वसतः = निवास करने वाले (ब्राह्मण का विशेषण)। तनया = पुत्री।

टिप्पणी (१) 'शोकज्वालावलीढम्'—शोकरूप ज्वाला से व्याप्त। यहा रूपक अलङ्कार है।

(२) भयाकुला बालिका का सुन्दर चित्रण किया गया है।

एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवनतनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः किञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदकस्मात्सन्दर्श्य बिभीषकयाऽस्याः क्रन्दनकोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपजगाम। दृष्ट्वैव यवनतनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाशपलाशिश्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुनारोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽनीतेन।

हिन्दी अनुवाद—इस सुन्दरी को देखकर एक कोई मुसलमान का लड़का नदी के किनारे से माता के हाथ से (इसे) छीनकर रोती हुई लेकर भागा। तब कुछ दूर जाकर, जब (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके क्रन्दन कोलाहल (रोने के शब्द) को शान्त करना चाहा, तभी अकस्मात् काल-कम्बल के समान एक रीछ जंगल के किनारे से आ पहुँचा। उसे देखते ही वह मुसलमान बालक उस (कन्या) को वहीं छोड़कर एक शाल्मली (सेमर) के पेड़ पर चढ़ गया। यह ब्राह्मण-पुत्री पलाशवृक्षों की श्रेणी (झुरमुट) में प्रवेश करके घुणाक्षर

न्याय से इसी ओर आई (और) जब भय के कारण पुनः रोना प्रारम्भ किया, तभी मेरे छात्र के द्वारा (यहाँ) लाई गई।

संस्कृत-व्याख्या—एनां = इमाम् कन्यकाम्, सुन्दरी सौन्दर्यशीलां, आकलय्य = निश्चित्य, कोऽपि = कश्चिदपि, यवनतनयः = यवनपुत्रः, नदीतटात् = सरित्तीरात्, मातुः = जनन्याः, हस्तात् = करात्, आच्छिद्य = अपहृत्य क्रन्दन्तीम् = रुदतीम्, नीत्वा = उपगृह्य, अपससार = पलायितवान्। ततः = तदनन्तरम्, कञ्चित् = ईषद्, अध्वानम् = = मार्गम्, अतिक्रम्य = गत्वा, यावत् = यदैव, असिधेनुकाम् = छुरिकाम्, सन्दर्श्य = दर्शयित्वा, विभीषकया = भयदर्शनेन, अस्याः = बालिकायाः, क्रन्दनकोलाहलम् = रुदनशब्दम्, शमयितुम् = शान्तं कर्तुम् इयेष = इच्छाञ्चकार; तावत्, अकस्मात् = सहसैव, कोऽपि, कालकम्बल = यमकम्बल, इव, भल्लूकः = रीच्छः, वनान्तात् = अरण्यप्रान्तात्, उपजगाम = समीपमाजगाम। दृष्टैव = अवलोक्यैव, असौ = अयम्, यवनतनयः यवनपुत्रः, इमाम्, कन्यकाम् = बालिकाम्, तत्रैव तस्मिन्नेव स्थाने, त्यक्त्वा = परित्यज्य, एकम्, शाल्मलीतरुम् = शाल्मलीवृक्षम्, आरुरोह - आरोहितवान्। विप्रतनया = ब्राह्मणपुत्री, च इयम्, पलाशपलाशिश्रेण्यां = पलाशतरुपंक्तौ, प्रविश्य = प्रवेशं-कृत्वा घुणाक्षरन्यायेन = संयोगवशेन, इतएव = आश्रमाभिमुखमेव, समायाता = आगता, यावत्, भयेन = त्रासेन, पुनः भूयः, रोदितुम् - क्रन्दितुम्, आरब्धवती = आरेभे, तावत् एव, अस्मच्छात्रेण — मुनिशिष्येन, एव, आनीता = समानीता।

हिन्दी-व्याख्या - आकलय्य - जानकर, आ + √कल + ल्यप्। यवनतनयः = मुसलमान का पुत्र। नदीतटात् = नदी के तट से, नद्याः तटम्, तस्मात् (तत्पु०)। आच्छिद्य = छीनकर, आ + √छिद् + ल्यप्। क्रन्दन्तीम् = रोती हुई (बालिका को), √क्रन्द + शतृ (द्वि० एकवचन)। नीत्वा = लेकर, नी + क्त्वा। अपससार = भागा, अप + √सृ (लिट् तिप्)। ततः = उसके बाद। अध्वानम् = रास्ता। अतिक्रम्य = जाकर, अति + √क्रम् + ल्यप्। असिधेनुकाम् - छुरी को, "छुरिका चासिधेनुका" (अमरकोष)। सन्दर्श्य = दिखाकर, 'सम् + √दृश् + णि + ल्यप्'। विभीषकया = भय से, '√भी + सन् + इ + क (स्त्रियाम्)। क्रन्दनकोलाहलम् = रोने के शब्द को, क्रन्दनस्य कोलाहलम्। शमयितुम् = शान्त करने के लिये, '√शम् णि तुमुन्'। इयेष इच्छा की, "√इष्

(इच्छायां) + लिट् (तिप्)" कालकम्बल इव = काले कम्बल के समान अथवा यमराज के कम्बल के समान, काल = यमराज अथवा कृष्णवर्ण, कालश्चासौ कम्बलः, काल कम्बलः (कर्मधारय) अथवा कालस्य (यमस्य) कम्बलः, कालकम्बलः (तत्पु०)। भल्लूकः भालू या रीछ। वनान्तात् = जंगल के किनारे से, वनस्य अन्तः, तस्मात्। उपजगाम = आया, 'उप + √गम् + लिट्'। त्यक्त्वा = छोड़कर, '√त्यज् + क्त्वा' शाल्मलीतरुम् = सेमर के वृक्ष पर। आरुरोह = चढ़ गया, आ + √रुह + लिंट् (तिप्)। विप्रतनया ब्राह्मण की लड़की, विप्रस्य तनया। पलाशपलाशिश्रेण्याम् = पलाश (छिडल) वृक्षों के बीच में, पलाशाश्च ते पलाशिनः (वृक्षाः) तेषां श्रेणी, तस्याम् (तत्पु०), पलाश = किंशुक, पलाशी = वृक्ष, पलाशाः पत्राणि सन्ति यस्मिन् सः, 'पलाश (पत्रे) + इनि'। प्रविश्य = घुसकर, 'प्र + √विश् + ल्यप्'। घुणाक्षरन्यायेन संयोगवश, जिस प्रकार घुन (घुण संस्कृत में), एक प्रकार का काष्ठ भेदन करने वाला कीड़ा, जब लकड़ी का भेदन करता है तो कभी-कभी उसकी पंक्तियाँ अक्षर (क-ख) के रूप में बन जाती हैं, उसी प्रकार से बिना सोचे हुए काम के अकस्मात् हो जाने को घुणाक्षरन्याय कहते हैं। समायाता = आई, सम् + आ + √या + क्त (टाप्)। पुनारोदितुम् = पुनः रोने के लिये, 'पुनः के विसर्ग का सन्धिनियम 'रोरि' से लोप होकर 'न' को 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' से दीर्घ हो गया है। रोदितुम् = √'रुद् + इ + तुमुन्'। आरब्धवती = प्रारम्भ किया, आ + रभ् + क्तवतु + ङीप् (स्त्रियाम्)। अस्मच्छात्रेण मेरे छात्र द्वारा। आनीता = लाई गई, आ + √नी + क्त (टाप्)।

टिप्पणी—"पलाशपलाशिश्रेण्याम्" में यमक अलंकार।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रवोच—'विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचारणामुपद्रवः ?" ततः स उवाच—

महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्? वीरविक्रमस्य तु मारतभुव विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जय-जय ध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे-तीर्थे घण्टानादः? क्वाद्यापि मठे-मठे वेद घोषा.? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते: "क्वचिन्मन्दिराणि भिन्द्यन्त

क्वचित्तुलसीवनानि छिन्द्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि—लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिदरुधिरधारा, क्वचिद्ग्निदाहः, गृहनिपातः" इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

हिन्दी अनुवाद—यह सुनकर क्रोधाग्नि की ज्वाला से प्रज्वलित होते हुए से योगिराज बोले—"विक्रमराज्य में भी इस प्रकार दुराचारियों का पापमय उपद्रव कैसे ?" तब वे (ब्रह्मचारी के गुरु) बोले—

महात्मन् ! अब विक्रम का राज्य कहाँ है ? वीर विक्रम को तो भारत-भूमि छोड़कर गये हुए सत्रह सौ वर्ष बीत गये। इस समय मन्दिरों में जय-जय की ध्वनि कहाँ ? तीर्थों में इस समय घण्टा का नाद कहाँ ? मठों में आज वेदध्वनि कहाँ ? आज तो वेद फाड़कर वीथियों (मार्गों) में बिखेरे जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उछालकर आग में झोंका जाता है, पुराणों को पीसकर पानी में फेंका जाता है, भाष्य नष्ट करके भाड़ों में झोंके जाते हैं, कहीं पर मन्दिर तोड़े जाते हैं, कहीं तुलसी के जंगल काटे जाते हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण किया जाता है, कहीं रुधिर की धारा, कहीं अग्निदाह है तो कहीं घर गिराये जाते हैं" चारों ओर यही सुनाई देता है और यही दिखाई देता है।

संस्कृत-व्याख्या—महात्मन् = महानुभाव ! क्वाधुना = क्वेदानीम्, विक्रमराज्यम् = वीरविक्रमादित्यस्य राज्यम्, वीरविक्रमस्य = एतन्नामकस्य राज्ञः, तु, भारतभुवम् = एतद्देशम्, विरहय्य = परित्यज्य, गतस्य, यातस्य वर्षाणां = संवत्सराणाम्, सप्तदशशतकानि = सप्तदशशतसंख्यापरिमितानि, व्यतीतानि = जातानि, क्वाधुना = क्वेदानीम्, मन्दिरे-मन्दिरे = प्रतिमन्दिरं, जय जय ध्वनिः = जयजयकारः, क्व सम्प्रति = इदानीम्, तीर्थे-तीर्थे = प्रतितीर्थे, घण्टानादः = घण्टाध्वनिः, क्व, अद्यापि = इदानीमपि, मठे-मठे = प्रतिमठम्, वेद-घोषः = वेद-पाठ, अद्य हि = इदानीन्तु, वेदाः = निगमाः, विच्छिद्य = विपाट्य, वीथीषु = पथिषु, विक्षिप्यन्ते = विकीर्यन्ते, धर्मशास्त्राणि = धर्मग्रन्थान्, उद्धूय = उत्तोल्य, धूम-छत्रजेषु अग्निषु, ध्मायन्ते = ज्वाल्यन्ते पुराणानि श्रीमद्भागवतादीनि पुराणानि, पिष्ट्वा = चूर्णीकृत्य, पानीयेषु = जलेषु, पात्यन्ते = निक्षिप्यन्ते, भाष्याणि = सूत्रव्याख्यानानि महाभाष्यादीनि, भ्रंशयित्वा = चूर्णयित्वा, भ्राष्ट्रेषु = भर्जनेषु, भर्ज्यन्ते = प्रज्वाल्यन्ते; क्वचिद्, मन्दिराणि = देवालयान्, भिद्यन्ते =

विनश्यन्ते, क्वचिद्, तुलसीवनानि = तुलसीवृक्षाः छिद्यन्ते = कर्त्यन्ते, क्वचिद्, दाराः = भार्याः, अपह्रियन्ते = लुण्ठ्यन्ते, क्वचित्, धनानि = सम्पदः, लुण्ठ्यन्ते = चोर्यन्ते, क्वचिद्, आर्तनादाः = करुणक्रन्दनानि, क्वचित्, रुधिरधारा रक्तधाराः, क्वचिद्, अग्निदाहः = अग्निकाण्डम्, क्वचित् गृहनिपातः = सद्मध्वंसनम्, इत्येव, श्रूयते = आकर्ण्यते, अवलोक्यते = दृश्यते, च, परितः = चतुर्दिक्षु ।

हिन्दी-व्याख्या – **तदाकर्ण्य** = वह सुनकर । **कोपज्वालाज्वलित इव** = कोप (क्रोध) की ज्वाला से ज्वलित हुए के समान, कोपस्य ज्वालया ज्वलितः (तत्पु०) । **प्रोवाच** = बोले । **विक्रमराज्ये** = विक्रमादित्य के राज्य में । **पातकमयः** = पापमय, 'पातक + मयट्' ।

महात्मन् = महानुभाव, महान् आत्मा यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ-महात्मन् । **भारतभुवम्** = भारत की पृथ्वी, भारतस्य भूः, ताम् । **विरहय्य** = छोड़कर, 'वि + √रह + ल्यप्' । **गतस्य** = गये हुए का, √गम् + क्त (षष्ठी) । **सप्तदशशतकानि** = सत्रह सौ । **व्यतीतानि** बीत गये; वि + √अत + क्त (नपुं०) । **मन्दिरे-मन्दिरे** = प्रत्येक मन्दिर में । **मठे-मठे** = प्रत्येक मठों में, 'मठ' गुरुकुल के आश्रमों को कहा जाता था 'मठश्छात्रादिनिलयः' (अमरकोष) । **वेद-घोषः** = वेदों का पाठ । **विच्छिद्य** = फाड़कर, 'वि + √छिद् + ल्यप्' । **वीथीषु** = मार्गों में । **विक्षिप्यन्ते** = फेंके जाते हैं । **उद्धूय** = उड़ाकर, 'उद् + √धूञ् + ल्यप्' । **धूमध्वजेषु** = अग्नि में, धूमः ध्वजा यस्य सः तेषु (बहुव्रीहि) । **ध्मायन्ते** = झोंके जाते हैं, '√ध्मा' (शब्दाग्निसंयोगयोः) से भावकर्म, लट् । **पिष्ट्वा** = पीसकर (फाड़कर), √पिष् + क्त्वा' । **पात्यन्ते** = डाले जाते हैं । **भाष्याणि** = भाष्यों को, सूत्रात्मक शैली में लिखे गये ग्रन्थों विस्तृत व्याख्या को भाष्य कहा जाता है जैसे—महाभाष्य, वात्स्यायन भाष्य आदि । **भ्रंशयित्वा** = नष्ट करके । **भ्राष्ट्रेषु** = भाड़ों में । **भर्ज्यन्ते** = जलाये जाते हैं, '√भृजी (भर्जने) + यक् (भावकर्म) + लट्' । **भिद्यन्ते** = तोड़े जाते हैं, √भिद् + यक् + लट् । **छिद्यन्ते** = काटे जाते हैं । **दाराः** = स्त्री, √'दृ' (विदारणे) + णि + घञ्' दारयति हृदयम् इति दाराः' (हृदय को विदीर्ण करने वाली), 'दारा' शब्द का प्रयोग नित्य बहुवचन में होता है—"दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वम्" **लुण्ठ्यन्ते** = लूटे जाते हैं । **आर्तनादाः** = करुणक्रन्दन । **रुधिरधाराः** = खून की धारा । **अग्निदाहः** = अग्निकाण्ड ।

गृहनिपातः = घरों का विध्वंस । इयेत्व = यही । श्रूयते = सुनाई पड़ता है। अवलोक्यते = दिखाई पड़ता है।

टिप्पणी—(१) 'कोपज्वालाज्वलित इव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। (२) प्रसाद गुण है। (३) वैदर्भी रीति।

तदाकर्ण्य दुःखितश्चकितश्च योगिराडुवाच--"कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्यपदलाञ्छनो वीरविक्रमः । अद्यापि तद् विजयपताका मम चक्षुषोरग्रतः इव समुद्धूयन्ते, अधुनाऽपि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणाम् सप्तदशशतकानि व्यतीतानि" इति ?

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथिप्तम्—

हिन्दी अनुवाद—(योगिराज के (ये वचन सुनकर) दुखित और चकित होते हुये बोले—यह कैसे ? अभी तो कल ही आदित्य पद विभूषित श्रीमान् वीर विक्रमादित्य पर्वतीय शकों को जीतकर बहुत बड़े जयघोष के साथ अपनी राजधानी (उज्जयिनी) को आये हैं। आज भी उनकी विजयिनी पताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फ़हरा सी रही हैं, इस समय भी उनके नगाड़े और तुरही आदि बाजों की ध्वनि मेरे कानों के छिद्र को पूरित सी कर रही हैं, तो कैसे आज सत्रहं सौ वर्ष बीत गये।

(योगिराज के ये वचन सुनकर सभी के स्तब्ध और चकित हो जाने पर, ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम करके कहा—

संस्कृत-व्याख्या—तदाकर्ण्य = तच्छ्रुत्वा, दुखितः = व्यथितः, चकितः = आश्चर्यान्वितः, च, योगिराट् = महामुनिः, उवाच = जगाद,—"कथमेतत् = कथमिदं जातम् ! ह्य एव = पूर्वदिने एव, पर्वतीयान = पर्वतनिवासिनः, शकान् = शकजातीः, विनिर्जित्य = विजयं कृत्वा, महमा = अत्युन्नतेन, जयघोषेण जयजयकारेण, (सह) स्वराजधानीम् । उज्जयिनीम्, आयातः = समागतः श्रीमान् = शोभावान्, आदित्यपदलाञ्छनः = आदित्यपदवीकः, वीरविक्रमः = शूरः विक्रमा•

दित्यः । अद्यापि, तद्विजयपताकाः = विक्रमविजयध्वजाः, मम = योगिराजः चक्षुषो = नयनयोः अग्रतः इव पुरतः इव, समुद्धूयन्ते = कम्पमानाविराजन्ते, अधुनाऽपि = इदानीमपि, तेषां विक्रमाणाम्, पटहगोमुखादीनां = वाद्यविशेषाणाम्, निनादः = ध्वनिः कर्णशष्कुलीम् = श्रोत्ररन्ध्रम्, पूरयतीव = पूर्णंकरोतीव, तत्कथम्, अद्य = इदानीम्, वर्षानां = सवत्सराणां, सप्तदशशतकानि = एतत् संख्या परिमितानि, व्यतीतानि = जातानि," इति (पृष्टवान्) । ततः तदनन्तरम्, सर्वेषु = जनेषु, स्तब्धेषु = शान्तेषुः चकितेषु = आश्चर्यभूतेषु, च ब्रह्मचारिगुरुणा = आश्रमस्थमुनिना, प्रणम्य = नमस्कृत्य, कथितम् = उक्तम् ।

हिन्दी-व्याख्या—तदाकर्ण्य = वह सुनकर । पर्वतीयान् = पर्वतनिवासियों को, पर्वते भवाः पर्वतीयाः, 'पर्वत + छ (ईय)' । शकान् = शकवंशी राजाओं को । विनिर्जित्य = जीतकर, 'वि + निर् + √जी + ल्यप्' महता = बहुत अधिक । जयघोषेण = जयघोष के साथ । स्वराजधानीम् = अपनी राजधानी को स्वस्य राजधानीम्, (तत्पु०) । आदित्यपदलाञ्छनः = आदित्य पद से विभूषित, "कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च लक्षणम्" (अमरकोष) । तद्विजयपताकाः = उनकी विजय पताकायें, तेषां विजयस्य पताकाः (तत्पु०) । चक्षुषोः = नेत्रों के । अग्रतः = सामने । समुद्धूयन्ते = फहरा रही हैं, 'सम् + उद् + √धूञ् + लट् (आत्म०) । पटहगोमुखादीनां = नगाड़ा और तुरही आदि की । निनादः = ध्वनि । कर्णशष्कुलीम् = कान के छिद्रों को, कर्णयोः शष्कुली, ताम् । पूरयतीव = मानों भर रहे हैं । सर्वेषु स्तब्धेषु = सभी के शान्त हो जाने पर । प्रणम्य = प्रणाम करके । कथितम् = कहा ।

टिप्पणी—(१) योगिराज जो राजा विक्रमादित्य के राज्य में समाधि लगाये थे और यवन साम्राज्य में जगे थे । राजा विक्रमादित्य ने शक जातियों के राजाओं को जीत लिया था । इसी का निर्देश किया गया है ।

(२) "अद्यापि······पूरयतीव" आज भी उनकी विजय पताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फहरा सी रहीं हैं, तथा उनके नगाड़ों और तुरही का निनाद मानों मेरे कर्ण-छिद्रों को भर रहा है, यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

भगवन् ? बद्धसिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशन्द्रियैरनाहतनाद—तन्तुमवलम्ब्याज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं

भित्वा, तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्त्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रमगाणैमृ त्युञ्जयै रानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः ; तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम्, न सा संस्था नगराणाम् आकृतिर्गिरीणाम न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिक कथयामो भारतवर्षमधुना अत्यादृशमेव सम्पन्नामस्ति।

हिन्दी अनुवाद—"भगवन्! सिद्धासन बाँधकर, साँस रोककर, कुण्डलिनी जगाकर, दशों इन्द्रियों को जीतकर, अनाहत नाद के तन्तु का अवलम्बन करके, आज्ञाचक्र को ध्यान का लक्ष्य बना करके, चन्द्र-मण्डल का भेदन करके, तेजः-पुञ्ज (चन्द्र-चक्रवर्ती महाप्रकाश) का तिरस्कार करके, सहस्त्रार चक्र के अन्दर प्रवेश करके, परमात्मा को साक्षात्कार करके उसी में रमण करने वाले, मृत्यु को जीतने वाले आनन्दमात्र स्वरूप वाले तथा ध्यान में स्थित रहने वाले आप जैसे (महात्माओं) के द्वारा समय का वेग नहीं जाना जाता है। इस समय आप ने जिन पुरुषों को देखा था, अब उनका पचासवाँ (पचासवीं पीढ़ी का) पुरुष भी नहीं दिखाई पड़ता है। आज नदियों की वे धारायें नहीं है, नगरों की वह स्थिति नहीं है, पर्वतों की वह आकृति नहीं है, जंगलों की वह सान्द्रता (सघनता) नहीं है। और अधिक क्या कहें? भारतवर्ष इस समय दूसरे ही प्रकार का हो गया है।"

संस्कृत-व्याख्या = भगवन् - महात्मन्, बद्धसिद्धासनै = गृहीतासन विशेषैः निरुद्धनिःश्वासैः = अन्तर्नियमित प्राणैः प्रबोधित कुण्डलिनी कैः = उद्योतित कुण्डलिनीकैः, विजितदशेन्द्रियैः = जितेन्द्रियैः, अनाहतनादतन्तुम् = सुषुम्णामध्येस्थितात् तुरीयपद्मादुत्पत्नो नादः, तस्य तन्तुम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, आज्ञाचक्रम् = भ्रुवोर्मध्ये द्विदलात्मकं चक्रम्, संस्पृश्य = उपस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं = षोडशदलात्मकं चक्रम्, भित्त्वा = उद्भिद्य, तेजःपुञ्जम् = सोमचक्रिवर्तिनम् महाप्रकाशम् अविगणय्य = तिरस्कृत्य, सहस्त्रदलकमलस्यान्तः = सहस्त्रारचक्रस्यान्तः, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, परमात्मानम् = परंब्रह्म, साक्षात्कृत्य = प्रत्यक्षी-

कृत्य: तत्रैव = ब्रह्मणि-रममाणैः = विहरद्भिः, मृत्युञ्जयैः = स्वायत्तीकृत कालवृत्तिभिः. आनन्दमात्रस्वरूपैः = ब्रह्मरूपैः, ध्यानावस्थितैः = आवद्धध्यानैः, भवादृशैः = भवत्सदृशैः, कलिवेगः = समयचक्रः, न ज्ञायते = प्रतीयते। तस्मिन् समये = तत्काले, भवता = योगिराजा, ये पुरुषाः = मनुष्याः, अवलोकिताः = दृष्टाः, तेषां = तत्पुरुषाणाम्, पञ्चाशत्तमः = पञ्चाशत् संख्यापूरकः, अपि पुरुषः = व्यक्तिः, न अवलोक्यते = न दृश्यते। अद्य = अधुना, न तानि, स्रोतांसि = धाराः, नदीनाम् सरिताम्, नः सा = पुरावर्तिनी, संस्था = स्थितिः, नगराणाम् = जनपदानाम्, न सा, आकृतिः = स्वरूपः, गिरीणाम् = पर्वताणाम्, न सा, सान्द्रता = सघनता, विपिनानाम् = अरण्यानाम्, किमधिकं = किं बहुतरं कथयामः = गदामः, अधुना = इदानीम्, भारतवर्षन् = भारतदेशः, अन्यादृशम = अन्यप्रकारम्, एव, सम्पन्नम् = जातम्, अस्ति = भवति।

हिन्दी-व्याख्या—**बद्धसिद्धासनैः** = सिद्धासन बाँधने वाले, बद्धम् सिद्धासनं यैस्तैः (ब० व्री०), सिद्धासन = योगशास्त्र में वर्णित समाधि से सम्बन्धित एक विशेष प्रकार का आसन (बैठने का ढंग)। **निरुद्धनिःश्वासैः** = साँस को रोकने वाले, निरुद्धाः निश्वासाः यैः, तैः (ब० व्री०), ध्यान की दशा में सांसों को रोक लिया जाता है, निरुद्ध = 'नि + √ रुध् + क्त'। **प्रबोधितकुण्डलिनीकैः** = कुण्डलिन को जगाने वाले, प्रबोधिताकुण्डलिनी यैः, तैः; कुण्डलिनी = पराशक्ति से अभिहित एक नाड़ी संस्थान है। **विजितदशेन्द्रियैः** = दशों इन्द्रियों को जीतने वाले (पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ)। **अनाहतनादतन्तुम्** = अनाहत नाद के तन्तु का, अनाहतश्चासौ नादः, तस्य तन्तुः तम्; अनाहतनाद = सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में स्थित एक तुरीय (चतुर्थ) कमल है, जिसे योगशास्त्र के अनुसार 'अनाहत' कहा जाता है, उसी कमल से उत्पन्न नाद को अनाहत नाद कहते हैं। **आज्ञाचक्रम्** = आज्ञा चक्र को, दोनों भृकुटियों में मध्य में एक दो दलों वाला कमल है उसे योगशास्त्र के अनुसार आज्ञा, चक्र कहा जाता है, योगी लोग उसी को लक्ष्य करके ध्यान करते हैं। **संस्पृश्य** = ध्यान का अवलम्बन करके, 'सम् + √स्पृश् + ल्यप्'। **चन्द्रमण्डलं** = चन्द्रमण्डल को आज्ञा चक्र से भी परे सोलह दलों वाला कमल चक्र। **भित्वा** = भेदन करके। **तेजःपुञ्जम्** = चन्द्रमण्डल चक्र से सम्बद्ध महाप्रकाश को। **अविगणय्य** = तिरस्कार करके, 'अ + वि + √गण् +

ल्यप्' । सहस्त्रदलकमलस्यान्तः=सहस्त्र दल कमल के अन्दर, पूर्व चक्र से भी परे एक सहस्त्रार चक्र होता है, जहाँ मधु की वर्षा होती है, उसी सहस्त्रार चक्र के अन्दर। प्रविश्य=प्रवेश करके । परमात्मानम्=ब्रह्म को, परमश्चासौ आत्मा, तम् । साक्षात्कृत्य=साक्षात्कार करके। रममाणैः=रमण करने वाले √'रम्+शानच्' मृत्युञ्जयैः=मृत्यु को जीतने वाले, मृत्युम् जयतीति मृत्युञ्जयः। आनन्दमात्रस्वरूपैः=आनन्दस्वरूप, जो ब्रह्म में लीन हो जाता हैं, वह उसमें लीन होने के कारण ब्रह्मस्वरूप हो जाता है और ब्रह्म आनन्दरूप हैं। अतः वह भी आनन्दरूप हो जाता हैं। ध्यानावस्थितैः=ध्यान (समाधि) में स्थित होने वाले, ध्याने अवस्थिताः तैः । भवादृशैः=आप जैसों के द्वारा न ज्ञायते=नहीं जाना जाता हैं। कालवेगः=समय की गति । अवलोकिताः= देखे थे । पञ्चाशतमोऽपि=पचारावाँ भी अर्थात् आप के द्वारा देखे गये पुरुष की पचासवीं पीढ़ी का भी पुरुष। न अवलोक्यते=नहीं दिखाई पड़ता। स्रोतांसि=धारायें । संस्था=स्थिति । सान्द्रता=गहनता, सान्द्रस्य भावः, 'सान्द्र+तल' (स्त्रियां टाप्)। अन्यादृशम्=अन्य प्रकार का। सम्पन्नमस्ति= हो गया हैं।

टिप्पणी—(१) पूर्व की पंक्तियों में योग के अनुसार समाधि की व्यावहारिक प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है।

(२) यहाँ पर लेखक ने गौडी रीति को स्वीकार किया हैं।

(३) शब्दयोजना और भावात्मकता दोनों ही दृष्टि से गद्य में विशेष प्रवाह हैं।

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मियन्नेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद– "सत्यं न लक्षितो मया समयवेगः । यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधिरहं वैक्रम समये उदस्थाम् । पुनश्च वैक्रमसमये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचार-मये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि । अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् संक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति ।"

हिन्दी अनुवाद—यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुये से, चारों ओर देखकर योगिराज बोले—'सत्य है, मैंने समय वेग को नहीं देखा । युधिष्ठिर के समय में समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समय में उठा और पुनः विक्रमादित्य

के समय में समाधि लगाकर दुराचारमय समय में उठा हूँ। मैं पुनः जाकर समाधि ही लगाऊँगा, किन्तु तब तक संक्षेप में बताइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है।

संस्कृत-व्याख्या—इदम् एतत्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, किञ्चित्=ईषद्, स्मित्वा=विहस्य, इव, परितः=समन्तात्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, योगी=महामुनिः, जगाद=उवाच—"सत्यम्=युक्तम्, न लक्षितः=न परिज्ञातः, मया=योगिराजेण, समयवेगः=काल प्रवाहः, यौधिष्ठरे=युधिष्ठिरस्य, समये=काले, कलितसमाधिः=समाधिस्थः, अहम्=योगी, वैक्रम-समये=विक्रमादित्यस्य काले, उदस्थाम्=उत्थितः, पुनश्च=भूयोऽपि, वैक्रमसमये=तत्काले, समाधिम्=ध्यानम्, आकलय्य=आबद्ध्य, अस्मिन्=एतस्मिन्, दुराचारमये=अत्याचारात्मके काले, अहम्—योगी, उत्थितः=जागृतः,-अस्मि। अहम्=योगिराड्, पुनः=भूतः, गत्वा=शैलशिखरमुपेत्य, समाधिमेव=ध्यानमेव कलयिष्यामि=धारयिष्यामि, किन्तु=परञ्च, तावत्=किञ्चित्कालेन, भारतवर्षस्य=अस्मद्देशस्य, का दशा=कीदृशी अवस्था, इति=एतत्, संक्षिप्य=अनतिविस्तरेण, कथ्यताम्=ज्ञाप्यताम् ?

हिन्दी-व्याख्या—किञ्चित् स्मित्वा इव=मानो कुछ मुस्करा करके। **अवलोक्य**=देखकर, 'अव+√लोक+ल्यप्'। **जगाद**=बोले, '√गद (व्यक्तायां वाचि)+लिट्=तिप्'। **न लक्षितः**=नहीं समझा। **समयवेगः**=कालचक्र को, समयस्य वेगः (तत्पु०), योगि लोग समाधि के द्वारा काल को भी स्थिर कर देते हैं, अर्थात् काल जनित क्रियायें उनमें नहीं होतीं। अतः साधारण जन के लिये होने वाले इस दुरति कालक्रम का उनके लिये कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। इसीलिये योगिराज समय चक्र को नहीं जान पाये। **यौधिष्ठिरे**=युधिष्ठिर के अर्थात् युधिष्ठिर से सम्बद्ध, युधिष्ठिरस्य अयम्-यौधिष्ठिरः, (युधिष्ठिर+अण) तस्मिन्=यौधिष्ठिरे। **कलितसमाधिः**=समाधि लगाये हुये कलितः समाधिः येन सः (ब०व्री०), योगिराज का विशेषण। **वैक्रमसमये**=विक्रमादित्य के समय में, विक्रमस्य अयम्=वैक्रमः, सः चासौ समयः, वैक्रमसमयः, तस्मिन्। **समाधिम्**=समाधि को। **आकलय्य**=लगाकर, 'आ+कल+ल्यप्'। **दुराचारमये**=अत्याचार से युक्त, दुराचारेण युक्तः, दुराचारमयः

तस्मिन्, 'दुराचार + मयट्' (स० ए० व०)। उत्थितः = उठा हूँ, 'उद् + √स्था + इट् + क्त'। कलयिष्यामि = लगाऊँगा, '√कल + लृट् (मिप्)'। संक्षिप्य = संक्षिप्त करके। कथ्यताम् = कहिए।

तत्संश्रुत्य भारतवर्षीयदशासंस्मरण संजातशोको हृदयस्थप्रसाद सम्भारोद्गिरणश्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण "मा स्म धर्मध्वंसनघोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय" इति कण्ठ रुन्धतो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य; उष्णं निःश्वस्य कातराभ्यामिव नयनाभ्याम् परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—"भगवन्! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुणदानवोदन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लौहसारमयम्, हृदयम्, यत्संस्मृत्य यावनान्परस्सहस्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाभिमन्यामहे"—

हिन्दी अनुवाद—यह सुनकर, भारतवर्ष की दशा के स्मरण से उत्पन्न हुये शोक वाले, मानो हृदय में स्थित प्रसन्नता को व्यक्त करने के श्रम से अति मन्द स्वर से "धर्म-विध्वंस की कथाओं से योगिराज के धैर्य को मत डिगाओ", इस प्रकार (कहते हुये) गले को रुँधने वाले आँसुओं की चिन्ता न करके, नेत्रों को पोंछकर, ग़रम सांस लेकर, कातर हुये समान नेत्रों से चारों ओर देखकर ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना आरम्भ किया—"भगवन्! यह (मेरी) जिह्वा वज्र से बनी है, जो कि दारुण (भीषण) 'दानवों (यवनों) के वृत्तान्त के वर्णन से विदीर्ण (फट) नहीं हो जाती, हृदय लोहे का बना हुआ है, जो यवनों के हजारों दुराचारों का स्मरण करके टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता और जल कर राख नहीं हो जाता। हम सबको धिक्कार है, जो आज भी जी रहे हैं, सांस ले रहे हैं, विचरण कर रहे हैं और अपने को आर्यों का वंशज मान रहे हैं।"

संस्कृत-व्याख्या—तत्संश्रुत्य = एतच्छ्रुत्वा, भारतवर्षीयायाः = भारतवर्ष सम्बन्धिन्याः, दशायाः = अवस्थायाः, संस्मरणेन = स्मृत्या, संजातः = उत्पन्नः, शोकः = चिन्ता, यस्य सः। हृदयस्थः = चित्तस्थः, यः प्रसादः = प्रसन्नता, तस्य

सम्भार: = अतिशय:, उद्गिरण: = वमनम्, तस्मिन्, श्रम: = खेद:, तेन । इव = सम्भावनायाम् अति मन्थरेण = अतिमन्देन, स्वरेण = गिरया, "मास्म = इति निषेधे, धर्मविध्वंसन घोषणैः = धर्मोन्मूलनकथनैः, योगिराजस्य = महामुने:, धैर्यम् = धीरताम्, अवधीरय = विचालय", इति = एवम्, कण्ठम् = ग्रीवाम्, रुन्धतः = स्तम्भतः, बाष्पान् = अश्रून्, अविगणय्य = अपरिकलय्य, नेत्रे = नयने, प्रमृज्य = परिमार्जनं कृत्वा उष्णं = अनतिशीतम्, नि:श्वस्य = उच्छ्वस्या कातराभ्याम् = दीनाभ्याम्, इव, नयनाभ्याम् = नेत्राभ्याम्, परित: = समस्ताम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, ब्रह्मचारिगुरुः = आश्रमस्थो मुनि:, प्रवक्तुम् — कथयितुम् = आरभत —"आरभे · भगवन् — महर्षे, दम्भोलिघटिता = वज्र निमित, इयम् = एषा, रशना = जिह्वा, या, दारुणा: = कठोरा:, ये दानवा: = म्लेच्छा:, तेषाम् उदन्तस्य = वृत्तान्तस्य, उदीरणैः कथनैः, न दीर्य्यते = न विभिद्यत, तोहसारमयं = अयोनिर्मितम्, हृदयम् = चेत:, यत्, यावनाम् = यवनानाभिमान्, परस्सहस्त्रान् = सहस्त्रादधिकान्, दुराचारान् = अत्याचारान्, शतधा = खण्डश:, न भिद्यते = न विदीर्य्यते, भस्मासात् = अग्निसारमिव, च, न भवति = चोपयाति । धिक् अस्मान् = आर्यवंशान् धिक्, ये = वयम्, अद्यापि = अस्मिन् कालेऽपि, जीवाम: = जीवनं धारयाम:, श्वसिम: = श्वासात् गृह्णाम:, विनराम: चलाम:, आत्मन: = अस्मान्, आर्यवंश्यान् = आर्यवंशीद्भवान्, अभिमन्यामहे = कथयाम: —" ।

हिन्दी व्याख्या · तत्संश्रुत्य - यह सुनकर । 'भारत····· शोक:' = भारत-वर्षीय-भारतवर्ष की, दशा = दशा के, संस्मरण = स्मरण से, संजात = उत्पन्न हो गया है शोक: = सोक जिसको (मुनि का विशेपण), भारतवर्षीयायादशाया: संस्मरणेन सजात: = शोक: यस्य (बहुव्रीहि) । 'हृदयस्थ····· श्रमेण' = हृदयस्थ = हृदय में स्थित, प्रसाद = प्रसन्नता के, सम्भार = अधिकता के, उद्गिरण = व्यक्त करने में, श्रमेण = श्रम के कारण; 'हृदयस्थः य: प्रसाद:, तस्य सम्भारस्य उद्गिरणे य: श्रमस्तेन (तत्पु०) उद्गिरण = 'उद् = + \ 'गृ + ल्युट्' । इव = उत्प्रेक्षावाचक । अतिमन्दरेण = अत्यन्त धीमे । स्वरेण स्वर से । मा = निषेध सूचक अव्यय 'मा' के योग में अट् अथवा आट् का आगम नहीं होता 'मा' के बाद 'स्म' के प्रयोग होने पर लुङ् अथवा लङ् लकार का प्रयोग होता है 'स्मोत्तरे लङ् च' । धर्मध्वंसनधीय: = धर्म के विध्वंस की कथाओं से, धर्मस्य ध्वंसनम्. तस्य· घोषणैः; धर्म = वेदस्मृत्यादि में ·प्रतिपादित कर्त्तव्य

विचार, ध्वंसयतेऽनेनेति ध्वंसनम् √'ध्वंस+ल्युट (अन्), घोषणैः=कथनो से, √'घुष्+ल्युट् (अन्)'। अवधीरय=विचलित करो 'अव+√'धृ+लोट्'। रून्धतः=अवरुद्ध करने वाले, (वाष्पान् का विशेषण)। बाष्पान्=आँसुओं को। अविगणय्य=चिन्ता न करके, 'अ+वि+√गण+ल्यप्'। प्रमृज्य='प्र+√मृज् √ल्यप्' पोंछकर। निःश्वस्य=सांस लेकर 'निर्+श्वस्+ल्यप्'। कातराभ्याम्=कातर (दीन), नयन का विशेषण है। प्रवक्तुम्=कहने के लिये 'प्र+वच्+तुमुन्'। आरभत्=आरम्भ किया, 'आ+√रभ्+लङ् (तिप्)'। दम्भोलिघटिता=वज्र से बनी, दम्भोलिना घटितेतिदम्भोलिघटिता' (तत्पु०)। दम्भोलि=वज्र, 'दम्भोलिरशनिर्द्वयोः' (अमरकोष)। रसना=जिह्वा, रस्यते अनया इति रसना। दारुणदानवोदन्तोदीरणैः=भीषणदानवों के वृत्तान्त के वर्णन से दारुणः ये दानवाः तेषाम् उदन्तस्य उदीरणैः (तत्पु०); दारुण=भीषण, दानव=म्लेच्छ या यवन, उदन्त=वृत्तान्त, 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः उदन्तः स्यात्' (अमर०), उदीरण=कथन, 'उद्+ईर्+ल्युट (अन्)'। दीर्य्यते=फटता है, √दृ+भावकर्म यक्+लट् तिप्'। लोहसारमयम्=लोहे का बना हुआ, लोहसारस्य विकारः=लोहासारमयम् विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय। संस्मृत्य=स्मरण करके। यावनान्=यवनों के द्वारा किये जाने वाले, यवनस्य अयं यावनः=यवन+अण्' (द्वि० व० व०)। परस्सहस्त्रान्=हजारों से अधिक, सहस्त्राद् पराः इति परस्सहस्त्राः, तान्, राजदन्तादित्वात् सहस्त्रशब्द का पर निपातन तथा सुट् होता है। दुराचारान्=दुराचारों को। शतधा=सैकड़ों टुकड़ों में। भिद्यते=भिन्न हो जाता है। भस्मसात्=राख के समान, भस्मनः=तुल्यं भस्मसात्। धिक् अस्मान्=हम सबको धिक्कार है, 'धिक्' के योग में द्वितीया हुई है। जीवामः=जीते हैं। श्वसिमः=श्वांस लेते हैं, 'जीवामः' के बाद पुनः 'श्वसिमः' का कथन जीवन की व्यर्थता या घृणित जीवन की व्यञ्जना के लिये किया गया है। विचरामः=घूमते हैं। आत्मनः=अपने को। आर्यवंश्यान्=आर्यवंश में पैदा होने वाले, आर्याणाम् वंशे भवाः आर्यवंश्याः, तान्='भव' के अर्थ में 'यत्' होकर आर्यवंश्य बनता है। अभिमन्यामहे=मानता हूँ।

टिप्पणी—(१) "हृदयस्थ ... श्रमेणेव" में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(२) 'कातराभ्यामिव' में उपमालङ्कार है, इव उपमावाचक है।
(३) 'ये अद्यापि''' अभिमन्यामहे' में दीपक अलङ्कार है।
(४) वाक्य संयोजन की दृष्टि से लेखक ने पूर्वार्द्ध में समास शैली तथा उत्तरार्द्ध में व्यास शैली का प्रयोग किया है।

उपक्रममम्माकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चितरोमकञ्चुक शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्चस्वरम्, अवागच्छत् 'सकलानर्थमय', सकलवञ्चनामयः, सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः" इति, अतएव तत्स्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि" इति च विचिन्त्य—

"मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला कलाप-कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपुर-पुरितान्यकूपारतलानि मरुकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक फेरु-शश-सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदी करोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-शृङ्गाटक-चत्वरोद्यान-तडागगोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतेवर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप-हिमसहानि तपांसि अतापिषत। सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्य्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते; मन्दिराणि मन्दुरी क्रियन्ते, सत्यःपात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराजवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्" इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

हिन्दी अनुवाद—इस उपक्रम (भूमिका) को सुनकर और मुनि के हल्दी के रंग से रंगे हुए के समान (पीले) उदास चेहरे,- आँसू बहाते हुए नयनों, रोमाञ्चित शरीर, कम्पमान ओष्ठ तथा लड़खड़ाते हुए स्वर को देखकर (योगिराज) जान गये कि "यह सम्पूर्ण वृत्तान्त समस्त (अतिशय) अनर्थों, वञ्चनाओं, पापों

तथा उपद्रवों से भरा है "इसलिये उसके स्मरण मात्र से इनका हृदय खिन्न हो रहा है, अतः मैं इनको व्यर्थ में मलिन नहीं करूँगा और न ही दुःखी करूँगा" यह सोचकर—

(योगिराज कहना प्रारम्भ किये) "मुने ! सम्पूर्ण कलाओं के निर्माता तथा सभी के संहारक भगवान् महाकाल अत्यन्त विलक्षण हैं। वे ही कभी जलप्रवाह से पूर्ण समुद्रतल को मरुभूमि बना देते हैं। सहस्रों सिंहों, बाघों, भालुओं, गैंडों, शृगालों तथा खरगोशों से भरे हुए जंगल को नगर बना देते हैं तथा मन्दिरों, महलों अट्टालिकाओं, चौराहों, उद्यानों, तालाबों तथा गोशालाओं से युक्त नगरों को जंगल बना देते हैं। देखिये, कभी-कभी भारतवर्ष में याज्ञिकों ने राजसूयादि यज्ञ किये थे, कभी यहीं वर्षा, आँधी धूप, शरदी (हिमपात) आदि को सहन करके तपस्यायें की गई थीं। इस समय तो यवनों के द्वारा गायें मारी जा रही हैं। वेद की पुस्तकें फाड़ी जा रही हैं स्मृतियाँ भर्दी जा रही हैं, मन्दिर घुड़साल बनाये जा रहे हैं, सती स्त्रियाँ पतिता बनाई जा रही हैं और सन्तों को सन्तप्त किया जा रहा है। यह सब कुछ उसी महाकाल का प्रभाव है (तब) आप धीर धुरीण होते हुए भी क्यों धैर्य खो रहे हैं ? शान्त होकर अतिसंक्षेप से यवन राज्य के वृत्तान्त को कहिए। न जाने क्यों अनावश्यक होते हुए भी मेरा मन (हृदय) इसे सुनने की इच्छा कर रहा है" यह कहकर (योगिराज) शान्त हो गये।

संस्कृत-व्याख्या—अमुम = इयम्, उपक्रमम् = उपोद्घातम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, अवलोक्य = दृष्ट्वा, च, मुनेः = ब्रह्मचारिगुरोः, विमायमानम् = दुर्मनायमानम्, हरिद्राद्रवक्षालितमिव = हरिद्रारसधौतमिव, वदनम् = मुखम्, निपतद्वारि बिन्दुनी = स्खलदाश्रुकणे, नयने = नेत्रे, अञ्चितरोमकञ्चुकम् = सरोमाञ्चम्, शरीरम् = तनुः, कम्पमानम् = प्रकम्पितम्, अधरम् = ओष्ठः, भज्यमानम्, स्वरम् = वचनम्, अवागच्छत = अजानात् "सकलानर्थमयः = समस्तपापमयः, च, अयम् = एषः, वृत्तान्तः = वक्तव्यः, 'इति, अतएव = अस्माद्धेतोः, तत्स्मरणमात्रेण = तत्स्मृत्यैव, अपि, खिद्यते = दुःखम् अनुभवति, एषः = मुनिः, हृदये = मनसि, तत् = तस्मात्, अहम् = योगिराड्, एनम् = मुनिम्, न, निरर्थम् = निष्प्रयोजनम्, जिग्लापयिषामि = ग्लपयितुमिच्छामि, न वा, चिखेदयिषामि = खेदयितुमिच्छामि"

इति च = एतच्च, विचिन्त्य = विचार्य ('योगिराड् उवाच' इति अग्रे योजयिष्यते)।

"मुने = महर्षे, अयम् = एषः, भगवान् = सर्वसमर्थः, सकलकलाकलापकलनः = समस्तकला समूहनिर्माता, सकलकालनः = सकलजरयिता, विलक्षणः = विचित्रः, करालः कालः = महाकालः। स एव, कदाचित् = कदापि, पयःपूरपूरितानि = जलप्रवातपूर्णानि; अकूपारतलानि = समुद्रतलानि, मरुकरोति = मरुतुल्यानि = करोति। सिंहः = मृगपतिः व्याघ्रः = शार्दूलः, भल्लूकः = पशुविशेषः, गण्डकः = खड्गी, फेरुः = शृगालः, शशः = हरिणः, एतेषां सहस्राणि तैः व्याप्तानि, अरण्यानि = काननानि, जनपदी करोति = नगरी करोति, मन्दिराणि देवालयः, प्रासादाः = भूपतिनिवासाः, शृङ्गाटकानि = चतुष्पदानि, चत्वराणि - अजिराणि, उद्यानानि = वाटिकाः तडागाः = जलाशयानि, गोष्ठानि = गोस्थानानि, तेषां प्राचुर्याणि (गोष्ठादिबहुलानि) नगराणि = जनपदानि, काननीकरोति = जंगली करोति। निरीक्ष्यताम् = पश्यतु, कदाचिद्, अस्मिन्नेव = इहैव, भारतवर्षे = देशे, यायजूकैः = यज्ञशीलैः, राजसूयादियज्ञाः = विविधयज्ञाः, व्ययाजिषत् = कृताः, कदाचित् इहैव, वर्षवातातपहिमसहानि = वर्षानिलधर्मशीतसहानि, तपांसि = तपस्याः, अतापिषत् तप्तानि। सम्प्रतितु = इदानीन्तु, म्लेच्छैः = यवनैः, गावः = धेनवः, हन्यन्ते = मीयन्ते, वेदाः = श्रुतयः, विदीर्यन्ते = छिन्द्यन्ते, स्मृतयः = धर्मशास्त्राणि, समृद्यन्ते = कूर्च्यन्ते, मंदिराणि = देवालयः, मन्दुरीक्रियन्ते = वाजिशालीक्रियन्ते, सत्यः = पतिव्रताः, पात्यन्ते = व्यभिचार्यन्ते, सन्तः = साधवः, च, सन्ताप्यन्ते = पीड्यन्ते। एतत् = इदम्, सर्वम् = निखिलम्, माहात्म्यम् गौरवम्, तस्यैव = पूर्वोक्तस्यैव, महाकालस्य = करालकालस्य, इति = एतस्मात्, कथम्, धैर्यधौरेयोऽपि = धीरधुरन्धरोऽपि, धैर्यं = साहसम्, विधुरयसि = विकलयसि ? (अंतः): शान्तिम् = धैर्यम्, आकलय्य = आश्रित्य, अतिसंक्षेपेण = समासेन, कथय = ज्ञापय, यवनराज वृत्तान्तम् = म्लेच्छराजकथा, न, न जाने = न जानामि (अहं), किमिति = कथमेतत्, अनावश्यकमपि···निष्प्रयोजनमपि, मे = मम, हृदयम् = मनः, शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति" इति = एतत्, कथयित्वा = उक्त्वा, तूष्णीम् मौनम्, अवतस्थे = अवाप।

हिन्दी-व्याख्या—उपक्रमम् = भूमिका को। विमनायमानम् = उदास (मुख

का विशेषण) 'वि + √मन् + क्यच् + शानच्'। हरिद्राद्रवक्षालितुम् = हल्दी के रस से धुले हुये, 'हरिद्रायाः द्रवस्तेनः क्षालितम्' (तत्पु०) इव समान। वदनम् = मुख को। निपतद्वारिविन्दुनी = अश्रुकण प्रवाहित करने वाले (नेत्रों का विशेषण) निपतन्तः वारिविन्दवः याभ्यां ते (बहुव्रीहि)। अञ्चिरोमकञ्चुकम् = रोमाञ्चित (शरीर का विशेषण) अञ्चितः रोमकञ्चुकः यस्य तत्। कम्पमानम् अधरम् = काँपते हुये ओष्ठों को, '√कम्प + शानच्'। भज्यमानम् = टूटता हुआ '√भज् + यक् + शानच्'। अवागच्छत् = जान गये 'अव + √गम् + लङ् (तिप्)'। सकलानर्थमयः = सम्पूर्ण अनर्थों से युक्त, अनर्थ + मयट् (प्रत्यय युक्त के अर्थ में)। सकलवञ्चनामयः = सभी वञ्चनाओं से युक्त। सकलपापमयः = सम्पूर्ण पापों से युक्त। सकलोपद्रवमयः = सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त। वृत्तान्तः = घटना क्रम। ब्रह्मचारी के गुरु की मुखाकृति को देखकर योगिराज ने यह समझ लिया कि 'इनके द्वारा कहा जाने वाला वृत्तान्त सभी अनर्थों, वञ्चनाओं, पापों एवं उपद्रवों से भरा हुआ है।" तत्स्मरणमात्रेणापि = उस वृत्तान्त के स्मरण मात्र से भी, खिद्यते = दुःखी हो रहे हैं। न जिग्लापयिष्यामि = मलिन नहीं करना चाहता हूँ, '√ग्लै + पुक् + णिच् + सन् + लट् (मिप्)'। न वा चिखेदयिषामि = न ही खिन्न करना चाहता हूँ, '√खिद + णिच् + सन् (मिप्), 'सन्' प्रत्यय इच्छा के अर्थ में होता है। विचिन्त्य = विचार करके, वि + √चिन्त् + ल्यप्।

सकलकलाकलापकलनः = समस्त कलाओं के निर्माता, सकलाः कलाः तासाम् कलापः तस्य कलनः (तत्पु०)। सकलकालनः = सभी को नष्ट करने वाला, 'सकलान् कालयनीति'। कालः = महाकाल 'कालो मृत्यौमहाकाले समये यमकृष्णयोः' (अमरकोष)। पयःपूरपूरितानि = जल प्रवाह से पूर्ण। अकूपार-तलानि समुद्रतल 'समुद्रोऽब्धिरकूपारः' (अमरकोष)। मरुकरोति = मरुस्थल के समान कर देता है 'अभूततद्भावेकर्त्तरि च्विः' से 'च्वि' प्रत्यय। 'सिंह-व्याप्तानि = सिंह, बाघ, भालू, गैंडा, फेरु (श्रृङ्गाल), शश (खरगोश) आदि को हजारों की संख्या से युक्त (जंगल का विशेषण) सिंहाश्च, व्याघ्राश्च; भल्लूकाश्च, गण्डकाश्च, फेरवश्च, शशाश्च, तेषां सहस्राणि, तैः व्याप्तानि (तत्पु०)। जनपदीकरोति = जनपद (नगर), के समान बना देता है, जनपद से 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। 'मन्दिरप्रासाद···गोष्ठमयानि' = मन्दिरों, प्रासादों (राज-

महलों) हर्म्य (महलों), शृङ्गाटकों (चौराहों), चत्वरों (प्रांगणों), उद्यानों, तडागों (जलाशयों) एवं गोष्ठों (गोशालाओं) आदि से युक्त (नगर का विशेषण)। काननीकरोति = जंगल के समान कर देता है, 'कानन + च्वि' (अभूततद्भाव अर्थ में)। नरीक्ष्यताम् = देखिये। यायजूकैः = याजिकों के द्वारा, इज्याशीलो-यायजूकः' (अमरकोप)। राजसूयादियज्ञाः = राजसूय आदि यज्ञ, वेदों में विविध यज्ञों का विविध इच्छाओं की पूर्ति हेतु विधान है। वर्षवाताऽऽतपहिमसहानिः = वर्षा, वायु (आँधी), आतप (धूप) और हिमपातादि का जिसमें सहन किया जाता है (तपांसि का विशेषण), वर्षाश्च वाताश्च आतपाश्च हिमाश्च ते, त एव सह्यन्ते येषु तानि। तपांसि = तपस्याएँ। अतापिषत = तपी गईं थीं अर्थात् तपस्या की गई थी, '√तप + लुङ् + झ' (भावकर्म)। सम्प्रति = इस समय। म्लेच्छैः = यवनों के द्वारा। हन्यन्ते = मारी जा रही हैं, हन् + यक् (भाव कर्म) + लट् (झि)। विदीर्यन्ते = फाड़े जा रहे हैं, वि + √दृ + यक् + लट् (झि)'। समृद्यन्ते = कुचली जा रहें हैं। व्ययाजिषत = सम्पादित किये जाते थे, 'वि + √यज् + लुङ् (झ)। मन्दुरीक्रियन्ते = घुड़साल वनाए जा रहे हैं, मन्दुर = घुड़साल, 'वाजिशाला तु मन्दुरा' (अमरकोष) 'मन्दुरी' में 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। सत्यः = सती स्त्रियाँ। सन्ताप्यन्ते संतप्त किये जाते हैं। धौरेयः = धैर्य-शालियों में श्रेष्ठ, 'धीरेषु धौरेयः' (तत्पु०)। विधुरयसि = छोड़ रहे हो। आकलय्य = धारण करके, 'आ + √कल + ल्यप्'। यवनराजवृत्तान्तम् = यवन-राज्य के वृत्तान्त को, यवनानां राज्यं तस्य वृत्तान्तः, तम् (तत्पु०)। किमिति = क्यों यह। अनावश्यकम् अपि = अनावश्यक होते हुये भी। शुश्रूषते = सुनने की इच्छा कर रहा है, '√श्रु + सन् + त'। तूष्णीम् = शान्त (चुप्पी)। अवतस्थे = धारण कर लिया, अव + स्थ + लिट् (त)।

टिप्पणी—(१) 'हरिद्राद्रवक्षालितमिव' मानों हल्दी के रंग से घुला हुआ हो, यहाँ उत्प्रेक्षा अलकार है।

(२) 'सकलकलाकलापकलनः' सकलकालनः करालः कालः' में कला-कला, कल-कल तथा काल-काल में सभंग पद यमक है।

(३) 'सकल कला' से 'काननी करोति' तक अनुप्रास की छटा आकर्षक है।

(४) लेखक 'सन्' ? प्रत्ययान्त तथा भावकर्म के प्रयोग की ओर विशेष

झुका है। 'च्वि' प्रत्यय वाले शब्दों का विशेष प्रयोग किया गया है। इससे लेखक के व्याकरण के विशेष ज्ञान का परिचय मिलता है। तथापि सरल शब्द-योजना के कारण गद्यप्रवाह तथा भावों को हृदयंगम करने में कोई बाधा नहीं आ सकी है अपितु उत्कृष्टता ही आई है।

(५) देश की पूर्व स्थिति और तत्कालीन स्थिति के सुन्दर वर्णन के साथ ही विषमालङ्कार भी है।

अथ स मुनिः—"भगवन् ! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति विक्रमादित्ये शनैः शनैः पारस्परिकविरोध-विशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनि-भ्रू-भङ्ग-भूरिभाव प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ चिन्ता-सन्तान वितानैकतान्येष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, "इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्" इतिवर्णनामात्र-सक्तेषु बुद्धजनेषु कश्चन् गजनीस्थाननिवासी महामदो यवनःससेनः प्राविशद् भारतवर्षे। स च प्रजाः विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमां-विभिद्य परश्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेश-मनैषीत्। एवं स ज्ञातास्वादः पौनः पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलु-ण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश चूडायितं सोमनाथतीर्थ-मपि धूलीचकार।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद उन मुनि ने कहना आरम्भ किया—"भगवन् ! धैर्य, प्रसन्नता, प्रताप, तेज, बल, विक्रम, शान्ति लक्ष्मी, सुख, धर्म और विद्या के साथ ही श्रेष्ठ वीर विक्रमादित्य के परलोक को सनाथित करने पर (स्वर्ग चले जाने पर), धीरे धीरे राजाओं के परस्पर विरोध के कारण स्नेह बन्धन के शिथिल (ढीले) हो जाने पर, वीरों के कामिनियों के कटाक्षों और हाव भाव के प्रभाव में आने से सम्पूर्ण सम्पत्ति के नष्ट कर देने पर, अमात्यों (मंत्रियों) के एकमात्र स्वार्थ की चिन्ता में परायण हो जाने पर (लग जाने पर), राजाओं के प्रशंसामात्र के प्रेमी हो जाने पर और विद्वानों के 'तुम इन्द्र हो, तुम वरुण

हो, तुम कुबेर हो" इस प्रकार के वर्णनों में आसक्त हो जाने पर कोई गजिनी स्थान का निवासी महामदशाली (महमूद गजनवी नामक) यवन, सेना के सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजा को लूटकर, मन्दिरों को गिराकर, प्रतिमाओं को तोड़कर, सैकड़ों लोगों को दास बनाकर सैकड़ों ऊँटों पर रत्नों को लादकर अपने देश ले गया। इस प्रकार स्वाद को जानने वाला (वह यवनराज) बार-बार यहाँ आकर भारतवर्ष को बारह बार लूटा। अपने उन्हीं आक्रमणों में एकवार उसने गुजरात देश के आभूषण के समान सोमनाथ तीर्थ को भी धूलि में मिला दिया।

संस्कृत-व्याख्या—अथ-तदनन्तरम्, स मुनि = ब्रह्मचारिगुरुः (अवदत इतिशेषः) "भगवन् = महामुने, धैर्येण = धीरतया, प्रसादेन = प्रसन्नतया, प्रतापेन = प्रभावेण, तेजसा = प्रभया, वीर्येण = बलेन, विक्रमेण = पराक्रमेण, शान्त्या = समेन, श्रिया = शोभ्या, सौख्येन = धनेन, धर्मेण = सदाचारेण, विद्यया = वेदशास्त्रादिना, च, समम् एव = सहैव, तत्रभवति = श्रेष्ठे, वीरविक्रमादित्ये = एतन्नी मके रश्नि, परलोकम् = स्वर्गम्, सनाथितवत्ति = विराजितवति, शनैः-शनैः = कालक्रमेण, पारस्परिकः = मिश्रः, विरोधः तेन विशिथिलीकृतानि = शिथिलतामापादितानि, स्नेहबन्धानि = स्नेह सूत्राणि यैः तेषु; राजसु = नृपेषु, भामिनीनाम् = कामिनीनाम्, भ्रूभङ्गाः = सकटाक्षेक्षणानि, भूरिभावाः = हावभावाद्याश्च, तेषां, प्रभावेग = आसक्त्या, पराभूतानि = निरस्कृतानि, वैभवानि = धनानि, येषां, तेषु, भटेषु वीरेषु, स्वार्थचिन्ता सन्तान वितानैकतानेषु स्वार्थचिन्तामात्रपरायणेषु, अमात्य वर्गेषु = मन्त्रि वर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु आत्मश्लाघा प्रियेषु, प्रभुषु = राजसु, "इन्द्रस्त्वम् = इन्द्रोभवान्, वरुणस्त्वम् भवान वरुणः, कुबेरस्त्वम् = धनदोभवान्" इति = एवम्, वर्णनमात्रसक्तेषु = वर्णन संसक्तेषु बुद्धजनेषु = विद्वत्सु, कश्चन = कोऽपि, गजिनीस्थाननिवासी = गजिनी वास्तव्यः, महामदः = महमूद नामकः, यवनः = म्लेच्छः, ससेनः = चमूभिः सहितः, भारतेवर्षे = इहदेशे, प्राविशत् = प्रवेशं कृतवान्। स च = महमूदः प्रजाः जमान्, विलुण्ठ्य = लुण्ठयित्वा, मन्दिराणि = देवालयान्, निपात्य = पातयित्वा, प्रतिमाः = मूर्तिः विभिद्य = विदीर्य, पराशतान = शताधिकान् जनान = देशवासिनः, दासीकृत्य = भृत्यीकृत्य, शतशः = उष्ट्रेषु, रत्नानि = रत्नराशीः,

आरोप्य = स्थापयित्वा, स्वदेश = गजिनीम्, अनैषीत् = प्रापयत्। एवं = इत्थम्, सः = महमूदः, ज्ञातास्वादः = गृहीतरसःपौनःपुन्येन अनेकावृत्या, द्वादशवारम्, आगत्य = प्राप्य, भारतम् = एतद्देशम्, अलुलुण्ठत् = लुण्ठितवान्। तस्मिन् एव = उक्त एव, स्वसंरम्भे - स्वकीये आक्रमणे, एकदा = एकबारम्, गुर्जरदेशचूडायितम् = गुर्जरदेशचूडाभूतम्, सोमनाथतीर्थम् = एतन्नामकं तीर्थम्, अपि, धूली चकार —नाशयाभास।

हिन्दी-व्याख्या – **अथ** = योगिराज के शान्त हो जाने पर। **समुनिः** = ब्रह्मचारी गुरु ने ('कहना आरम्भ किया' यह आगे से जोड़ा जायगा)। **भगवन्** = योगिराज का सम्बोधन। **धैर्येण** = धैर्य से। **प्रसादेन** = प्रसन्नता से; 'प्रसादस्तु प्रसन्नता'। **तेजसा** = क्षात्र तेज से। 'धैर्येण' से 'विद्यया' तक सभी पदों में तृतीया विभक्ति 'समम्' के योग में हुई हैं। **समम् एव** = साथ ही। **परलोकम्** = स्वर्गलोक को (मृत्यु के लिये आता है)। **तत्र भवति** = श्रेष्ठ, (यस्य भावेन 'भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति), तत्र भवान् का प्रयोग पूज्य के अर्थ में होता है। **वीरविक्रमादित्ये** = वीरविक्रमादित्य के। **सनाथितवति** = सनाथित होने पर। **'पारस्परिक···बन्धनषु'** = पारस्परिक विरोध के कारण शिथिल कर दिया गया है स्नेह बन्धन जिनका ऐसे (राजसु का विशेषण), पारस्परिकः विरोधः तेन विशिथिलीकृतानि स्नेहबन्धनानि यैस्तेषु (ब० व्री०)। **राजसु** = राजाओं के। **'भामिनी ··वैभवेषु'** = कामनियों के कटाक्ष तथा हाव-भाव के प्रभाव से सम्पूर्ण सम्पत्ति समाप्त कर देने पर ('भटेषु' का विशेषण) 'भामिनीनाम् भ्रूभङ्गाः भूरिभावाश्च तेषां प्रभावेण पराभूतानि वैभवानि येषां तेषु तादृशेषु (बहुव्रीहि)। **भटेषु** = वीरों के। **अमात्यवर्गेषु** = अमात्यों (मंत्रियों) **स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु** = स्वार्थ की चिन्ता में ही लगे होने पर, 'स्वार्थे चिन्ता, तस्याः सन्तानवितानैकतानां येषां तेषु'। **प्रभुषु** = राजाओं के। **प्रशंसामात्रप्रियेषु** = प्रशंसा मात्र के प्रेमी हो जाने पर, प्रशंसामात्रम् प्रियम् येषां, तेषु'। **इन्द्रस्त्वम्** = तुम इन्द्र हो। **वरुणस्त्वम्** = तुम वरुण हो। **कुबेरस्त्वम्** = तुम कुबेर हो। **इति** = इस प्रकार के। **वर्णनमात्रसक्तेषु** = वर्णन (कथन) में ही आसक्त हो जाने पर। **बुधजनेषु** = विद्वानों के। **गजिनीस्थाननिवासी** = गजिनी में रहने वाला। **महामदः** = महा-

मदशाली अर्थात् 'महमूद' 'महमूद गजनवी' इतिहास का प्रसिद्ध राजा है। उसने भारत पर बारह बार आक्रमण करके देश को लूटा है।

ससेनः =सेना के साथ, सेनया सहितः, ससेनः। **प्राविशत्** - प्रवेश किया, प्र+√विश+लङ् (तिप्)। **प्रजाः**=प्रजाओं को। **विलुण्ठ्य**=लूटकर, 'वि √लुण्ठ+ल्यप्'। **निपात्य**=गिराकर। **विभिद्य**=भेदन करके (तोड़ करके), 'वि+√भिद्+ल्यप्'। **परश्शतान्**=सैकड़ों। **दासीकृत्य**=दास बनाकर, 'दास' से 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। **उष्ट्रेषु**=ऊँटों पर। **रत्नानि**=विविध प्रकार के रत्नों को। **आरोप्य**=लादकर, 'आ+√रोप्+ल्यप्'। **अनैषीत**=ले गया, √णीञ् (प्रापणे)+लुङ् (तिप)'। **ज्ञातास्वादः**=स्वाद को जान लेने वाला, 'ज्ञातः आस्वादः येन सः'। **पौनःपुन्येन**=बार-बार करके। **अलुलुण्ठत्**=लूटा, √'लुण्ठ+लङ् (तिप्)'। **स्वसंरम्भे**=अपने आक्रमण में। **गुर्जरदेशचूडायितम्** =गुजरात प्रदेश के चूड़ामणि (आभूषण) के समान, चूडा इव जात मिति चूडायितम्-'चूडा+क्यच्+इ+क्त'। **धूलीचकार**=धूलि में मिला दिया।

टिप्पणी—(१) "अथ स मुनि······भारतवर्षे' मुनि योगिराज से बता रहे हैं कि अनेक सद्गुणों वाले वीर विक्रमादित्य के मारे जाने पर, राजाओं में आपसी फूट हो गई, भोग-विलास में लिप्त रहने लगे, चाटुकारिता के प्रेमी हो गये और अमात्य वर्ग भी स्वार्थ की ही चिन्ता में रहने लगे। ये सब ऐसे दुर्गुण हैं जिनसे किसी भी राजा, राष्ट्र, समाज या व्यक्ति की पराजय या विनाश हो सकता है। इसी का परिणाम था कि यवन राज महमूद गजनवी अपनी सेना के साथ आक्रमण करके यहाँ के सभी राजाओं को जीत लिया। भारवि ने भी लिखा है--

"सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्व सम्पदः।"

(२) 'धैर्य-प्रसाद' आदि के साथ ही विक्रमादित्य ने स्वर्गलोक को अलंकृत किया है, अतः सहोक्ति अलंकार है।

(३) 'गुर्जर···तीर्थम्' गुजरात में सोमनाथ का एक मन्दिर था जिसमें प्रभूत रत्न था, वह मन्दिर गुजरात प्रदेश के शिरोमणि के समान था। महमूद गजनवी उस मन्दिर को भी तोड़कर सब धन उठा ले गया।

अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत् । तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ता फलादि जटितानि कपाटानि, स्तम्भान् गृहावग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वयमणसुवर्ण श्रङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य चकितीकृतावलोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य संगृह्य, महादेवमूर्तावपि, गदामुदतूतुलत ।

हिन्दी-अनुवाद—आज तो उस तीर्थ का नाम भी किसी के द्वारा स्मरण नहीं किया जाता; किन्तु उस समय तो उसका वैभव लोकोत्तर था । वहाँ पर बहुमूल्य वैदूर्य (मूंगा), पद्मराग, हीरे और मोतियों से जड़े किवाड़ों को तथा खम्बों, देहलियों दीवारों, वल्लियों और विटङ्कों (कबूतरों के दरबों) को मथकर (सम्पूर्ण) रत्नराशि को लेकर; दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाले तथा देदीप्यमानचाकचिक्य से दर्शकों के नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाले महाघंटा को भी बलात् (जबर्दस्ती) प्राप्त करके महादेव की मूर्ति पर भी (उस महमूद) ने गदा उठाई ।

संस्कृत-व्याख्या—अद्यतु=इदानीन्तु, तत्तीर्थस्य=सोमनाथ तीर्थस्य नामापि =अभिधानमपि, केनापि=केनचिदपि, न, स्मर्यते=गृह्यते, परम्=किन्तु, तत्समये=तत्काले, तु, तस्य=मन्दिरस्य, वैभवम्=सम्पत्, लोकोत्तरम्=अपरिमितम् आसीत् । तत्र हि=तस्मिन् मन्दिरे, महार्हाणि=बहुमूल्यानि, वैदूर्याः=वैदूर्य मणयः, पद्मरागाः, माणिक्याः मुक्ताफलानि चेत्यादयः मणि विशेषाः, तैः जटितानि=प्रयुक्तानि, कपाटानि=द्वाराणि, स्तम्भान्=दण्डविशेषान्, गृहावग्रणीः=देहलीः, भित्तीः=कुड्यानि, वलभीः=गोपानसीः, विटंकानि =कपोतवासतव्यानि, च, निर्मथ्य=सम्यगन्विष्य, रत्ननिचय=रत्नराशिम्, आदाय=गृहीत्वा, शतद्वयमणसुवर्णश्रृंखलावलम्बिनीम्=शतद्वय हेमनिर्मित श्रृंखलायाम् अवलम्बिनीम्, चञ्चन्=समुच्छलन्, चाकचक्यम्=चमत्कारः, तेन-चकितीकृतः=विस्मेरीकृतः, अवलोचकलोचनाना द्रष्टजननेत्राणाम् निचयः यया सा ताम महाघण्टाम्=महाध्वनिकाम् प्रसह्य=बलात् संगृह्य=गृहीत्वा, महादेवमूर्ती =शंकर प्रतिमायाम् अपि, गदाम्=शस्त्र विशेषाय, उदतूतुलन्=उदनिष्क्रियत् ।

हिन्दी-व्याख्या—**तत्तीर्थस्य**=सोमदेव तीर्थ का। **स्मर्यते**=स्मरण किया जाता है, '√स्मृ+लट् (त)'। **लोकोत्तरम्**=अति प्रचुर। **वैभवम्**=सम्पति। **महार्ह···जटितानि'**= =बहुमूल्य मूंगे, पद्मराग हीरे और मोतियों से जड़ा हुआ, महार्हा: वैदूर्या: पद्मरागा:, माणिक्या: मुक्ताफलानि च ते, तैः जटितानि (तत्पु०)। **कपाटानि** - किवाड़ों को। **स्तम्भान्**=खम्बों को। **गृहावग्रणी:**= देहली को। **भित्ती:**=दीवारों को। **वलभी:**=वल्ली या छज्जा को, "गोपावसी तु वलभीच्छादने वक्रदारुणी" (अमरकोष)। **विटङ्कानि**—कबूतरों के दरबों को। **निर्मथ्य**=मथकर 'निर्+√मथ+ल्यप्'। **रत्ननिचयम्**=रत्न राशि को, रत्नानां निचयः तम्। **आदाय**=लेकर। **शतद्वयमणसुवर्णशृंङ्खलावलम्बिनीम्**= दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाले, मण='मन' एक प्रकार की तौल। **'चञ्चत्··निचचयां'**=समुच्छलित चाकचिक्य से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाले, 'चञ्चता चाकचाक्येन चकितीकृतः अवलोचकानां लोचनानि तेषां निचयः, यया सा ताम् (बहुव्रीहि)। **महाघण्टाम्**=महाघण्टा को। **प्रसह्य**=बलपूर्वक, 'प्र+√सह+ल्यप्'। **संगृह्य** =लेकर। **उदतूतुलत्**—उठाई 'उत्+√तुल (माने, चुरादि)+लङ् (तिप्)।

टिप्पणी—(१) सोमनाथ मन्दिर के वैभव का वर्णन करने से उदात्ता-लंकार है।

(२) 'चञ्चत् · निचयाम्' में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। ●

अथ 'वीर गृहीतमखिलं वित्तं, पराजिता आर्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, संचितममलं यश, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मांस्ताडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि; पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलय; किन्तु त्यजेमामकिंचित्करी जडांमहादेव-प्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्त्ति स्प्राक्षीः" इति साम्रेड कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; 'नाहं मूर्त्तीर्विक्रीणामि; किन्तु भिनद्मि' इति संगर्ज्य जनतायाः हाहाकार-कल-कलमाकर्णयन् घोरगदया मूर्तिमतुत्रुटत् । गदा-

पातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। सचदग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद - 'हे वीर ! तुमने सब धन ले लिया, आर्य सेना को पराजित कर दिया, हम सब को बन्दी बना लिया, निर्मल यश अर्जित कर लिया; यदि इतने पर भी तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ तो हम सब को पीटो, मारो, चीर डालो, काट डालो, (पहाड़ से) नीचे गिरा दो, (समुद्र में) डुबो दो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो, कतर डालो, जला दो; किन्तु इस कुछ न करने वाली महादेव की जड़ प्रतिमा को छोड़ दो। यदि ऐसा भी स्वीकार न हो तो हम से दो करोड़ स्वर्ण मुद्रायें और ले लो, रक्षा करो, इस भगवान् शंकर की मूर्ति का स्पर्श मत करो" इस प्रकार (मन्दिर के पुजारियों के) बार-बार कहने पर; रोने पर (पैरों) पड़ने पर, (भूमि में) लोटने पर और प्रणाम करने पर "मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ किन्तु तोड़ता हूँ" इस प्रकार गरजकर जनता के हाहाकार के कोलाहल को सुनता हुआ (अपनी) भीषण गदा से (महमूद गजनवी) ने मूर्ति को तोड़ दिया। गदा के प्रहार के साथ ही अनेक अरब पद्म मुद्रा के मुल्य के रत्न मूर्ति के मध्य से उछले और चारों ओर फैल गये और वह दग्धमुख (मुंह जला) उन रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँट की पीठ पर लाद कर सिन्धु नदी उतर कर अपनी विजय-पताका वाली 'गजिनी' राजधानी में प्रवेश किया।

संस्कृत-व्याख्या - अथ=अनन्तरम्, "वीर=सुभट ! गृहीतम्=आदत्तम्, अखिलम्=सम्पूर्णम्, वित्तम्=धनम्, पराजिता=विजिता, आर्यसेना=मतसेना, बन्दीकृताः=निबद्धा, वयम्=आर्याः, सञ्चितम्=संगृतीम्' अमलम् निर्मलं, यशः=कीर्तिः, इतोऽपि=एतावतापि, न शाम्यति=न शान्तो भवति, ते=तव, क्रोधः=कोपः, चेत्=यदि, अस्मान्=पूजकान्, ताडय=प्रताडय, मारय=दण्डय, छिन्धि=विदारय, भिन्धि=भेदय, पातय=प्रक्षिपतु, मज्जय=जललीनं कुरु, खण्डय=खण्डं खण्डं कुरु, कर्तय=कर्त्तनं कुरु ज्वलय · अग्नौ प्रज्वलय; किन्तु=परञ्च, इमाम्=एषाम्, अकिञ्चित् करीं · न किञ्चित्

कुर्वाणाम्, जडां = निष्चेष्टाम्, महादेव प्रतिमाम् शंकर मूर्तिम्, त्यज = मुञ्च। यदि एवं = यद्येतत्, न स्वीकरोषि = न मन्यसे, तदं = तर्हि, अस्मत्तः = अस्मत्, अन्यदपि = एतदधिकमपि, सुवर्णकोटिद्वयम् = कोटिद्वयसुवर्णमुद्राम्, गृहाण = प्राप्नुहि, यायस्व = रक्ष, एनां = इमाम्, भगवन्मूर्तिम् = ईश्वर प्रतिमाम्, मा स्प्राक्षीः = न स्पर्शं कुरु, इति = एवम्, साम्रेडम् = बहुशः,. कथयत्सु = विनयत्सु, रुदत्सु = विलपत्सु, पतत्सु = पादयोः गच्छत्सु, विलुण्ठत्सु = धरणीं प्रापत्सुः प्रणमत्सु = नमत्सु, पूजकवर्गेषु = अर्चक समूहेषु, "अहम् = महमूद, मूर्त्ती = प्रतिमाः, न विक्रयं करोमि, किन्तु, (ताः) । भिनद्मि = खण्डयामि", इति = एवम् संगर्ज्यं = गर्जनं कृत्वा, जनतायाः लोकस्य, हाहाकार कलकलम् = 'हाहे' ति करुण कोलाहलम्, आकर्णयन् = शृण्वन्, घोरगदया = भीषणगदया = मूर्तिम् = प्रतिमाम् अतुत्रुटत् = तुत्रोट, गदापात समकालमेव = गदाप्रहारसममेव, च अनेकार्बुदपदममुद्रामूल्यानि = एतत्परिमितानि, रत्नानि = विविध-मण्यादीनि, मूर्तिमध्याद् = मूर्त्यन्तरात्, उच्छलितानि, = उत्पतितानि, परितः = इतस्ततः, अवाकीर्यन्त = विकीर्णितानि । स च = महमूदश्च, दग्धमुखः = दुष्टः, तानि विकीर्णितानि, रत्नानि = धनानि, मूर्तिखण्डानि = प्रतिमाशकलानि, च, क्रमेलक पृष्ठेषु = उष्ट्रेषु आरोप्य = स्थापयित्वा, सिन्धुनदी = सिन्धु नामकं सरित्, उत्तीर्य = तीर्त्वा, स्वकीयां = निजां, विजेयध्वज़िनीम् = विजयध्वजवतीम्, गजिनीं = नामाख्याम्, राजधानीम् = राजपुरम्, प्राविशत् = प्राविवेश ।

हिन्दी-व्याख्या—**गृहीतम्** = ले लिया । **अखिलम्** — सम्पूर्ण । **वित्तम्** = धन को । **पराजिता** = हरा दी गईं, 'पर + आ √जि + क्त' । **आर्यसेनाः** = हिन्दुओं की सेनाएँ । **बन्दीकृताः** = बन्दी बना लिये गये, 'बन्द + च्वि + √कृ + क्त (स्त्री०) । **सञ्चितम्** = सञ्चय किया । **अमलम्** = निर्मल । **यशः** = कीर्ति को । **इतोऽपि** = इतने से भी । **शाम्यति** = शान्त होता है । **अस्मान्** = हम सबको । **ताडय** = पीटो । **मारय** = मारो । **छिन्धि** = चीर डालो,, √छिद् + लोट् (सिप्)' । **भिन्धि** = काट डालो, √भिदि + लोट् (सिप्) । '**पातय** = गिरा दो (अर्थात् पहाड़ आदि से ढकेल दो) √'पत + णिच् + लोट् (सिप्) । **मज्जय** = डुबो दो (जल में डुबो दो) । **खण्डय** = टुकड़े-टुकड़े कर डालो । **कर्तय** = कतर डालो । **ज्वलय** = जला दो । **अकिञ्चित्करीम्** = कुछ न करने वाली, 'किञ्चि-

त्करोति इति किञ्चित्करी, न किञ्चित्करी इति अकिञ्चित्करी, ताम्'। जडाम्=जड़, (ये दोनों पद मूर्ति के विशेषण हैं), इन दोनों विशेषणों से यह संकेत किया गया है कि न तो मूर्ति कुछ करने वाली है और न ही जड़ (चेतना शून्य) होने के कारण उस मूर्ति के लिये ही कुछ किया जा सकता है। **स्वीकरोषि**=स्वीकार करते हो। **गृहाण**=ले लो। **अस्मतः**=हमसे। **अन्यदपि**=और अधिक। **सुवर्णकोटिद्वयम्**=कोटीनां द्वयम इति कोटिद्वयम्, सुवर्णस्य कोटिद्वयम् इति (तत्पु०), अर्थात् दो करोड़ स्वर्णमुद्रा। **त्रायस्व**=रक्षा करो। **भगवन्मूर्तिम्**=ईश्वर (शंकर) की मूर्ति को। **मा स्प्राक्षीः**=मत छुओ, 'स्पृश+लुङ् (सिप्)' 'माङ् (मा)' के योग के कारण लुङ् लकार हुआ है किन्तु आट् नहीं हुआ। **साम्रेडम्**=बार-बार। **पूजकवर्गेषु**=पुजारियों के। **कथयत्सु**=कहने पर (शतृ+प्रत्यय)। अग्रिम चार पदों में भी 'शतृ' प्रत्यय है)। **रुदत्सु**=रोने पर। **पतत्सु**=पैरों पड़ने पर। **विलुण्ठत्सु**=भूमि में लोटने पर। **प्रणमत्सु**=प्रणाम करने पर। **विक्रीणामि**=बेचता हूँ। **भिनद्मि**=तोड़ता हूँ। **संगर्ज्य**=गर्जना करके। **अतुत्रुट**=तोड़ दिया। **गदापातसमकालमेव**=गदा के गिरने के साथ ही, 'गदायाः पातः तस्य समकालम्'। **अनेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि**=अनेक अरब पद्म मुद्रा के मूल्य वाले। **मूर्तिमध्यात्**=मूर्ति के मध्य से। **उच्छलितानि**=उछल पड़े (निकले)। **अवाकीर्यन्त**=फैल गये, अव+√कृ (विक्षेपे)+लङ् (झ)। **दग्धमुखः**=दुष्ट, दग्धम् मुखम् यस्य सः अर्थात् 'मुंह-जला'। इसका प्रयोग दुष्ट या नीच व्यक्ति के लिये होता है। **क्रमेलकपृष्ठेषु**=ऊँट के पीठ पर, 'क्रमेलकानां पृष्ठेषु इति, (तत्पु०), 'उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्काः" (अमरकोष)। **आरोप्य**=लादकर। **उत्तीर्य**=उतरकर 'उद्+√तॄ+ल्यप्, **विजयध्वजिनीम्**=विजयपताका से युक्त। **प्राविशत्**=प्रवेश किया, प्र+विश्+√लङ् (तिप्)।

टिप्पणी—पराजित हिन्दुओं की दुर्दशा के साथ ही महमूद की क्रूरता और हठता का वर्णन किया गया है।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (१०८७) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन-

नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षंप्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर द्वादशशतमितेऽब्दे (१२५०) दिल्लीमश्वयाम्बभूव ।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर, कालक्रम से विक्रम संवत् १०८७ में कष्ट और शोक के साथ महमूद के प्राण त्याग देने पर 'गोर देश' निवासी कोई शहाबुद्दीन नामक (यवन) पहले गजिनी देश पर आक्रमण करके महमूद (गजनवी) के वंशजों को धर्मराज के लोक के पथ का पथिक बनाकर, सभी प्रजाजनों को पशुओं के समान मारकर, उन्हीं के रुधिर से गिली मिट्टी से गोरदेश में बहुत से घर बनाकर, चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश करके शीतल रक्त वाले (युद्ध की इच्छा न रखने वाले भारतीयों को भी) तलवार का निशाना बनाते हुए १२५० में दिल्ली को अश्वारोहिओं से घेर लिया ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, कालक्रमेण = काल महिम्ना सप्ताशीत्युत्तरसहस्त्रतमे शताब्दे = एतस्मिन् संवत्सरे सशोकम् शोकान्वितम्, सकष्टम् = सखेदम्, च प्राणान् - असून, त्यक्तवति = भुक्तवति, महामदे = महमूदे, गोरदेशवासी = गोरदेशवास्तव्यः; कश्चित् = एकः, शहाबुद्दीन नामा = तन्नामकः, प्रथमम् = आदौ गजिनीदेशम् महमूदराजधानीम्, आकम्य = संरभ्य, महामदकुलम् = महमूद वंशजम्, धर्मराज लोकाध्वनि = यमलोकमार्गे, अध्ववीनम् = पान्थम्, विधाय = सम्पाद्य, सर्वाः प्रजाः = तद्देशनिवासिनः, पशुमारम्, पशुवत् मारम् मारयित्वा = निहत्य, तद्रूधिरार्द्रमृदा = निहतजनरक्तसिक्तमृतिकया, गोरदेशे, स्वदेशे बहून = प्रचुरान् गृहान् = हर्म्यान्, निर्माय = निर्माणं कृत्वा, चतुरङ्गिण्या = चतुर्भिरङ्गैः सहितया, अनीकिन्या = सेनया, भारतवर्षम् = ध्यन्, पञ्चा-आगत्य, शीतलशोणितानपि = अयुयुत्सून् अपि, असयन् = असिना एतददेशम्, प्रविश्य = शदुत्तरद्वादशशतमितेऽब्दे = एतस्मिन् संवत्सरे, दिल्ली = भारतस्य राजधानीम्, अश्वयाम्बभूव = अश्वैः अतिचक्राम ।

हिन्दी-व्याख्या—कालक्रमेण - समय के फेर से । सप्ताशीत्युत्तरसहस्त्रतमे = एक हजार सत्तासी, सप्ताशीति = सात अस्सी = सत्तासी उत्तर सहस्त्रतमे

= अधिक हजार से अर्थात् १०८७ में । वैक्रमाब्दे = विक्रमादित्य के द्वारा चलाये गये संवत् में । प्राणान् प्राणों को, 'प्राण' शब्द का प्रयोग बहुवचन में ही होता है । गोरदेशवासी गोरदेश में रहने वाला सिन्धु नदी से पश्चिम यवनों का देशविशेष है । शहाबुद्दीन नामा = शहाबुद्दीन गोरी नामक एक यवन राजा था । आक्रम्य = आक्रमण करके 'आ + क्रम + ल्यप्' । धर्मराजलोकध्वनि = धर्मराज के लोक के मार्ग पर, 'धर्मराजस्य लोकः तस्य अध्वनि (तत्पु०)' । अध्वनीनम् = पथिक । पशुमारम् पशु के समान मौत से । मारयित्वा = मार-कर । तद्रुधिरार्द्रमृदा = उन्हीं के रुधिर से गिली मिट्टी से, तेषां रुधिरेण आद्रा मृत् तया (तत्पु०) । निर्माय = बनाकर । चतुरङ्गिण्या = चतुरङ्गिणी (सेना का विशेषण) पहले सेना के चार अंग होते थे - गजारोही, अश्वारोही, रथी तथा पदाति (पैदल) 'हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गम् स्याच्चतुष्टयम्' (अमरकोष) । अनीकिन्या - सेना के साथ, अनीकाः सन्ति अस्यामिति अनीकिनी (सेना), तया; विनापितद्योगं तृतीया' सह का योग न होने पर भी उस अर्थ की प्रतीति के कारण तृतीया हुई है । प्रविश्य = प्रवेश करके । शीतलशोणितान् = ठंडे खून वाले (भारतीयों की), 'शीतलं शोणितम् येषां तान्' (बहुव्रीहि) । भावार्थ हुआ युद्ध की इच्छा न रखने वालों को । असयन् = तलवार के घाट उतारते हुए । अश्वायाम्बभूव = अश्वों से युक्त कर दिया अर्थात् अश्वारोहियों से घेर लिया, 'अश्वैः अति चक्राम इति' अतिक्रमण अर्थ में 'तेनातिक्रामति से 'णिच्' और 'भू' प्रयोग होकर यह रूप बनता है ।

टिप्पणी—(१) 'पशुमारम् मारयित्वा' में लुप्तोपमा अलङ्कार है ।
(२) लेखक ने काल-क्रम से भाग्यचक्र के परिवर्तन का संकेत किया है—"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य पंक्तिः" । ●

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिक-वि॰ोध-ज्वर-ग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकलय्या-नायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकोटकिट्टं महारत्नमवि महाराज्यमङ्गीचकार । तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः

प्रचिताः रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गा-गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्र देवमन्दिराणिभूमिसात्कृतानि ।

स एव प्राधान्येन भारते यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत् । तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीननामा प्रथम भारतसम्राट् संजातः ।

हिन्दी अनुवाद—तत्पश्चात् दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द को पारस्परिक विरोधज्वर से ग्रस्त, राजनीति को भूले हुए तथा भारतवर्ष के आने वाली दुर्भाग्य को समझकर अनायास ही, दोनों को (पृथ्वीराज और जयचन्द्र को) मारकर, वाराणसी तक अखण्ड, निष्कण्टक तथा कीट और मल से रहित, महारत्न के समान (इस) महाराज्य को अपने अधिकार में कर लिया। उसने वाराणसी में भी हड्डियों के अनेकों पहाड़ बना दिए। चंचल तरंगों वाली गंगा को भी रक्त से रंग कर लाल (रक्त) वर्ण का कर दिया और हजारों देव-मन्दिरों को धूलि में मिला दिया।

उसने ही मुख्यतः भारतवर्ष में यवन-राज्य का बीजारोपण किया। और उसी का ही कोई एक 'कुतुबुद्दीन' नामक गुलाम भारतवर्ष का प्रथम सम्राट् हुआ।

संस्कृत-व्याख्या—ततः=पत्पश्चात्, दिल्लीश्वरम्, दिल्लीनरेश पृथ्वीराजम् =एतन्नामकं राजानम् कान्यकुब्जेश्वरं=कान्यकुब्जनरेशं, जयचन्द्रम्= एतन्नामकं नृपतिम्, पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम्=पारस्परिककलह दोषदूषितम्, विस्मृतराज नीतिम्=राजनीतिज्ञानशून्यं, भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणम्=भारत-वर्षस्य आयान्तम् दुर्भाग्यम्, आकलय्य=ज्ञात्वा, अनायासेन=सहजेन, उभौ अपि=पृथ्वीराज-जयचन्द्रावपि, विशस्य=घातयित्वा, वाराणसी पर्यन्तम्= वाराणसीं यावत्, अखण्डमण्डलम्=समग्रमण्डलम्, अकण्टकम्=निर्विघ्नम्, अकीटकिट्टम्=कीटकिट्टविरहितम्, महारत्नमिव=महार्हशिलाखण्डमिव, महा-राज्यम्=विस्तृत राज्यम्, अङ्गीचकार=अधिकृतवान् । तेन=शहाबुद्दीनेन, वाराणस्यामपि=एतन्नाम्-कनगर्यामपि, बहवः अत्यधिकाः, अस्थिगिरयः= अस्थिसमूहः प्रचिताः=निर्मिताः, रिङ्गत्तरंग भंगा=चलदूर्मिभङ्गा, गङ्गाऽपि= सुरसरिदपि, शोणितशोणा=रक्तरञ्जिता, शोणीकृता=शोणनदतां प्रापिता,

परस्सहस्त्रापि = अनेक-सहस्त्राणि, देवमन्दिराणि = देवालया:, भूमिसात्कृतानि =धूलिसात्कृतानि। सः एव शहाबुद्दीन एव, प्राधान्येन = प्रमुखतया, भारते = इह। देशे यवनराज्याङ्कुरारोपकः यवनराजस्य बीजारोपक, अभूत् = आसीत्। तस्यैव = शहाबुद्दीनस्यैव, कश्चित् = एकः, क्रीतदासः = सेवकः, कुतुबुद्दीननामा = एतन्नामकः प्रथमभारतसम्राट् = आदि भारतपतिः संजातः = अभूत।

हिन्दी-व्याख्या—**पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम्** = आपसी फूट के ज्वर से ग्रस्त, पारस्परिकः विरोधः एव ज्वरः तेन ग्रस्ता तम् (तत्पु०)। "**विस्मृतराजनीतिम्** = राजनीति को भूले हुए, पृथ्वीराज आदि राजा इस राजनीति को भूल गये थे कि अपने देश में भले ही हम सब पृथक्-पृथक् हों, किन्तु बाहरी आक्रमण पर हम सब मिलकर एक हो जायंगे तो हमारी शक्ति बढ़ जायगी, विस्मृता राजनीतिः येन तम्, "वयं पञ्च वय पञ्च वयं पञ्च शक्तय ते। परैः साकम् विवादे तु वयं पञ्चोत्तरं शतम्"। (युधिष्ठिर नीति)। **भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणम्** = भारतवर्ष की आने वाली दुर्दशा को। **आकलय्य** = समझकर। **अनायासेन** = बिना अधिक प्रयास के ही। **विशस्य** = मारकर। **अकण्टकम्** = अकण्टक (निर्विघ्न), 'नास्ति कण्टकाः यस्मिंस्तत्'। **अकीटकिट्टम्** = कीड़े और मल से रहित अथवा कीड़े के मल से रहित, न सन्ति कीटाः किट्टम् च यस्मिन् तत् अथवा नास्ति कीटानाम् किट्टम यस्मिंस्तत् (बहुव्रीहि)। **महारत्नमिव** = महारत्न के समान। **अङ्गीचकार** = अधिकार कर लिया—'अङ्ग + च्वि + कृ + लिट् (तिप्)'। **अस्थिगिरयः** = हड्डियों के पहाड़, हड्डियों के समूह से गिरि शब्द का प्रयोग बहुत बड़े मानव-विनाश की सूचना के लिये किया गया है। **प्रचिताः** = बना दिये गये। **रिङ्गत्तरंगभङ्गा** = चंचल तरंगों वाली, रिङ्गन्तः तरङ्गाः, तेषां भङ्गाः यस्या सा (बहुव्रीहि)। **शोणितशोणा** = रक्त से रंगी हुई, शोणितेन शोणा। **शोणीकृता** = शोणनद के रूप में बना दी गई, मेकल गिरि से निकली हुई शोण नदी है जिसका जल रक्त के समान लाल है। उसी प्रकार रक्त प्रवाह से गंगा नदी भी बना दी गई। **परस्सहस्राणि** = हजारों। **देवमन्दिराणि** = देवताओं के मन्दिरों को। **भूमिसात्कृतानि** = धूलि में मिला दिया गया। **प्राधान्येन** = मुख्य रूप से। **यवनराज्याङ्कुरारोपकः** = मुसलमानों के राज्य का बीजारोपण करने वाला, "यवनराज्यस्य अङ्कुरस्य आरोपकः (तत्पु०)"।

क्रीतदास=खरीदा हुआ दास अर्थात् गुलाम। प्रथमभारतसम्राट्=भारत का पहला सम्राट्, 'प्रथम भारतस्य सम्राडिति'। सञ्जातः=हुआ।

टिप्पणी—(१) हिन्दुओं के पराजय का सबसे मुख्य कारण था आपसी फूट। आपसी विरोध भाव, विनाश का कारण होता है।

(२) 'महारत्नमिव' में उपमा अलङ्कार है। 'अस्थिगिरयः' यहाँ पर रूपक अलङ्कार है। 'रिङ्गत्तरङ्ग·· देव मन्दिराणि' में अनुप्रास का सुन्दर सन्निवेश है।

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राज्यमकार्षुः। दानवा एव च दीनानदीदलन। अभूतकेवलं अकबरशाह-नामा यद्यपि गूढशत्रुभारतस्यतथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्रो मूर्तिमदिव कलियुगः गृहीतविग्रहः इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीव. सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु, मत्स्येषु, मगधेषु, अङ्गेषु, वङ्गेषुः कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवल दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

हिन्दी अनुवाद—उसी से लेकर आज तक राक्षसों ने ही राज्य किया। दानवों ने ही दीनों की हत्या की। केवल अकबर नामक बादशाह यद्यपि भारतवर्ष का गूढ़ शत्रु था, तथापि वह शान्तिप्रिय और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसी का प्रपौत्र मूर्तिमान कलियुग के समान तथा साक्षात् शरीरधारी अधर्म के समान आलमगीर की उपाधि को धारण करने वाला 'अवरङ्गजेब' इस समय दिल्ली के शासन को कलङ्कित कर रहा है। इसी की पताका पंजाब, राजपूत, मगध, अङ्ग, बङ्ग और कलिङ्ग में फहरा रही है। केवल दक्षिण में इस समय भी इसका पूरा अधिकार नही हुआ है।

संस्कृत-व्याख्या—तमारभ्य=आकुबुद्दीनात्, अद्यावधि=इदीनं यावत्, राक्षसाः=म्लेच्छाः एव, च, दीनान–दुखितान्, अदीदलन्=अजीघतन। केवल=एकाकी, अकबरशाहनामा एतन्नामकः राजा, यद्यपि, भारतवर्षस्य=अस्य देशस्य, गूढशत्रुः=गुप्तरिपुः, अभूत्=आसीत्, तथापि (सः) शान्तिप्रियः =शान्तस्वभावः, विद्वत्प्रियश्च=विबुधप्रियः, च (अभूत्)। अस्यैव=अकबर शाहस्यैव, प्रपौत्रः=पुत्रस्य पुत्रः, मूर्तिमदिव=साक्षात् मूर्तिधारी, कलियुगमिव

=कलिकालमिव, गृहीतविग्रहः=धृतशरीरः, अधर्म इव=पाप इव, च, आलगीरोपाधिधारी=एतदुपाधिविशिष्टः, अवरङ्गजीवः=औरङ्गजेव इति नामकः, सम्प्रति=इदानीम्, दिल्ली वल्लभतां=दिल्ली पतित्वम्, कलंकयति=कलंकितं करोति। अस्यैव=औरङ्गजेवस्यैव, पताकाः=विजयध्वजाः, केकयेषु पंजावदेशेषु, मत्स्येषु=राजपूतेषु, मगधेषु=विहारस्यदक्षिणभागेषु, अङ्गेषु=विहारस्यपूर्वभागेषु, वङ्गेषु=वङ्गालप्रान्तेषु, कलिङ्गेषु=उड़ीसाप्रान्तेषु च दोधूयन्ते=उद्धूयन्ते, केवलं एकम्, दक्षिणदेशे=दक्षिणप्रान्ते, अधुनापि=इदानीमपि न, परिपूर्णः=समग्रतया, अधिकारः=आधिपत्यम् संवृत्तः=सञ्जातः।

हिन्दी-व्याख्या—**तमारभ्य** - कुतुबुद्दीन से लेकर। **अद्यावधि**=आज तक। **अकार्षुः** - किये, "√कृ + लुङ् (झि)।" **अदीदलन्**=दलित किया (हिंसा की), 'दल + लङ् (झि)'। **गूढशत्रुः**=गुप्तशत्रु। **शान्तिप्रियः**=शान्तिप्रेमी, 'शान्तिः प्रिया यस्मै सः।' **विद्वत्प्रियः**=विद्वानों का सम्मान करने वाला, विद्वांसः प्रियाः यस्य सः'। **अस्यैव**=अकवरशाह का ही। **प्रपौत्रः**=प्रपोत्र अर्थात् पुत्र का पुत्र (नाती)। **मूर्तिमत्**=मूर्तिमान्। **कलियुगमिव**=कलियुग के समान। **गृहीतविग्रहः**=शरीरधारी, 'गृहीतः विग्रहः येनः सः (बहुव्रीहि) विग्रह=शरीर। **अधर्म**=पाप। **आलमगीरोपाधिधारी** आलमगीर की पदवी को धारण करने वाला। **अवरङ्गजीव**: औरङ्गजेब। **सम्प्रति** इस समय। **दिल्लीवल्लभतां**=दिल्ली के स्वामित्व को (शासन को), दिल्ल्याः वल्लभः-दिल्ली वल्लभः, तस्य भावः,–ताम्। **कलङ्कयति**=कलङ्कित कर रहा है। **पताकाः**=झण्डे। **केकयेषु**=केकय अर्थात् पञ्जाव देश में, झेलम और चनाव के मध्य भाग को केकय कहा जाता था। भरत की माता 'केकयी' की जन्मभूमि यहीं थी। यवनकाल में इसे 'जलालपुर' कहा जाता था। **मत्स्येषु**=मत्स्यदेश में, इन्द्रप्रस्थ से पश्चिम, दृषद्वती से दक्षिण तथा रेगिस्तान से पूर्व का 'मत्स्य देश' कहलाता था। साम्प्रतिक नाम राजपूताना है। **मगधेषु**=दक्षिणी विहार में, विहार प्रान्त का दक्षिणी भाग (गया आदि का भाग) मगध कहलाता था। **अङ्गेषु**=अङ्ग प्रान्त में, पूर्वी विहार अर्थात् 'भागलपुर' का क्षेत्र 'अङ्ग' कहा जाता था। **बङ्गेषु**=वङ्गाल में। **कलिङ्गेषु**=कलिङ्ग में, साम्प्रतिक नाम 'उड़ीसा' है।

दोधूयन्ते=फहरा रहे हैं। दक्षिणदेशे - महाराष्ट्रादि प्रान्तों में। अधुनापि= इस समय भी। परिपूर्णः = पूर्ण रूप से। न संवृत्तः=नहीं हो पाया है।

टिप्पणी - (१) 'मूर्तिदिव कलियुगम्'='मानो कलियुग की मूर्ति हो' यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। मूर्तिमान कलियुग की सम्भावना की गई है।

(२) 'गृहीत विग्रह इव चाधर्मः' अधर्म के शरीर धारण की सम्भावना की गई है अतः यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

दक्षिणदेशो हि पर्वतवहुलोऽस्ति अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेशरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिण-देशशाशकत्वेन "शास्तिखान" नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्र-देशरत्नम्, यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यायमान दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम, भूषणं भटानां, निधिर्नीतानाम् कुलभवनम् कौशलानाम पारावारःपरमोत्साहानाम् कश्चन् प्रातः स्मरणीयः स्वधर्माऽऽग्रह गृह-गृहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गेससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्ध वैरम्। "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य धर्मस्य, भारतवर्षस्य। च आशासन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः: इयमेव वर्तमानादशा भारतवर्षस्य। किमधिकम् विनिवेदयामो योगवलावगतसकलगोप्यतम-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयित्वा विरराम।

हिन्द अनुवाद—दक्षिण प्रदेश में पर्वतों की अधिकता है, घने और बड़े जंगलों से व्याप्त है, इस कारण बहुत अधिक प्रयास करने के बाद भी महाराष्ट्र केशरी को (वह) जीत नहीं सका। 'इसी समय उसी का आत्मीय 'शाइस्त खाँ' दक्षिण प्रदेश के शासक के रूप में भेजा जा रहा है' ऐसा सुना जाता है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के खून की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी नायिका के माँग के सुन्दर और घना सिन्दूर दान करने से दैदीप्यमान भुजाओं वाले,

मराठों के मुकुटमणि, वीरों के भूषण, नीतियों के निधि, निपुणताओं के कुलगृह, परम उत्साह के सागर, प्रातः स्मरणीय, अपने धर्म (सनातन धर्म) के पालन में दृढ़, अवतार धारण किये हुए शिव के समान महाराज शिवाजी पूना नगर के समीप ही सिंहदुर्ग' में सेना सहित रह रहे हैं। इस समय विजयपुर के राजा से इनकी शत्रुता बढ़ी हुई है। 'या कार्य सिद्ध होगा अथवा शरीर नष्ट होगा' इस प्रकार इनकी सारगर्भित महती प्रतिज्ञा है। पतिव्रता स्त्रियों, सज्जनों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष के एकमात्र आधार ये ही हैं। यही भारतवर्ष की वर्तमान दशा है। योगबल से रहस्यात्मक वृत्तान्तों को भी जानने वाले योगिराज से मैं क्या अधिक निवेदन करूँ" इतना कहकर मुनि (ब्रह्मचारी के गुरु) चुप हो गये।

संस्कृत-व्याख्या—दक्षिण देशः = दक्षिण देशस्थ प्रान्तः, हि, पर्वतबहुलः = पर्वताधिक्यः, अस्ति = विद्यते, अरण्यानीसंकुलः = महदरण्यव्याप्तः, च, अस्ति = विद्यते, इति = अस्माद्धेतोः, चिरोद्योगेनापि = चिरप्रयासेनापि अयम् = औरङ्ग-जेवः, महाराष्ट्रकेशरिणः = महाराष्ट्रसिंहान्, हस्तयितुम् = अधिकर्त्तुम्, न अशकत् = न समर्थो बभूव। साम्प्रतम् = इदानीम्, अस्यैव = औरङ्गजेवस्यैव, आत्मीयः = स्वकीयः, दक्षिणदेश शासकत्वेन = दक्षिणप्रान्ताधीश्वरत्वेन, शास्तिखान' नामा = शाइस्ता खाँ नामकः, प्रेष्यते = गमयिष्यते, इति = एवं, श्रूयते = आकर्ण्यते। महाराष्ट्रदेशरत्नम् तद्देशचूडामणिम्, यवनानां = मोहमदानां, शोणितस्य = रक्तस्य, पिपासायाम् = पातु मिच्छायाम्, आकुलः = उत्कण्ठितः, कृपाणः = असिः, यस्य सः; वीरता = शूरता, एव, सीमन्तिनी ललना, तस्याः सीमन्ते = केशवेशे, सुन्दरं = अच्छं, सान्द्रम् = घनम्, यत् सिन्दूरदानम् तेन देदीप्यमानो = प्रकाशमानो, दोर्दण्डः = बाहुदण्डः यस्य सः; मुकुटमणिः = शिरोभूषणमणिः, महाराष्ट्राणाम् एतद्देशानां, भूषणम् = अलङ्कारः भटानां = शूराणाम्, निधिः निधानाम्, नीतीनाम् = राजनीतीनाम्, कुलभवनम् = कुल-गृहम्, कौशलानाम् = दक्षाणाम्, पारावारः = समुद्रः, परमोत्साहनाम् = अतिशय साहसानाम्, कश्चन = कोऽपि, प्रातः स्मरणीयः = कल्ये नमस्करणीयः, स्वधर्मा-ग्रहग्रहग्रहिलः = सनातनधर्मदृढपरिपालकः, शिव इव = शङ्कर इव, धृतावतारः = गृहीतावतारः, शिववीरः = 'शिवाजी' इति नाम्ना विख्यातः, अस्मिन् = इह, पुण्य-

नगरात् = 'पूना' इति ख्यातात् नगरात्, नेदीयसि एव = अति समीपे एव, सिंहा दुर्गे = सिंहगढ़े, ससेनः पताकिन्या सहितः, निवसति = वसति । साम्प्रतम् = इदानीम्, विजयपुराधीश्वरेण = वीजापुरनरेशेन, अस्य = शिववीरस्य, वैरम् = शत्रुत्वम्, प्रवृद्धम् · वृद्धि गतम् । 'कार्यम् = कर्म, वा = अथवा, साधयेयम् = सिद्धि कुर्यात्, देहम् शरीरम्, वा, पातयेयम् = नाशयेयम्" इत्यस्य = एतस्य, सारगर्भा ससारा, महती = भीषणा, प्रतिज्ञा = सकल्पः । सतीनाम् = प्रतिव्रतानां सताम् = सज्जानाम्, त्रैवर्णिकस्य = द्विजस्य, आर्यकुलस्य = आर्यपरिवारस्य, धर्मस्य = सत्कर्मणः, भारतवर्षस्य = एतद्देशस्य, च, आशासन्तान वितानस्य = आशासूत्रविस्तारस्य, अयमेव = एप एव, आश्रयः = आधारः, इयमेव = एषैव, भारतवर्षस्य = एवद्देशस्य, वर्तमाना आधुनिकी, दशा = अवस्था (अस्तीति शेषः)

हिन्दी-व्याख्या **दक्षिणदेशः** = महाराष्ट्र देशः । **पर्वतबहुलः** = अधिक पर्वतों वाला । **अरण्यानी संकुलः** घने तथा बड़े-बड़े जंगलों से व्याप्त, महद् अरण्यम = अरण्यानी, अरण्य + आनुक् + ङीष् (स्त्रियाम्), बड़े जंगल को 'अरण्यानी' कहते हैं । **चिरोद्योगेनापि** चिर उद्योग से भी अर्थात् बहुत दिनों के प्रयास के बाद भी । **अशक्त्** = समर्थ हुआ । **महाराष्ट्रकेशरिणः** = महाराष्ट्र केशरियों को अर्थात् सिंह के समान मराठों को, 'केशरी' पद यहाँ श्रेष्ठता का वाचक है— "स्युरुत्तरपदे व्याघ्र पुङ्ग वर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूल नागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थ गोचराः ।" (अमरकोष) । **हस्तयितुम्** = हस्तगत करने के लिये, हस्ते कर्तुमिति 'हस्तं + य + तुमुन्' । **आत्मीयः** स्वजन । **दक्षिणदेशशासकत्वेन** = दक्षिण देश के शासक के रूप में । **महाराष्ट्र देशरत्नम्** = महाराष्ट्र देशरत्नरूप (शिवाजी के विशेषण) 'रत्न' शब्द नित्य ही नपुंसकलिङ्ग होता है । **यवनः···कृपाणः** = यवनों के खून की प्यास से व्याकुल कृपाण वाले, (यहाँ से आगे शिवाजी के दश विशेषण दिये गये हैं), यवनानां शोणितस्य पिपासायामाकुलः कृपाणः यस्य सः (बहुव्रीहि), **पिपासा** = पीने की इच्छा, 'पा + सन्' । **वीरता···दोर्दण्डः'** = वीरतारूपी नायिका की माँग में सुन्दर घना सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान, 'वीरता एव सीमन्तिनी तस्याः सीमन्ते सुन्दरं सान्द्रं यत् सिन्दूरदानं तेन देदीप्यमानः दोर्दण्डः यस्य सः (बहुव्रीहि) । 'सीमन्तः केशवेशेस्यात्' केशवेशको

सीमन्त कहते हैं । **मुकुटमणिः** - मुकुट की मणि । **महाराष्ट्राणाम्**=मराठों के । **पारावारः**=समुद्र । **स्वधर्माग्रहग्रहग्रहिलः** अपने धर्म को हठ से भी पालन में दृढ़तर, 'स्वधर्मस्य आग्रहग्रहः तस्मिन् ग्रहिलः' (तत्पु०), **स्वधर्म**=सनातनधर्म, **ग्रहिलः** - दृढ़तर । **धृतावतारः**=अवतार धारण किये हुये 'धृतः अवतार येन सः' । **पुण्यनगरात्** = पूना नगर से । **नेदियसि** = अति समीप में, 'अतिशयेन अन्तिकः इति नेदीयान्, तस्मिन् । **सिंहदुर्गे** सिंहगढ़ में । **विजयपुराधीश्वरेण**—बीजापुर के राजा के साथ । **प्रवृद्धम्**=बढ़ा हुआ है, 'प्र+√वृध्+क्त' । 'कार्यं वा साधयेयं देहं वापातयेयम्'—या तो कार्य सिद्ध होगा या शरीर नष्ट होगा । यह उक्ति है । इसका आशय है दृढ़ प्रतिज्ञा करना । **सारगर्भा**=सारगर्भित अर्थात् महत्त्वपूर्ण । **त्रैवर्णिकस्य**—द्विज के । **आशासन्तानवितानस्य**=आशा सूत्र के विस्तार के, आशायाः सन्तानम् तस्य वितानम्, तस्य, सन्तान—परम्परा, वितान = विस्तार । **किमधिकम्**=क्या अधिक । **विनिवेदयामः**=निवेदन करें । **योग वृत्तान्तेषु** = योगबल से अवगत है सकल गोप्य वृत्तान्त जिन्हें, 'योगबलेन अवगतः सकलः गोप्यतमः यैस्तेषु (ब० व्री०)' । **अवगत** = ज्ञात, **गोप्यतम्** = रहस्यात्मक, (यह योगिराज का विशेषण है) । **कथयित्वा**=कहकर । **विरराम**=शान्त हो गये, वि+√रम+लिट् (तिप्) ।

टिप्पणी—(१) 'वीरता···दोर्दण्डः' वीरता रूपी नायिका के माँग में सिन्दूर लगाया है । 'वीरता' में नायिका का आरोप किया गया है । अतः रूपक अलंकार है । इस पद में श्रुत्यनुप्रास भी है ।

(२) 'शिव इव धृतावतारः' में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

तदाकर्ण्य-विविध भाव-भङ्ग-भासुर-वदनो योगिराजो मुनिराजं तत्सहचरांश्च निपुणं निरीक्ष्य, तेनापि शिववीरान्तरङ्गतामङ्गीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोरीकृत्य "विजयतां शिववीरः सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः" इति मन्दं व्याहार्षीत् ।

हिन्दी अनुवाद—यह वृत्तान्त सुनकर विविध भावों के भङ्ग से भासुर (दीप्तिमत्) मुख वाले योगिराज, मुनिराज तथा उनके सहचरों को भली-भाँति देखकर, उन लोगों (मुनि तथा उनके साथियों को) को भी 'शिवराज' के अन्तरङ्ग (सहायक) समझकर तथा मुनिवेश के बहाने अपने धर्म की रक्षा के व्रती

जानकर, "वीर शिवाजी विजयी हों, आप के मनोरथ सिद्ध हों" धीरे से ऐसा कहा।

संस्कृत-व्याख्या - तदाकर्ण्य = तच्छ्रुत्वा, विविधभावभङ्गभासुरवदनः = अनेक भावभङ्गप्रकाशितमुखः, योगिराजः = सः महर्षिः, मुनिराजं = ब्रह्मचारिगुरुम्, तत्सहचरान् = तत्सहायकान्, च, निपुणम् = सम्यक्, निरीक्ष्य = वीक्ष्य, तेषामपि = आश्रमवासिनामपि, शिववीरान्तरंगताम् = शिववीरस्य सहायकत्वम्, अङ्गीकृत्य = स्वीकृत्य, मुनिवेशव्याजेन = मुनिवेशच्छद्मना, स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = स्वधर्मपालनपरायणान्, च, उररीकृत्य = हृदयंगमं कृत्वा, "विजयताम् = जयतु, शिववीरः = शिवाजी इति, सिध्यन्तु = सफलीभवन्तु, भवताम् = युष्माकम् मनोरथाः" इति = एवं, मन्दं = अनुच्चैः व्याहार्षीत् = हर्षितवान्।

हिन्दी-व्याख्या:—विविधभावभङ्गभासुरवदनः = अनेक भावभङ्गियों से प्रसन्न मुख वाले, विविधाः भावभङ्गाः तैः भासुरं वदनं यस्य सः' (ब० व्री०)। तत्सहचरान् = उनके साथियों को, सहचरन्तीति सहचराः, तेषां सहचरा तान्। निपुणं = भली-भाँति। निरीक्ष्य = देखकर। शिववीरान्तरङ्गतां = शिवाजी की अन्तरंगता को, शिववीरस्य अन्तरंगता, ताम्। अङ्गीकृत्य = स्वीकार करके। मुनिवेशव्याजेन = मुनिवेश के बहाने से। स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = अपने धर्म की रक्षा में कटिबद्ध। उररीकृत्य = जानकर। व्याहार्षीत् = प्रसन्नता व्यक्त की।

अथ किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ "अवगतम् यवन युद्धे विजय एव, दैवादापद्ग्रस्तोऽपि सखि-साहाय्येनात्मानमुद्धरिष्यति' इति समभणीत। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य पुन किञ्चिदविचार्य्येव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य रोरुध्यमानैरपि किञ्चिदुद्गतैर्बाष्पाबिन्दुभिरालकुनयनो "भगवन्! प्रायो दुर्लभोयुष्माद्दृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपरापि पृच्छा आच्छादयति माम्" इति न्यवेदीत्। स च "आम! ऊरीकृतम् जीवति सः, सुखनैवास्ते" इत्युदतीतरत्। अथ "तं कदा द्रक्ष्याम" इति पुनः पृष्टवति "तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि" इत्यभिधाय बहूनिसान्त्वनावचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्,

गण्डशैलान्, अधित्यकाञ्चारुह्या पुनस्तस्मिन्नेव पर्वतकन्दरे तपस्तप्तुं जगाम ।

हिन्दी-अनुवाद—इसके बाद 'मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ ऐसा धीरे से कहकर जटाधारी मुनि के उत्कण्ठापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले—'जान लिया यवन के युद्ध में (शिवाजी की) विजय ही होगी, दैववश (भाग्यवश) आपद् ग्रस्त होकर भी मित्रों की सहायता से अपने को उद्धृतकर (उबार) लेगें । तब मुनि ने समझ लिया ऐसा कहकर फिर कुछ मानो विचार करके मानो स्मरण करके और दीर्घ तथा उष्ण साँस लेकर रोके जाने पर भी कुछ निकल आये हुए अश्रु-कणों से व्याकुल नेत्रों वाले मुनि ने निवेदन किया—"भगवान् ! प्रायः आप जैसे महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है अतः एक दूसरे प्रश्न की इच्छा भी मुझे आच्छादित कर रही है अर्थात् एक दूसरा प्रश्न भी पूछने की इच्छा रही है (तब) योगिराज ने उत्तर दिया—"हाँ ! समझ लिया, वह जीवित है सुखपूर्वक है । "मुनि के पुनः पूछने पर कि—कब देखूंगा उसे ?" उसके विवाह के समय में देखोगे" ऐसा कहकर, और बहुत से सान्त्वना वचनों को गम्भीर स्वर से कहकर, शीघ्र ही पर्वत की घाटी (उपत्यका) पर्वतों से घिरे हुए पर्वतखण्डों और पर्वत की पहाड़ियों पर चढ़कर पुनः उसी पर्वत की गुफा में तपस्या करने के लिये चले गए ।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = ततः, किञ्चिदपि, पिपृच्छिषामि = प्रष्टुमिच्छामि, इति = एवम्, शनैः = मन्दं, अभिधाय = कथयित्वा, बद्धकरसम्पुटे = बद्धाञ्जलौ, सोत्कण्ठे = जिज्ञासमाने, जटिलमुनौ = जटाधारिमुनौ, "अवगतम् = ज्ञातम्, यवनयुद्धे = मोहमयसंग्रामे, विजय एव = जय एव, दैवात् = दुर्भाग्यात्, आपदग्रस्तः = आपन्निमग्नः, अपि, सखिसाहाय्येन = मित्रसहायतया, आत्मानम् = स्वम्, उद्धरिष्यति = उद्धारं करिष्यति," इति = एवम्, समभाणीत् = समवादीत्, मुनिश्च ब्रह्मचारिगुरुश्च, गृहीतम् = अवगतम्, इति, उदीर्य = उक्त्वा, पुनः भूयः, किञ्चिद् = किमपि, विचार्य्य = विचिन्त्य इव, स्मृत्वेव = स्मरणमिव कृत्वा; च, दीर्घम् = अतिकालिकम्, उष्णम् = अनतिशीतम्, निःश्वस्य = उच्छ्वस्य रोरुध्यमानैः = भृश वार्यमाणैः, अपि, किञ्चिदुद्गतैः = किञ्चिन्निःसृतैः, वाष्प-

बिन्दुभिः=अश्रुकणैः, आकुलनयनः=व्याकुलनेत्रः, "भगवन्=महात्मन् ! प्रायः साधारणतया, युष्मादृशाणां=भवत्सदृशानां साक्षात्कारः=दर्शनम्, दुर्लभ एव अप्राप्य एव (भवति), इति=अस्माद्धेतोः, अपराऽपि=अन्याऽपि, पृच्छा=प्रश्नेच्छा, आच्छादयति=आवृणुते, माम्=मुनिम्" इति=एवं, न्यवेदीत्=निवेदितवान् । स च=योगिराजः, आम्=स्वीकारे, ऊरीकृतम्=विज्ञातम्, जीवति सः=जीवनं धारयति, सुखेनैव=सुखपूर्वकेणैव, आस्ते=अस्ति" इति, उदतीतरत्=उत्तरं दत्तवान् । अथ=ततः, "तं कदा—तं कस्मिन् समये, द्रक्ष्यामि=अवलोकयिष्यामि," इति पुनः=भूयः, पृष्टवति=पृष्टे सति, "तद्विवाहसमये=तदुद्वाहकाले, द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि," इति=एवं, अभिधाय=उक्त्वा, बहूनि अनेकानि, सान्त्वनावचनानि—आश्वासनानि, च गम्भीरस्वरेण=धीरवचसा, उक्त्वा=कथयित्वा, सपदि=तत्क्षणमेव उपत्यकाम्=अधोऽधः पर्वतम्, गण्डशैलान=पर्वतात् विच्युतस्थूलपाषाणान्, अधित्यकाम्=उपर्युपरि पर्वतम्, च, आरुह्य=उद्गम्य, पुनः=भूयोऽपि, तस्मिन्नेव=पूर्वोक्त एव, पर्वत कन्दरे=शैलगुहायाम्, तपस्तप्तुम्=तपस्यां कर्तुं, जगाम=अगच्छत् ।

हिन्दी-व्याख्या—**पिपृच्छिषामि**=पूछना चाहता हूँ, "पृच्छ+सन्+लट् (मिप्)" (इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय हुआ है) । **अभिधाय**=कहकर । **बद्धकरसम्पुटे**=हाथ जोड़ लेने पर, 'बद्धः करयोः सम्पुटः येन सः तस्मिन्,' (मुनि का विशेषण) । **सोत्कण्ठे**=उत्कण्ठा से युक्त, 'उत्कण्ठयासहितः सोत्कण्ठः तस्मिन् । **जटिलमुनौ** जटाधारी मुनि के, जटिल=जटाधारी, 'जटा+इलच्' । **दैवात्**=दुर्भाग्य से । **आपद्ग्रस्त** आपत्ति में पड़कर, 'आपदि ग्रस्तः इति' । **सखिसाहाय्येन**=मित्रों की सहायता । **उद्धरिष्यति**=उबार लेगा, 'उद्+√हृ+णिच लृट् (तिप्)" । **समभाणीत्** बोले, "सम्+भण्+लुङ् (तिप्)" । **उदीर्य**-कहकर । **विचार्य्येव**=जैसे कुछ विचार करके । **स्मृत्वेव**=जैसे कुछ स्मरण करके । **दीर्घमुष्णम्**=दीर्घ और गरम । **निःश्वस्य**=साँस लेकर, दीर्घ और उष्ण सांस लेना गम्भीर शोक का द्योतक है । **रोरुध्यमानैरपि**=बहुत अधिक रोकने पर भी, "√रुध्+शानच्" यहाँ 'भृशम्' के अर्थ 'यक तथा

वाष्पविन्दुभिः = आँसुओं की बूंदों से। आकुलनयनः = व्याकुल नेत्रों वाले (मुनि, का विशेषण) । युष्मादृक्षाणाम् = आप जैसों का। -पृच्छा = प्रश्न की इच्छा 'पृच्छ् + सन् + टाप् (स्त्री०)'। आच्छादयति = घेर रही है, 'आ + छद् + लट् (तिप्)'। न्यवेदीत = निवेदन किया, 'नि + विद् + लुङ् (तिप्)'। उरीकृतम् = समझ लिया, उरसि कृतम्' 'उरस् + च्वि + कृत्वा = उरीकृत्वा "ऊर्यादि च्वि डाचश्च' से गति संज्ञा और समास होकर बनता है उरीकृतम्, (उररी-कृतम् = हृदयगत कर लेना। उदतीतरत् = उत्तर दिया, 'उद् + √तृ + लुङ् (तिप्)'। द्रक्ष्यामि = देखूँगा । अभिधाय = कहकर । सान्त्वनावचनानि = सान्त्वना वचनों को। सपदि = तुरन्त ही। उपत्यकाम् = पर्वत की घाटी, (पर्वत के समीप की नीचे की भूमि)। गण्डशैलान् = पर्वत के गिरे हुए बड़े-बड़े टुकड़े "गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपलाः गिरेः' (अमरकोष)। अधित्यकाम् = पर्वत के ऊपर की भूमि, "उपत्यकाद्रेरासन्नाभूमिरुर्ध्वमधित्यका" (अमरकोष)। आरुह्य = चढ़कर। तपस्तप्तुम् = तपस्या करने के लिये। जगाम = चले गये।

टिप्पणी = विचार्येव, स्मृत्वेव में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

ततः शनैः शनैर्नियातेष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनि-र्गौरवटुमाहूय, विजयपुराधीशाज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थित-स्य अफजलखानस्य विषये यावत् किमपि प्रष्टुमियेष, तावत्, पादचार-ध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्यान्यमनस्के इव मुनौ गौरबटुर-पितेनैव ध्वनिना कर्णयोराकृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य पर्यट्य, 'कोऽयम्' ? इति च साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, मन्ये मार्जारः कोऽपि" इति मन्दं-मन्दं गुरवे निवेद्य पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्" इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे।

हिन्दी अनुवाद—तब, धीरे-धीरे अपरिचित लोगों के चले जाने पर, जन-शून्य हो जाने पर मुनि ने गौर ब्रह्मचारी को बुलाकर, बीजापुर के राजा की आज्ञा से शिवाजी के साथ लड़ने के लिये सेना के साथ प्रस्थान किये हुए 'अफ़जल खाँ' के विषय में कुछ पूछना चाहा, तभी किसी के पैरों की ध्वनि

सुनाई पड़ी। उसे सुनकर मुनि के उदास से हो जाने पर (वह) गौर ब्रह्मचारी भी उसी ध्वनि से कानों को आकृष्ट किये जाते हुए के समान उठकर, चतुरता से चारों ओर देखकर, घूमकर 'कौन है' इस प्रकार बार-बार कहकर, किसी को भी न देखकर, पुनः लौटकर, 'ऐसा लगता है कि कोई बिल्ली है, यह धीरे से गुरुजी से कहकर, पुनः वैसे ही बैठ गया। मुनि ने कोई दूसरा न सुन ले' इस आशंका से थोड़ी देर रुककर, पुनः कहना आरम्भ किया।

संस्कृत-व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दं, निर्यातेषु = गतेषु, अपरिचित जनेषु = अज्ञातजनेषु, निर्मक्षिके च = जनशून्ये च, संवृत्ते = जाते, मुनिः = ब्रह्मचारिगुरुः, गौरबटुम् = गौरब्रह्मचारिणम्, आहूय = आमन्त्र्य, विजयपुराधीशाज्ञया = तद्देशनरेशाज्ञया, शिववीरेण सह = महाराष्ट्राधीश्वरेण सह, योद्धुम् = युद्धं कर्त्तुम्, ससेनं - सेनया युक्तम्, प्रस्थितस्य - प्रस्थानं कुर्वतः, अफजलखानस्य = एतन्नामकस्य, विषये सम्बन्धे, यावत् - यदैव, किञ्चिद् = किमपि, प्रष्टुम् - प्रज्ञातुं, इयेष = इच्छितवान्, तावत् = तदैव, पादचारध्वनिम् = चरणोद्भूतरवम्, इव, कस्यापि, अश्रौषीत् = अशृणोत्। तम् = ध्वनिम् अवधार्य = संगृहीत्य, अन्यमनस्के - निरुत्साहिते, इव, मुनौ = ब्रह्मचारिगुरौ (संजाते), गौरबटुः = गौरबालकः अपि, तेनैव = पूर्वोक्तेणैव, ध्वनिना = शब्देन, कर्णयोः = श्रोत्रयोः, कृष्टः इव = आकृष्ट इव, समुत्थाय = उत्तिष्ठितो भूत्वा, निपुणं - सम्यक् परितः = समन्तात्, निरीक्ष्य - वीक्ष्य, पर्यटय - परिभ्रम्य, "कोऽयम् ? = कोऽस्ति, इति च, साम्रेडम् - बहुवारम्, व्याहृत्य = उक्त्वा; कमपि = कञ्चिदपि, अनवलोक्य = अदृष्ट्वा, पुनर्निवृत्य = पुनः प्रत्यागत्य, 'मन्ये = जाने, मार्जारः = विडाल, कोऽपि, इति = एवं, मन्दम् = नम्र गिरा, गुरवे = मुनये, निवेद्य = कथयित्वा, पुनः = भूयः, तथैव = पूर्वोक्त विधिना, उपविवेश = समुपाविशत्, मुनिः = ब्रह्मचारिगुरुः, "मा स्म = इति निषेधे, कश्चिदितरः = कोऽप्यन्यः, श्रौषीत् = आकर्णयतु, इति = एतस्मात्, सशङ्कः = आशङ्कितः सन् क्षणम् = किञ्चित्कालम्, विरम्य - स्थरीभूय, पुनः = भूयः उपन्यस्तुम् = वक्तुम्, आरेभे = आरभत्।

हिन्दी व्याख्या—निर्यातेषु = चले जाने पर, 'निर्√ + या + क्त (स० ब०)' अपरिचितजनेषु = अपरिचित लोगों के, यस्य भावेन भावलक्षणम्' से

सप्तमी विभक्ति । **संवृत्ते**=हो जाने पर । **निर्मक्षिके**=एकान्त, मक्षिकाणाम् अभावः निर्मक्षिकम्, तस्मिन् (अव्य०) मक्षिका मानव सञ्चार देश में रहती हैं, अतः उसके अभाव में जनशून्यता द्योतित होती है । यह औपलक्षणिक है । इसका भावार्थ है—मनुष्यों से शून्य स्थान (एकान्त) । **आहूय**=बुलाकर । **विजयपुराधीशाज्ञाया**=बीजापुरनरेश की आज्ञा से । **योद्धुं**=युद्ध करने के लिये, '√युध्+तुमुन्' । **ससेनम्**=सेना सहित, 'सेनया सहितम्' (अव्ययी०) । **प्रस्थितस्य**=प्रस्थान किये हुए (अफजलखाँ का विशेषण है); प्र√स्थ+क्त, (षष्ठी०) । **प्रष्टुम्**=पूछने के लिये । **ईयेष**=इच्छा किया, '√इष्+लिट् (तिप्)' । **पादचारध्वनिम्**=पैरों के चलने की ध्वनि, 'चरतीति चरः, चरः एव चारः (√चर+अण्), पादयोः चारः तस्य ध्वनिः तम्' । **अश्रौषीत्**=सुनी, '√श्रु+लुङ् (तिप्)' । **अवधार्य**=जानकर, 'अव+√धृ+ल्यप्' । **अन्यमनस्के इव**=अन्यमनस्क से हुए । **कर्णयोः**=कानों के । **कृष्ट इव**=आकृष्ट हुए के समान, '√कृष्+क्त' । **समुत्थाय**=उठकर । **पर्य्यटय**=टहल कर, परि+√अट्+ल्यप्' । **साम्रेडम्**=वार-वार । **व्याहृत्य**=कहकर, 'वि+आ+हृ+ल्यप्' । **अनवलोक्य**=न देखकर, 'अन+अव+लोक+ल्यप्' । **निवृत्य**=लौटकर । **'मन्येमार्जारः कोऽपि'**=मालूम होता है कि कोई बिल्ली हैं' । **तथैव**=उसी प्रकार । **उपविवेश**=बैठ गया, उप+विश+ल्यप्' । **कश्चित्**=कोई । **इतरः**—दूसरा । **मा श्रौषीत्**=न सुन ले, '√श्रु+लुङ् (तिप्)', 'माङ्' के योग में 'लुङ्' का प्रयोग यथा 'अट्' का निषेध । **सशङ्कः** शङ्कित हुए, 'शंकया सहितः सशङ्कः' । **विरम्य**=रुककर । **उपन्यस्तुम्**=कहने के लिए । **आरेभे**=आरम्भ किया, 'आ+√रभ्+लिट्' ।

टिप्पणी—"अन्यमनस्के इव मुनौ" में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

"वत्स गौरसिंह ! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाकी अफजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्चब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति । कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्" । तावत् पुनरश्रूयतमर्मरः पादक्षेपश्च । ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि

कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टम्, यत् कुटीरनिकटस्थनिष्कुटक-कदलीकूटे द्वित्रास्तरवोऽतितरां कम्पन्ते इति ।

हिन्दी अनुवाद—पुत्र गौरसिंह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, जो कि तुमने अकेले ही अफजल खाँ के तीन घोड़ों तथा उसके द्वारा दास बनाये गये पाँच ब्राह्मण पुत्रों को छुड़ाकर ले आये हो। (तुम) ऐसे क्यों न हो ? "राजपूताने के क्षत्रियों का कुल ही ऐसा है।" तभी पुनः मर्मर ध्वनि तथा पैरों की आहट सुनाई पड़ी। तब रुककर, मुनि स्वयं उठकर, एक ऊँचे शिलापीठ पर चढ़कर निपुणता के साथ चारों ओर देखते हुए भी पैरों की आहट का कोई कारण नहीं देखा। इसीलिये एकाग्र मन से भलीभाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा, कि कुटी के समीप गृहवाटिका के केलों की झुरमुट में दो या तीन पेड़ अधिक कंप रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—वत्स = पुत्र गौरसिंह। अहम् - मुनिः, अत्यन्तम् = अधिकम्, तुष्यामि = तुष्टोऽस्मि, त्वयि = भवति, यत्, त्वम् = भवान्, एकाकी = केवलः, अफजलखानस्य - तन्नामकस्य, त्रीनश्वान् = घोटकत्रयम्, तेन = अफजलखानेन, दासीकृतान = भृत्यीकृतान्, पञ्च ब्राह्मणतनयान् = पञ्चविप्र-सुतान, च, मोचयित्वा = मोक्षं कारयित्वा, आनीतवानसि = अनैषीः, इति। कथम् न, भवेः = स्याः, इदृशः = एतादृशः ? कुलम् = वंश, एव, ईदृशम् = एवम्, राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम् = तद्देशक्षत्राणम्। तावत् तदा, पुनः = अश्रूयत् = संश्रुतः, मर्मरः = शुष्क पर्णध्वनिः पादक्षेपश्च = चरणचापश्च। ततः = किञ्चिद कालानन्तरम्, मुनिः = ब्रह्मचारिगुरुः, स्वयमुत्थाय = मुनिरेवोत्थाय, प्रोच्य = कालानन्तरम्, मुनिः = ब्रह्मचारिगुरुः, स्वमुत्थाय = मुनिरेवोत्थाय, प्रोच्य = अत्युन्नतं, एकम् - केवलम्, शिलापीठम् पर्वतखण्डम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, निपुणतया = सम्यक्, परितः = समन्तात्, पश्यन्नपि = अवलोकयन्नपि, चरणाक्षेपशब्दस्य = चरणनिक्षेपध्वनेः, किमपि किञ्चिदपि कारणम्, न अवलोकयामास = अपश्यत्। अतः = तेन, पुनः, एकतानेन = एकचित्तेन, निपुण सम्यक्, निरीक्षमाणेन = दृश्यमाणेन, गौरसिंह = तद्वटुना, दृष्टम् = अदर्शि, यत्, कुटीरनिकटस्थनिष्कुटककदलीकूटे = कुटीरान्तिक गृहवाटिकाकदली-

कदम्बेद्वित्रा=द्वौ, त्रयो वा, तरवः=वृक्षाः, अतितरां=अधिकतरां, कम्पन्ते=प्रस्फुरन्ति, इति ।

हिन्दी व्याख्या—तुष्यामि=प्रसन्न हूँ । **एकाकी**=अकेले । **त्रीन् अश्वान्**=तीन घोड़ों को । **ब्राह्मणतनयान्**=ब्राह्मण के पुत्रों को । **मोचयित्वा**=छुड़ाकर '√मुच्+णिच्+क्त्वा' । **आनीतवानसि**=ले आये हो, 'आ+√नी+क्तवतु' । **ईदृशः**=इस प्रकार । **राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्**—राजपूत देश के क्षत्रियों का । **अश्रूयत**=सुना । **मर्मरः**=मर्मर ध्वनि, 'अथ मर्मरः । स्वनिते वस्त्रपर्णानाम्' (अमरकोष), वस्त्र अथवा पत्तों के शब्द को 'मर्मर' कहते हैं । **पादक्षेपः**=पैरों की चाप (ध्वनि) । **विरम्य**=रुककर, वि+रम्+ल्यप्' । **प्रोच्चम्**=उन्नत । **शिलापीठम्**=शिलाखण्ड पर । **आरुह्य**=चढ़कर । **निपुणतया**=चतुरता के साथ । **पश्यन्**=देखता हुआ । **अवलोकयामास**=देखा । **चरणाक्षेप शब्दस्य**=पैरों के आहट के शब्द का, 'चरणानां आक्षेपः, तस्य शब्दः तस्य' । **एकतानेन**=एकाग्रचित्त से । **निरीक्षमाणेन**=देखने वाले (गौरसिंह का विशेषण । 'निर्+ईक्ष+शानच् (तृ०) ।' **दृष्टम्**=देखा, 'दृश्+क्त' । **कुटीरनिकटस्थ निष्कुटक कदलीकूटे**=कुटी के समीप में स्थित गृहवाटिका के केलों के समूह (झुरमुट) में, कुटीरस्य निकटे स्थिता ये निष्कुटकाः तेषु यः कदलीनाम् कूटः तस्मिन्' (तत्पु०) **निष्कुट**=गृहवाटिका, निष्कुटा एव निष्कुटकाः; 'गृहारामास्तु निष्कुटाः" (अमरकोष), **कूट**=समूह । **द्वित्राः**=दो-तीन, 'द्वौ वा त्रयो वेति द्वित्राः' **अतितराम्** अधिकतर, अति+तरप् । **कम्पन्ते**=कंप (हिल) रहे हैं ।

टिप्पणी—(१) आश्रमवासी मुनियों तथा ब्रह्मचारियों की सतर्कता, राजनीतिकला तथा वीरता का दिग्दर्शन होता है ।

(२) राजपूत के क्षत्रियों की वीरता से गौरसिंह की वीरता का प्रतिपादन किया गया है, अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है । ●

तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य कुटीरवलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्तहस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः, कपोलतलविलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिनः, कुटिलकचान् वामकराङ्गुलि-

भिरपसारयन्, मुनिवेषोऽपि किञ्चित् कोपकषायितनयनः, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररसद्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्चलता-प्रतान-वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भात्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानं हरितकञ्चुकं श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम् काकासनेनोपविष्टम्, रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदलीकिसलयानि मलिनायतम्, नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन कन्यकापहरणपङ्ककलङ्ककलङ्किताननम्, विंशतिवर्षकल्पं यवनयुवकम्। ततः परस्परम् आक्षुष सम्पन्ने हृष्टोऽहमिति निश्चित्य, उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेव संजाताः परस्परमालापाः।

हिन्दी-अनुवाद—'वही संशय का स्थान है' ऐसा अँगुली से निर्देश करके कुटीर की वल्ली (पटल प्रान्त) में छिपा कर रखी हुई तलवारों में से एक को खींचकर, खाली हाथ वाले मुनि से अनुगम्यमान होता हुआ, कपोलों तक लटकने वाले तथा नेत्रों को चुम्बित करने वाले घुंघराले बालों को बाँये हाथ की अँगुलियों से दूर हटाता हुआ, मुनिवेश में होते हुए भी कुछ क्रोध के कारण लाल नेत्रों वाला, हाथ में प्रकम्पित एवं निर्दय तलवार को लिये हुए, महादेव की आराधना के इच्छुक तपस्विवेष वाले अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों में स्नान किये हुए गौरसिंह तुरन्त ही उसके (निर्दिष्ट स्थान के) समीप पहुँचा और वहाँ लताओं के विस्तृत तन्तुओं (बेलों) से वेष्टित केले के तीन स्तम्भों (पेड़ों) के बीच में नीले वस्त्र के टुकड़े से वेष्टित शिर वाले हरित वर्ण के कञ्चुक (कुर्त्ता) वाले, श्याम (नीले) वस्त्र से कटितट को बाँधे हुए, चितकबरे रंग का अधोवस्त्र पहने हुए, काकासन से बैठे हुए केले के आलवाल पर अधोमुख रखी हुई तलवार की मूठ पर दोनों हाथों को उल्टे रखे हुए, लहसुन की दुर्गन्ध युक्त निश्वासों से केले के कोमल पत्तों को मलिन करते हुए, नवाङ्कुरितश्मश्रु (मूंछ) की रेखा के बहाने कन्या के अपहरण रूप कीचड़ के कलंक पंक

से कलंकित मुख वाले लगभग बीस वर्ष वाले (एक) मुसलमान युवक को देखा। तब आपस में दोनों की आँखे मिल जाने पर—"मैं देख लिया गया हूँ" ऐसा निश्चय करके, उछल कर, म्यान से तलवार को खींचकर, लड़ने की इच्छा से (यवन युवक) भी सामने खड़ा हो गया। तब दोनों में परस्पर इस प्रकार बात-चीत हुई।

संस्कृत-व्याख्या—तदेव = एतदेव, संशयस्थानम् = संदेहस्थलम्, इति = एवम्, अंगुल्या करजेन, निर्दिश्य = निर्दिशं कृत्वा, कुटीरवलीके = उटजपटले, गोपयित्वा = गोपन कृत्वा, स्थापितानाम् = स्थानीकृतानाम्, असीनाम् = कृपाणानाम्, एकम् = केवलम्, आकृष्य = निष्कृष्य, रिक्तहस्तेनैव - शून्यकरेणैव, मुनिना = गुरुणा, पृष्ठतोऽनुगम्यमानः = पृष्ठतोऽनुसृतः सन्, कपोलतलविलम्बमानान् = गण्डसलग्नान्, चक्षुश्चुम्बिनः - नेत्रसंस्पर्शकान्, कुटिलकचान् = कुटिलकुन्तलान्, वामकराङ्गुलिभिः = वामहस्ताङ्गुलिभिः, अपसारयन् दूरीकुर्वन्, मुनिवेशोऽपि = साधुवेषोऽपि, किञ्चित् कोपकषायित नयनः = ईषत् क्रोधकलुषित लोचनः, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणः = हस्तोद्वेजितदयाशून्यकृपाणः, महादेव = शंकरम्, आरिराधयिषुः = सेवितुमिच्छुः, तपस्विवेषः = मुनिस्वरूपः अर्जुन इव = पार्थ इव, शान्तवीररसद्वयस्नातः = शान्तवीरोभयरससिक्तः, सपदि = तत्क्षण एव, समागतवान् = समागच्छत्, तन्निकटे = निर्दिष्टस्थानसमीपे, अपश्यत्, च = अलोकयत् च, लतानाम् = वल्लीनाम्, प्रतानानि = सूक्ष्मतन्तवस्तेषां, वितानम् = विस्तारः तेन, वेष्टितम्, = वलयितम्, रम्भास्तत्रानां त्रियतम् कदलीस्तम्भत्रयम् तस्य, मध्ये = अन्तरे, नीलवस्त्र खण्डवेष्टिमूर्द्धानम् = नीलपटखण्डवलयितशिरम्, हरित् कञ्चुकम् = हरिद्वर्णोर्ध्ववस्त्रम्, श्यामवसनेन = कृष्णपटेन, आनद्धम् = आच्छादितम्, कटितटे = मध्यभागे, कर्बुरम् = अनेकवर्णम्, अधोवसनम् = नाभ्यूरुजङ्घाच्छादनम्, यस्य तम्, काकासनेवोपविष्टम् - एतदासनविशेषणोदविष्टम्, रम्भायाः = कदल्याः, आलवाले आवापे, अधोमुखस्य निम्नाननस्य, खड्गस्य = कृपाणस्य, त्सरौ = मुष्टौ, न्यस्तम् स्थापितम् विपर्यस्तम् = न्यब्जीभूतम्, हस्तयुगलम् = करद्वयम्, यस्य तम्, लशुनगन्धिभिः = लशुनवासैः, निःश्वासैः = श्वासैः, कदली किसलयानि = रम्भादलानि, मलिनायतम् = मलिनीकुर्वन्तम्, नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन -- नवस्फुरितश्मश्रुराजिव्याजेन, कन्यकायाः = बालिकायाः, अपहरणरूप यत् पङ्कम् = पापम्, तस्य यः कलङ्कः स

एव पङ्कः—कर्दमः, तन कलङ्कितम्—भ्रष्टम्, आननम्=मुखम्, यस्य तम् विंशतिवर्षकल्पम्—विंशतिवर्षदेशीयम्, यवनयुवकम्=यवनयुवानम् । ततः= तदा, परस्परं=अन्योन्यम्, चाक्षुषे = नेत्रप्रत्यक्षे, सम्पन्ने=जाते, दृष्टोऽहम्= ज्ञातोऽहम् इति=एव निश्चित्य=निश्चयं कृत्वा, उत्प्लुत्य=उत्पत्य, कोशात् =कृपाणाच्छादनात्, कृपाणम्=असिम्, आकृष्य, युयुत्सुः= योद्धुमिच्छुः, सोऽपि =यवनयुवकोऽपि, सम्मुखम्=समक्षम्, अवतस्थे=स्थितान । ततः तदनन्तरम्, तयोः=यवनयुवक=गौरसिंहयोः, एवम्=इत्यम्, परस्परम्=मिथः, अलापाः =वार्ताः, संजाताः=कृताः ।

हिन्दी-व्याख्या—तदेव - वही । संशयस्थानम् - सदेह का स्थान (है) । निर्दिश्य=निर्देश करके, 'निर् + √दिश + ल्यप्' । कुटीरवलीके=कुटीर की ओरी में, "वलीकनिध्रे पटलप्रान्ते" (अमरकोष) । गोपयित्वा=छिपाकर 'गुप् + णिच् + क्त्वा' । स्थापितानाम्=रखी हुई । असीनाम्=तलवारों में से । आकृष्य खींचकर । रिक्तहस्तेन - खाली हाथ । पृष्ठतः=पीछे पीछे, अनुगम्यमानः=अनुगमन किये जाते हुये (पीछा किये जाते हुये), 'अनु + गम् + णिच् + शानच्' । कपोलतलविलम्बमानाम्=गालों तक लटकने वाले ('बालों' का विशेषण) । चक्षुश्चुम्बिनः=नेत्रों को स्पर्श करने वाले । कुटिलकचान्=टेढ़े-मेढ़े बालों को, 'कुटिलाः कचाः, तान्' वामकराङ्गुलिभिः=बाँये हाथ की अँगुलियों से । अपसारयन् दूर करता हुआ (पीछे करता हुआ), 'अप + √सृ + णिच् + शतृ' । किञ्चित् कोपकषायितनयनः=कुछ क्रोध से लाल नेत्रों वाला, 'किञ्चित् कोपेन कषायिते नयने यस्य सः' (बहुव्रीहि) । करकम्पितकृपाकृपणकृपाणः=हाथ में कम्पित एवं निर्दय तलवार को लिये हुये, 'करे कम्पित कृपाकृपणश्च कृपाणः यस्य सः' (बहुव्रीहि) अर्थात् इधर-उधर हिलाता हुआ क्रूरकृपाण को हाथ में लिये हुए । आरिराधयिषुः आराधना करने की इच्छा वाले, 'आ + √राधि + सन् + उ' । तपस्विवेषोऽर्जुन इव=तपस्वी के वेष वाले अर्जुन के समान; शंकर की आराधना के लिये अर्जुन (पाण्डव) ने धनुष् लिये हुये तपस्या की थी' महाभारत की कथा है । जिस प्रकार अर्जुन वीर और तपस्वी दोनों के वेश में थे उसी प्रकार गौरसिंह भी हाथ में तलवार लिये मुनिवेश में था, अतएव अर्जुन के समान वीर और शान्त दोनों रसों से युक्त था—"शान्तवीररस-

द्वयस्नात:" आगे लिखा गया है। **सपदि**=तुरन्त ही। **तन्निकटे**=(जहाँ पर केले के पेड़ हिल रहे थे) उसके निकट। **समागतवान्**=आया। **अपश्यच्च**=और देखा। **लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयस्य**=लताओं की विस्तृत वेलों से आच्छादित केले के तीन पेड़ों के, 'लतानां प्रतानानि तेषां वितानम् तेन वेष्टितम् रम्भास्तम्भानां त्रितयम्' इति (तत्पु०), **प्रतान**=सूक्ष्म तन्तु, **वितान**=विस्तार, **वेष्टित**=आच्छादित, **रम्भा** केला। **नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानम्**=नीले वस्त्र के टुकड़े से शिर लपेटे हुए, नीलं यत् वस्त्रखण्ड तेन वेष्टितोमूर्धा यस्य सः तम् (कर्मधारय गर्भ बहुव्रीहि), (यवनयुवक का विशेषण)। **हरित-कञ्चुकं** - हरे रंग का कुर्त्ता पहने हुए। **श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम्**=काले कपड़े को कमर में बाँधे हुए था और उसके नीचे चितकबरे रंग का अधोवस्त्र (लुङ्गी) पहने हुए था, 'श्यामवसनेन आनद्धम् कटितटे कर्बुरम् यस्य तम्, (बहुव्रीहि), **श्यामवसन**=काला कपड़ा, "वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसन-मंशुकम् (अमरकोष); **आनद्ध**=आच्छादित, 'आ । √नध + क्त'। **कर्बुर**=चितकबरा (अनेक वर्ण), "चित्रंकिर्मीर कल्माष शबलैताश्च कर्बुर" (अमरकोष), **अधोवसन**—नाभि से नीचे का आच्छादक वस्त्र प्रकृत में इसका आशय-'तहमत' या 'लुङ्गी' से है। **काकासेनेनोपविष्टम्**=काक-आसन से बैठे हुए, **काकासन**=दोनों घुटनों के बीच में चिबुक (ठोढ़ी) डाल कर बैठने को काकासन कहते हैं। **रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्**=केले के आलवाल (थाल्हा) पर नीचे मुख वाली रखी हुई तलवार की मुट्ठी पर दोनों हाथों को उलटे रखे हुए, 'रम्भाया आलवालेलग्नः अधोमुखः यः खड्गः तस्य त्सरौ न्यस्तम् विपर्यस्तम् हस्तयुगलम् यस्य सः तम्' (बहुव्रीहि), **आलवाल**=आवाप (हिन्दी में 'थाल्हा' या 'ओटा'), वृक्ष के चारों ओर जल के रुकने के लिये बनाए गये घेरे को आलवाल कहते हैं—'स्यादालवालमावाप' (अमरकोष)। **त्सरु**=मुष्टि (तलवार की मूंठ)—"त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्') (अमरकोष), **न्यस्त**=रखे हुए, **विपर्यस्त**=उलटे (न्युब्जीकृत)। **लशुनगन्धिभिः**=लहसुन की गन्ध वाले (श्वास का विशेषण)। **मलिनयन्तम्**=मलिन करने वाले। **नवाङ्कुरित-श्मश्रुश्रेणिच्छलेन**=थोड़े-थोड़े से निकलने वाले मूँछों की पंक्तियों के ब्याज से, नवाङ्कुरितायाः श्मश्रु श्रेण्याः छलेन (तत्पु०), **श्मश्रु**=मूंछ। **कन्यकापहरण-**

पङ्कलङ्कपङ्ककलङ्कितानंनम् = कन्या के अपहरणरूप कीचड़ के कलङ्करूप पङ्क से कलङ्कित मुख वाले; पंङ्क = कीचड़—"पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ" (अमरकोष)। विंशतिवर्षकल्पम् = लगभग बीस वर्ष की अवस्था वाले। यवनयुवकम् = मुसलमान के लड़के को। चाक्षुषे दृष्टिगोचर (दर्शन), चक्षुपा भवम्, चाक्षुषम् तस्मिन्। सम्पन्ने - हो जाने पर। निश्चित्य - निश्चित करके। उत्प्लुत्य = उछल कर, 'उत् + √प्लुङ् + ल्यप्'। युयुत्सुः = युद्ध करने की इच्छा वाला, √'युध् + सन् + उ'। सम्मुखम् = सामने। अवतस्थे स्थित हो गया, 'अव + √स्था + लिट्'। तयोः = उन दोनों में (मुसलमान युवक और गौरसिंह में)। परस्परम् = आपस में। अलापाः = बात चीत। संजाताः—हुई।

टिप्पणी—(१) आश्रमवासी तपस्वी भी धर्म और देश की रक्षा के लिये युद्ध करने को तैयार रहते थे।

(२) गौरसिंह का अत्यन्त सटीक चित्र खींचा गया है। खड्ग धारण करने से वीरता और वेष से शान्ति की प्रतीति होती है। अतएव वीर और शान्त रस दोनों से युक्त बताया गया है।

(३) गौरसिंह की उपमा अर्जुन से दी गई है, अतः उपमा अलङ्कार है।

(४) इस खण्ड में अनेकत्र अनुप्रास का सुन्दर चित्रण है, इससे चित्रात्मकता द्योतित होती है।

(५) 'कन्यका ....आननम्' में सभङ्ग पद यमक अलङ्कार है।

गौरसिंहः—कुतो रे यवनकलकलङ्क!

यवनयुवकः—आः। वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः? भारतीयकन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृङ्खलाङ्कलविहीनानां हिन्दुपदव्यवहार्याणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंह—[सक्रोधं विहस्य] वयमपि स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः शिवस्य गणाः अत्रैव निवसामः। तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गायितोऽसि।

यवनयुवकः—अरे रे वाचाल! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मणतनयां सपदि प्रयच्छथ, तदा कदाचिद् दयया जीवतोऽपि

त्यजेयम्, अन्यथा मदसि भुजङ्गिन्या दंष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवत्स्यथ ।

हिन्दी अनुवाद—गौरसिंह—रे यवन कुलकलङ्क । कहाँ से (आया) ।

यवन युवक—अरे ! हम भी कहाँ से (आये हैं), यह पूंछना है । भारत की पर्वत गुफाओं में भी विचरण करते हैं, (तथा) सींग-पूंछ से रहित तथा-कथित हिन्दू नामधारी तुम जैसे पशुओं का शिकार से आनन्द मनाते हैं ।

गौरसिंह—(क्रोध के साथ हँसकर) अपने गोद (पास) में आये हुए (दुष्ट) प्राणियों के ऊपर ही जीवित रहने वाले शिव के गण, हम सब भी तो यहीं रहते हैं, तो आज का प्रभात शुभ रहा, (क्योंकि) तुम स्वयं ही तीव्र दावानल में पतंग के समान (जलने के लिये) आ गये हो ।

यवन युवक—अरे-रे वाचाल ! कल रात्रि में तुम्हारी कुटी में रोती हुई जो ब्राह्मण की पुत्री आई थी, (उसे) तुरन्त दे दो । तब कदाचित् (शायद) दया करके तुम जीवित भी छोड़ दिये जाओ, नहीं तो क्षण भर में ही मेरे इस सर्पिणी सी तलवार के द्वारा डँसे जाने पर (तुम्हारी) कथामात्र अवशेष रह जायेगी ।

संस्कृत-व्याख्या—गौरसिंहः—रे यवन कुलकलङ्क ! कुतः=कुत्रत्यः अत्र आगतोऽसि ।

यवनयुवकः—आः ! वयमपि यवना अपि, कुत इति=कुत्रत्य इति, प्रष्टव्याः=प्रश्नस्य विषयाः सन्तीति ? भारतीयकन्दरिकन्दरेषु=भारतीयपर्वत-गुहासु, अपि वयम् = यवनाः, विचरामः=पर्यटामः, श्रृङ्गलाङ्गूलविहीनानां= विषाणलाङ्गूलरहितानां, हिन्दुपदव्यवहार्याणाम् = हिन्दुपदवाच्यानां युष्मादृक्षा-णाम्=भवत्सदृशानाम्, पशूनाम्=चतुष्पदानाम्, आखेटक्रीडया = मृगयाखेलया, रमामहे=मनोरञ्जनं कुर्मः ।

गौरसिंहः—[सकोपं हसित्वा] वयमपि तु=आश्रमनिवासिनोऽपितु स्वाङ्क-गतसत्ववृत्तयः=स्वक्रोडागतप्राणिवृत्तयः, शिवस्य=शंकरस्य, गणाः=रुद्रादयः, अत्रैव=इहैव, निवसामः=वसामः, तत्सुप्रभातमद्य=सुदिवसोऽद्य, स्वयमेव, त्वं=यवनयुवक, दीर्घदावदहने=तीव्रदावानले, पतङ्गायितोऽसि=पतङ्गमि-वाचरसि ।

यवनयुवकः—अरे रे वाचाल ! ह्यः = गते, रात्रौ = निशि, युष्मत् कुटीरे = भवदुटजे, रुदतीम् = विलपन्तीम्, समायाताम् = आगतवतीम्, ब्राह्मणतनयाम् = विप्रसुताम्, सपदि = तत्क्षणमेव, प्रयच्छथ - दत्थ, तत्कादाचित्, दयया = कृपया, जीवतोऽपि = अमृतोऽपि, त्यजेयम् = मुञ्चेयम्, अन्यथा, मदसिभुजङ्गिन्या = मत्कृपाणसर्पिण्या, दष्टाः = कर्तिताः, क्षणात् = क्षणानन्तरम्, कथावशेषाः = नाममात्रावशेषः, संवत्स्यंथ = वर्तिष्यध्वे ।

हिन्दी-व्याख्या—'वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः—'हम भी कहाँ से (आये हैं)', यह पूँछना है, अर्थात् यह पूँछने का विषय नहीं है। भारतीयकन्दरिकन्दरेषु = भारतीय पहाड़ों की कन्दराओं में 'भारतीयाः कन्दरिणः तेषां कन्दरेषु' (तत्पु०), कन्दरा सन्ति अस्मिन् इति कन्दरी = पहाड़। भृङ्गलाङ्गूलविहीनानाम् = सींग-पूँछ से हीन ('युष्मादृक्षणाम् का विशेषण), भृङ्ग = सींग लाङ्गूल = पूँछ। हिन्दुपदव्यवहार्याणाम् = हिन्दू नाम से कहे जाने वाले। युष्मादृक्षाणाम् - तुम्हारे समान। आखेटक्रीडया - शिकार के खेल से। रमामहे = मनोरञ्जन करता हूँ। विहस्य = हंसकर। स्वाङ्कगतसत्ववृत्तयः = अपनी गोद में आये हुए प्राणी ही वृत्ति (आहार) हैं जिनकी, 'स्वाङ्के आगताः सत्वाः एव वृत्तयः येषां ते (बहुव्रीहि), सत्व = जीव, वृत्ति - जीवन साधन। तत्सुप्रभातमद्य = तो आज का अच्छा सवेरा हुआ। दीर्घदावदहने - दीर्घदावानल में दावदहन = वन की अग्नि—'दवदावौवनानले' (अमरकोष)। पतङ्गायितोऽसि — पतङ्ग के समान आचरण कर रहे हो. "पतङ्गमिवाचरितः, पतङ्गायित; 'पतङ्ग + क्यच् + क्त'। रुदतीम् - रोती हुई, '√रुद् + शतृ' (स्त्री०)। समायाताम्, आई हुई। प्रयच्छथ - दे दो। तत्कदाचित् - तो शायद। त्यजेयम् = छोड़ दूँ। मदसिभुजङ्गिन्या = मेरे कृपाण रूपी नागिन से, मदसिः एव भुजङ्गिनी तया। दष्टाः = डंसे गये, '√दंश + क्त'। क्षणात् एक क्षण के बाद, यतश्चाध्वकाल निर्माण तत्र पञ्चमी' से यहाँ पञ्चमी विभक्ति हुई है। कथावशेषाः - कथामात्र अवशेष। संवत्स्यंथ = रहोगे, 'सम् + √वृतु + लृट् (था', 'वृद्भ्यः स्यसनोः' से परस्मैपद और "न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः" से इट् का निषेध।

टिप्पणी—(१) 'पतङ्गायितोऽसि' में लुप्तोपमा अलङ्कार है।

(२) मदसिभुजङ्गिन्या = 'मेरी तलवाररूपी सर्पिणी मे' यहाँ तलवार में ी का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्योऽयं गौरसिंहः इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेक विकटखड्गमाकृष्य त्सरौ गृहीत्वा कन्यकां रक्षन् तदध्युषितकुटीर निकट एव तस्थौ।

गौरसिंहस्तु "कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवनवधव्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, नाम किं स्प्रष्टुम् ? तद्यावत्तव कवोष्णशोणित तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत् कूर्दनं वा उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद्विधेहि" इत्युक्त्वा व्यालीढमर्य्यादया सज्जः समतिष्ठत।

हिन्दी अनुवाद—इस कोलाहल को सुनकर, श्यामबटु भी कन्या के समीप से उठकर और देखकर, दुष्ट यवन युवक को मारने के लिये गौरसिंह अकेला पर्याप्त है, यह समझकर, कन्या का अपहरण करने के लिये अन्य कोई (यवन) न आ जाय, इसलिये छज्जे से एक भयंकर तलवार खींचकर उसकी मूठ पकड़कर कन्या की रक्षा करता हुआ—कन्या जिसमें स्थित थी उसी कुटी के निकट खड़ा हो गया।

गौरसिंह ने "कुटी के अन्दर कन्या है, और वह यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीते जी छूने को कौन कहे ? उसे कोई देख नहीं सकता। जब तक तुम्हारे कुछ-कुछ गरम खून की प्यासी यह तलवार नहीं चलती है, तब तक ही तुम जो कुछ भी उछल-कूद करना चाहते हो, वह कर लो" यह कहकर पेंतरा बनाकर तैयार हो गया।

संस्कृत-व्याख्या—एतत् = इदम्, कलकलम् = कोलाहलम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, श्यामबटुः = द्वितीय ब्रह्मचारी, अपि, कन्यासमीपात् = बालिकान्तिकात्, उत्थाय, दृष्ट्वा = अवलोक्य, च, हन्तुं = मारयितुम्, एतम् = इमम्, यवनवराकम् = क्षुद्रयवनम्, पर्याप्तः = अलम्, अयम्, गौरसिंहः, इति = एतद्विचार्य, अन्योपि = इतरोऽपि, कश्चित् = कोऽपि, कन्यकाम् = बालिकाम्, अपजिहीर्षुः = अपहरण

कर्तुमिच्छुः, इति = एतस्मात्, वलीकात् = पटलप्रान्तात्, एकम् = केवलम्, विकट खड्गम् = भयंकर कृपाणम्, आकृष्य = निष्काष्य, त्सरौ = मुष्टौ, गृहीत्वा = संगृह्य, कन्यकाम् = वालिकाम्, रक्षन् = रक्ष्यमाणः, तदध्युषितस्य = कन्यया सेवितस्य, कुटीरस्य, निकटे = उटजस्य समीपे, एव, तस्थौ = स्थितः ।

गौरसिंहस्तु = एतन्नामकः ब्रह्मचारीतु, कुटीरांतः = कुटीरमध्ये, कन्यकाऽस्ति = वालिकाऽस्ति, सा = वालिका, च, यवनवधव्यसनिनि = म्लेच्छवधव्यसनिनि, मयि = गौरसिंहे, जीवति = जीविते सति, द्रष्टुमपि = अवलोकयितुमपि न शक्या = न क्षमा, किं नाम, स्प्रष्टुम् = स्पर्शकर्त्तुम् ? तद् = तस्मात्, यावत् = याव-कालम्, कवोष्ण शोणिते तृषितः = कोष्णरक्त पिपासितः, एषः - अयम् चन्द्रहासः = कृपाणः, न चलति = न स्फुरति, तावत् = तावत्कालं यावत्, कूर्दनम् = उच्च-लनम्, वा = अथवा, उत्फालम् = उत्प्लवनम्, वा, यत् चिकीर्षसि = कर्त्तुमिच्छसि, तद्विधेहि = तत्कुरु, इत्युक्त्वा = एवं कथयित्वा, व्यालीढमर्य्यादया = युद्धावस्थान विशेषमर्यादयां, सज्जः = उद्यतः समतिष्ठत = स्थितवान् ।

हिन्दी-व्याख्या – **कलकलम्** = कोलाहल को । **कन्यासमीपात्** कन्या के समीप से । **उत्थाय** - उठ कर । **हन्तुम्** = मारने के लिये । **यवनवराकम्** = छुद्र यवन को । **पर्याप्तः** = पूर्ण समर्थ है । **मास्मंगमत्** = न पहुँच जाय, 'स्म' के योग में लङ् लकार तथा 'मा' के योग में 'अट्' का निषेध । **अपजिहीर्षुः** = अपहरण करने की इच्छा वाला, 'अप + √हृ + सन् + उ' । **वलीकात्** = छप्पर की ओर से । **विकटखड्गम्** = भयंकर तलवार को । **त्सरौ** = तलवार की मूँठ को । **गृहीत्वा** = पकड़कर । **रक्षन्** = रक्षा करता हुआ, '√रक्ष + शतृ' । **तदध्युषित-कुटीरनिकटे** = उस (कन्या) से युक्त कुटीर के निकट, 'तया अध्युषितस्य कुटीरस्य निकटे' (तत्पु०); अध्युषित = 'अधि + √वस् (व = उ सम्प्रसारण) + क्त', कुटीर = कुटी । **तस्थौ** = स्थित हो गया, '√स्था + लिट्' ।

कुटीरान्तः = कुटी के मध्य में । **यवनवधव्यसनिनि** = यवनों के वध के व्यसनी ('मयि' का विशेषण), यवनानां वधः एव व्यसनम् यस्य सः तस्मिन् । **जीवति** = जीवित रहने पर । **न शक्या** = सम्भव नहीं है, '√शक् + यत् + टाप् (स्त्री०) । **द्रष्टुम्** = देखने के लिये । **किं नाम स्प्रष्टुम्** = छूने की क्या बात ? अर्थात् किसी के छूने का प्रश्न ही नहीं उठता । **कवोष्णशोणिततृषितः** = कुछ-

कुछ गरम खून की प्यासी, 'कवोष्णस्य शोणितस्य तृषितः (तत्पु०)', कवोष्ण = ईषद् उष्ण, 'ईषद् उष्णम् कवोष्णम्' (अव्ययी०), इसके विकल्प में कोष्ण, तथा कदुष्ण रूप भी बनते हैं—"कोष्णं कवोष्णम् मन्दोष्णम् कदुष्णं त्रिषुतद्वति" (अमरकोष), तृषित = प्यासी, शोणित = खून । चन्द्रहासः = तलवार—"खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासि रिष्टयः" (अमरकोष) । कूर्दनम् = कूदना । उत्फालम् = उछलना । चिकीर्षसि = करना चाहते हो, '√कृ + सन् + लट् (सिप्)' । विधेहि = करो । व्यालीढमर्यादया = युद्धावस्थान के विशेष ढङ्ग से (पैंतरे आदि के साथ), व्यालीढस्य मर्यादा तया' । सज्जः = तैयार । समतिष्ठत: = स्थित हो गया, 'सम् + स्था + ल० (तिप्)' ।

टिप्पणी—गौरसिंह और श्यामबटु दोनों के शौर्य और विवेक का दिग्दर्शन कराया गया है ।

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान कृपाणमार्गानङ्गीनकृतवतः, दिनकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः, यवनयुवकहतकस्य, केनाप्यनुर्लक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलितक्लेबसंजातस्वेदजलजालं विशिथिलकचकुलमालं भग्न-भ्रूभयानक भालं शिरश्चिच्छेद ।

हिन्दी अनुवाद—तब गौरसिंह ने दाँये-बाँये सैकड़ों कृपाण मार्ग को अङ्गीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये गये चाकचिक्य वाले, चलती हुई तलवार के चमत्कार से चौंधियाई हुई आँखों वाले उस दुष्ट यवन युवक के, श्रमजनित स्वेद कण से व्याप्त, अस्त-व्यस्त बालों वाले तथा विच्छिन्न भौहों से भयानक भाल वाले शिर को अपनी तलवार से एकाएक (इस प्रकार) काट डाला कि उसका उद्योग किसी के द्वारा देखा नहीं जा सका ।

संस्कृत-व्याख्या—ततः = तदनन्तरम् गौरसिंहः = गौरबटुः, दक्षिणान् = सव्यान्, वामान् = अपसव्यान्, परश्शतान् = शताधिकान्, कृपाणमार्गान् = कृपाण युद्धपथान्, अङ्गीकृतवतः = स्वीकृतस्य, दिनकर करस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः = सूर्यकिरणस्पर्शसंवर्द्धित प्रतिभासविशेषैः, चञ्चच्चन्द्रहास चमत्कारैः =

सञ्चरत् कृपाणचमत्कारैः, चक्षूंषि = नेत्रान्, मुष्णतः = चारयतः, यवनयुव हतकस्य = दुष्टम्लेच्छयुवकस्य, केनापि, अनुपलक्षितोद्योगः - अदृष्टप्रयत्न अकस्मादेव = सहसैव, स्वासिना = स्वकृपाणेन, कलितक्लेद संजातस्वेदजलजाल = व्याप्तश्रमजनितस्वेदजलसमूहम्, विशिथिलकचकुल मालम् = शिथिल समूहराजिम्, भग्नभ्रूभयानकभालम् = विच्छिन्न भ्रूभीषणललाटम्, शिरः = मुण्डम्, चिच्छेद = अच्छिदत् ।

हिन्दी-व्याख्या — **दक्षिणान्** = दायें । **वामान्** = बांये । **परश्शतान्** = सैंकड़ों । **कृपाणमार्गान्** = तलवार चलाने के मार्ग (गतिविधियों को) या 'पैंतरों' को; (इसके पूर्व के तीनों द्वितीयान्त पद इसी के विशेषण हैं ।) **अङ्गीकृतवतः** = अङ्गीकार करने वाले (यवन युवक का विशेषण), इस प्रकार पूरे का आशय हुआ— 'दाहिने-बाँये, सैकड़ों पैंतरे बदलने वाले (यवन युवक के) । **दिनकर......चाकचक्यैः** = सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुना कर दिया गया है चाकचक्य जिसका (चमत्कार का विशेषण है) । चलती हुई स्वच्छ तलवार पर सूर्य की किरणों के पड़ने से उसका चाकचक्य (प्रतिभास या निकलने वाली किरणें) और अधिक बढ़ गया है । दिनकरस्य कराणाम् स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतम् चाकचक्यम् यैस्तैः (बहुव्रीहि); चतुर्गुणीकृतम् = चौगुना कर दिया गया है । **चाकचक्यम्** = प्रतिभास । **चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैः** = चलती हुई तलवार के चमत्कार से, चञ्चत् = संचरणशील, चन्द्रहास = तलवार । **चक्षूंषि** = नेत्रों को । **मुष्णतः** = चौंधियाने वाले (देखने की शक्ति जिसकी नहीं रह गई है, (यवनयुवक का विशेषण है) । **यवनयुवकहतकस्य** = दुष्ट यवनयुवक के, हतक = दुष्ट । **अनुपलक्षितोद्योगः** = जिसका परिश्रम (उद्योग) नहीं देखा गया, 'अनुपलक्षितः उद्योग यस्य सः (बहुव्रीहि) । **स्वासिना** = अपनी तलवार से । **कलितक्लेद संजातस्वेदजलजालम्** = परिश्रम के कारण उत्पन्न पसीने की बूंदों से व्याप्त (शिर का विशेषण है), 'कलितेन क्लेदेन संजातस्य स्वेदजलस्य जालः यस्मिन्, तत् (बहुव्रीहि); कलित = व्याप्त, क्लेद = श्रम । **विशिथिल कचकुलमालम्** = बिखरे हुए बालों वाले, विशिथिल = अस्तव्यस्त, कच = बाल, कुल = समूह, माला = पंक्ति 'विशिथिला कचानां कुलस्य माला यस्मिंतत्' (बहुव्रीहि), (शिर का विशेषण है) । **भग्नभ्रूभयानकभालम्** = विच्छिन्न भौंहों से भयानक भाल वाले अर्थात्

भग्न या टेढ़ी-मेढ़ीं भौंहों के कारण ललाट भयानक हो गया है। विच्छेद =काट दिया।

टिप्पणी—(१) लेखक समास शैली की ओर उन्मुख है।

(२) अनुप्रास की छटा तथा चित्रात्मकता द्रष्टव्य है।

अथ मुनिरपि दाडिम कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढरुधिर दिग्धायां ज्वलदङ्गारचितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमानभारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरं शोणितसङ्घातव्याजेनान्तःस्थितरजोराशिमिवोदगिरन्तं कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमं सततताम्रचूडभक्षणपातकेनेव ताम्रीकृत छिन्नक धरं यवनहतकमवलोक्य सहर्षं साधुवाद सरोमाञ्चमञ्च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राज्ञप्तेन भृत्येन मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषादिकमन्विष्यानीतम् पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।

इति प्रथमो निश्वासः।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद अनार के फूलों के आस्तरण (विस्तार) से युक्त हुई सी, गाढे खून से लिप्त तथा जलते अंगारों वाली चिता के समान पृथ्वी में सोने वाले (पड़े हुए), वियुक्त होती हुई भारतभूमि का आलिङ्गन करते हुए से, निर्जीव होने वाले अङ्ग बन्धों को हिलाते हुए, रक्तराशि के व्याज से अन्तःस्थित रजोगुण की राशि को उगलते हुए से, सायंकालिक मेघाडम्बर के विभ्रम को धारण किये हुए मानो मुर्गा खाने के पाप से लाल हुए और कटे हुए शिर वाले दुष्ट यवन को मुनि ने देखकर, हर्षपूर्वक (गौरसिंह को) साधुवाद देते हुए, रोमाञ्च से युक्त होकर (मुनि ने) गौरसिंह को आलिङ्गन करके, भ्रूभङ्ग से ही आदिष्ट भृत्य के द्वारा मृतक के कुर्त्ते (चोगा), कटिबन्ध (कमरबन्द) तथा पगड़ी का अन्वेषण करके लाये गये एक पत्र को लेकर, (अपने) गणों के सहित अपनी कुटी में प्रवेश किया।

संस्कृत-व्याख्या—अथ=तदनन्तरम्, मुनिरपि=ब्रह्मचारिगुरुरपि, दाडिम-

कुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = करकपुष्पावष्टर युक्तायाम्, इव, गाढरुधिरदिग्धायाम् = गाढरक्तप्रसिक्तायाम्, ज्वलदङ्गारचितायाम् = प्रज्वलत्स्फुलिङ्गव्याप्तायां चितायाम् = चितौ, इव, वसुधायाम् पृथिव्याम्, शयानम् = लुण्ठन्, वियुज्यमान भारतभुवमालिङ्गन्तम् = वियुज्यमानभारतवसुन्धरम् संश्लिष्टम्, इव निर्जीभवदङ्गबन्धचालनपरम् = निष्प्राणीभवत् सन्धिबन्धस्फुरणनिरतम्, शोणितसङ्घातव्याजेन = रुधिरप्रवाहच्छलेन, अन्तःस्थितरजोराशिमिव = अन्तःस्थितरजोगुणसमूहमिव, उद्गिरन्तम् – वमन्तम्, कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमम् = धारित सायंकालिकमेघ विडम्बनविलासम्, सततताम्रचूडभक्षणपातकेनेव = निरन्तरकुक्कुटाशनपापेनेव, ताम्रीकृतम् - रक्तीकृतम् छिन्नकन्धरम् कृत्तग्रीवम्, यवनहतकम्, अवलोक्य = अवलोक्य = दृष्ट्वा, सहर्षम् = सानन्दम्, ससाधुवादम् = प्रशंसन्, सरोमोद्गभञ्च = सरोमाञ्चतम्, गौरसिंहम् तद्ब्रह्मचारिणम्, आश्लिष्य = समालिङ्गय, भ्रूभङ्गमात्राज्ञप्तेन = अक्षिनिकोचसंकेतितेन, मृतककटिबन्धोष्णादिकम् = यवनयुवककञ्चुकजघनपट्टिकोष्णीषादिकम्, अन्विष्य अन्वेषणम् कृत्वा, आनीतम् = प्रस्तुतम्, एकं पत्रम् = लेखनमेकम्, आदाय गृहीत्वा, सगणः = सपरिवारः, स्वकुटीरम् = स्वोटजम्, प्रविवेश - प्रवेशयामास ।

हिन्दी-व्याख्या—**दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायाम्** - अनार के फूलों के आस्तरण (बिछौने) से युक्त (पृथिवी का विशेषण), दाडिम = अनार, आस्तरण = बिछौना, "दाडिमस्य कुसुमानाम् आस्तरणं तेनाच्छन्नायाम् (तत्पु०)।" **आच्छन्न** = आवृत्त, आ - √छद् + क्त (युक्त) । **गाढरुधिरदिग्धायाम्** - गाढ़े खून से सनी हुई (पृथ्वी का विशेषण), दिग्ध = लिप्त । गाढेनरुधिरेण लिप्तायाम् (तत्पु०)। **ज्वलदङ्गारचितायाम्** = जलते हुए अङ्गारों से व्याप्त, ज्वलत् = जलते हुए, अङ्गार = स्फुलिङ्ग, चित = व्याप्त । "ज्वलन्तः आङ्गारास्तैः चितायाम्" **चितायाम्** चिता में, "चिताचित्याचितिः स्त्रियाम्" (अमरकोष । **शयानम्** = सोते हुये, √शोङ् + शानच्, । **वियुज्यमानभारतभुवम्** = अलग होती हुई भारत वसुन्धरा को, वियुज्यमाना चासौ भारतस्य भूः ताम्," 'वि + √युज् + √शानच्' (अलग होती हुई) । **आलिङ्गन्तम्** = आलिङ्गन करते हुए (यवन युवक का विशेषण) । **निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरम्** = निर्जीव हो रहे सन्धिबन्धों को

हिलाते हुए (यवनयुवक का विशेषण), निर्जीवीभवत् = निर्जीव होने वाले, 'निर् + जीव + च्वि + भू'। अङ्गबन्ध = अङ्गों के जोड़ चालनपरम् = चलाने में लगे हुए। "निर्जीवीभवन्तः अङ्गबन्धास्तेषां चालने परः तम्"। शोणित-सङ्घातव्याजेन = रक्तराशि के व्याज (बहाने) से, 'शोणितस्य सङ्घातः तस्य व्याजः तेन'। अन्तःस्थितरजोराशिम् = अन्तःकरण में स्थित रजोगुण के समूह को। उद्गिरन्तम् = उगलते हुए, "उद् + गिर् + शतृ"। कलितसायन्तन-घनाडम्बरविभ्रमम् = सायंकालिक मेघ के विभ्रम को धारण करने वाले। कलित = धारण किये हुए, सायन्तन = सायंकालीन, घनाडम्बर = मेघों की विडम्वना, विभ्रम = विलास। "कलितः सायन्तनस्य घनाडम्वरस्य विभ्रमः येन सः तम्" (वहुव्रीहि)। सायन्तन = 'साये भवः' इस व्युत्पत्ति में 'सायञ्चिरम्— सूत्र 'तुट' 'ट्यु' और मान्त होकर—"सायम् = तुट (त्) + ट्यु (अन्) 'सायन्तन' वनता है। ताम्रचूडभक्षणपातकेन = मुर्गा खाने के पाप से, ताम्रचूड = मुर्गा—"कृकवाकस्तु ताम्रचूडः कुक्कुटचरणायुधः" (अमरकोष)।" ताम्र-चूडस्य भक्षणेन पातङ्कस्तेन" (तत्पु०) ताम्रीकृतम् = लाल हो गये 'ताम्र। क्वि + कृतम्। छिन्नकन्धरम् = कटे हुए शिर वाले। ससाधुवादम् = प्रशंसा करते हुये। सरोमोद्गमञ्च = रोमाञ्चित होते हुये। आश्लिष्य = आलिङ्गन करके, 'आ + √श्लिष् + ल्यप्'। भ्रूभङ्गमात्राज्ञप्तेन = भृकुटी के संकेतमात्र से आदिष्ट हुए। भृत्येन = सेवक के द्वारा। मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषादिकम् = मृतक के कुर्त्ते, कटिवन्ध (कमरवन्द) तथा पगड़ी आदि को (अन्विष्य = ढूंढ़कर (तलाशी लेकर) आनीतम् = लाये गये। आदाय = लेकर। सगणः = सपरिवार। स्वकुटीरम् = अपनी कुटी में। प्रविवेश = प्रवेश किया।

प्रथम निश्वास समाप्त

अथ द्वितीयो निश्वासः

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त ! हन्त !! नलिनीं गज उज्जहार ॥ (स्फुटकम्)

हिन्दी-अनुवाद—"रात्रि जायगी, सबेरा होगा, सूर्य उदित होगा और कमल खिलेगा" कमल कलिका के अन्दर बन्द हुआ भ्रमर इस प्रकार सोच ही रहा था—दुःख है, कि उसी समय कमल को हाथी ने उखाड़ दिया ।

संस्कृत-व्याख्या—कमलकोश सम्पुटितो भ्रमरश्चिन्तयति,—"यद्धि निशा यास्यति, प्रातर्भविष्यति, सूर्योदयो भविष्यति, तदा कमलविकासकालेऽहम् बहिर्भविष्यामीति"—हा कष्टम ! भ्रमरे इत्थं चिन्तयति एव एको हस्तिः आगत्य तत्कमलमुत्पाटयामास ।

हिन्दी-व्याख्या—उदेष्यति = उदित होगा । पङ्कजश्रीः = कमल की शोभा, पङ्कात् जातः पङ्कजः तस्य श्रीः, 'पङ्कज' शब्द योगरूढ़ शब्द है । इत्थम् = इस प्रकार । द्विरेफे = भ्रमर के, कुछ आचार्यों के अनुसार 'द्विरेफ' पद लाक्षणिक है । 'द्वौ रेफौ यस्मिन्निति द्विरेफः—अर्थात् दो 'रकार' वाले पद को द्विरेफ कहते हैं—इस प्रकार द्विरेफ से भ्रमर का बोध होता है और भ्रमर से 'भौंरा' का अर्थबोध होता है । कुछ आचार्य द्विरेफ को योगरूढ़ पद मानते हैं और यह सीधे ही भ्रमर का अर्थबोध कराता है, जैसा कि कोश का निर्देश है—"द्विरेफ पुष्प लिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' । उज्जहार = उखाड़ दिया, 'उद् + √हृ + लिट् (तिप्)' ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद स्फुटक है । इसके भाव में द्वितीय निःश्वास की कथा प्रतिबिम्बित होती है । अतएव व्यास जी ने इसको यहाँ पर उद्धृत किया है । इस पद को वस्तु निर्देशात्मक मंगलपरक भी माना जा सकता है—'ग्रन्थादौ, ग्रन्थमध्ये, ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्' इस सिद्धान्त के अनुसार ।

इतस्तु स्वतन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-निजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाः, निर्झरवारिधारा-पूरपूरित-प्रवल-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्तप्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्यपयोनिधि चुम्बन-चञ्चुरायाः, रिङ्गत-तरङ्ग-भङ्गोद्भूतावर्त्त-शत-भीमायाः, भीमायाः नद्याः, अनवरत-निपतद्-बकुल-कुल-कुसुमकदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः कटू कुर्वन्; हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीनवर्गः,—पटकुटीरकूट-विहित-शारदाम्भोधर-विडम्बनः, निरपराध-भारताऽभिजन जनपीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमान-नीलध्वजै-रुपलक्षितः, विजयपुरेश्वरस्यान्यतमः सेनानीः अपजलखानः प्रतापदुर्गादविदूर एव शिववीरेण सहाऽऽहवद्यूतेन चिक्रीडिषुः ससेनस्तिष्ठति स्म ।

हिन्दी अनुवाद—इधर तो यवनकुल से शासित विजयपुर नरेश के द्वारा प्रेषित, पूना नगर के समीप ही बड़े-बड़े पर्वतखण्डों को प्रक्षालित करने वाली, झरनों की जलधाराओं से पूर्ण प्रवल-प्रवाह वाली, पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती पर्वत श्रेणियों की गुफाओं के मध्य से निकली हुई भी पूर्वी समुद्र को चूमने के लिये उतावली (ऊँची-ऊँची) उठने वाली लहरों के भङ्ग से (उत्पन्न) सैकड़ों भँवरों (आवर्तों) से भीषण 'भीमा' (नामक) नदी के—अनवरत गिरने वाले बकुलों के पुष्प समूह से सुगन्धित जल को भी जलक्रीड़ा करने वाले मद से मतवाले हाथियों की मद-धारा से कटु बनाता हुआ; घोड़ों के हिनहिनाहट की ध्वनि की प्रतिध्वनि से दो कोस के मध्य के यात्रियों को बहरा कर देने वाला, वस्त्रकुटीर समूह (कपड़े के तम्बू) से शरद के बादलों को विडम्बित करने वाला, निरपराध भारतीय जनता के उत्पीड़न से उत्पन्न पाप समूह के समान फहराने वाली नीली पताकाओं से पहचाना जाने वाला, बीजापुर नरेश का अन्यतम सेनानी अफ़जल खाँ शिववीर के साथ युद्धरूपी जुआ खेलने की इच्छा से प्रताप दुर्ग के निकट ही सेना सहित रुका हुआ था ।

संस्कृत-व्याख्या—इतस्तु = द्वितीयतस्तु, स्वतन्त्रम् = स्वच्छन्दम्, यद् यवन-

कुलं=म्लेच्छ कुलम्, तेन, भुज्यमानस्य=शास्यमानस्य, विजयपुरस्य=यन्नामकनगरस्य, अधीश्वरेण=स्वामिना, प्रेषितः=प्रहितः, पुण्यनगरस्य=पूनानगरस्य, समीपे एव=निकटे एव, प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलायाः=धौत गिरिच्युत स्थूलशिला मण्डलायाः, निर्झराणाम्=स्रोतसाम्, वारिधारापूरैः=जलधारासमूहैः, पूरितः=भरितः, प्रबलः=वेगवान्, प्रवाहः=प्रवहणम्, यस्यास्तस्याः, पश्चिमपारावारः=पश्चिमसमुद्रः, तस्य, प्रान्ते=निकटे, यः गिरीणां=पर्वतानाम्, ग्रामः=समूहः, तस्य, गुहानां=गह्वराणाम्, गर्भतः=मध्यतः, निर्गतायाः=समुत्पन्नायाः, अपि, प्राच्य पयोनिधेः=प्राच्य समुद्रस्य, चुम्बने=संश्लेषणे, चञ्चुरायाः=चञ्चलायाः, रिङ्गताम्=चलताम्, तरङ्गाणाम्=ऊर्मीणाम्, भङ्गैः=छेदैः, उद्भूताः=सञ्जाताः, ये आवर्तशताः=विभ्रमशताः, तैः भीमायाः=भीषणायाः, भीमायाः—'भीमा' इति नाम्न्याः, नद्याः=सरितः, अनवरतम्=निरन्तरम्, निपतताम्=प्रच्यवताम्, बकुलकुलकुसुमानाम्=वञ्जुलकुल पुष्पाणाम्, कदम्बेन=समूहेन, सुरभीकृतम्=सुगन्धायितम्, अपि, नीरम्=जलम्, वगाह्यमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः=निमज्जन्मत्तकरिदानवारिधाराभिः, कटूकुर्वन्=तिक्तीकुर्वन्, हयनाम्=अश्वानाम्, हेषाध्वनिः='हिन-हिने'ति रवस्तस्य, प्रतिध्वनिः=प्रतिनिःस्वनस्तेन, बधिरीकृतः=श्रुतिशक्तिविकलीकृतः, गव्यूतिमध्यगः=गव्यूत्यन्तर्वर्त्ती, अध्वनीनवर्गः=पथिकसमूहः, येन सः, पटकुटीरकूटैः=उपकारिकासमूहैः, विहिता=सम्पादिता, शारदाम्भोधराणाम्=शरन्मेघानाम् विडम्बना=अनुकृतिः, येन सः, निरपराधभारताऽभिजनजनपीडनपातकपटलैः=निर्दोषभारतीयजनोत्पीडनपापराशिभिः इव, समुद्धूयमाननीलध्वजैः=प्रकम्पमाननीलपताकाभिः, विजयपुरेश्वरस्य='बीजापुरनरेशस्य,' अन्यतमः=एतेष्वेकः, सेनानीः=चमूपतिः, अपजलखानः='अफजलखाँ' नामकः, प्रतापदुर्गात्=सिंहदुर्गात्, अविदूरे एव=निकटे एव, शिववीरेण सह, आहवद्यूतेन=युद्धदुरोदरेण, विक्रीडिषुः=कर्तुमिच्छुः, ससैन्यः=सेनायुक्तः, तिष्ठति स्म=अतिष्ठत्।

हिन्दी व्याख्या—स्वैरव्यवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः=स्वेच्छाचारी यवनकुल के द्वारा शासित विजयपुर नरेश के द्वारा प्रेषित (अफजलखाँ का विशेषण)। स्वतन्त्रम् यत् यवनकुलम् तेन भुज्यमानस्य विजयपुरस्य अधीशेन प्रेषितः (तत्पु॰), भुज्यमान—√भुज्+शानच्=भोग किया जाता हुआ

पुण्यनगरस्य=पूनानगर के। प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलाया:=पर्वत से टूटकर गिरे हुए शिलाखण्डों को प्रक्षालित करने वाली (नदी का विशेषण), प्रक्षालित=धोये गये, गण्डशैल पर्वत से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर। 'प्रक्षालितानि गण्डशैलानाम् मण्डलानि यया तस्याः (बहुव्रीहि)'। निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहायाः =झरनों की जलधारा समूह से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली (नदी का विशेषण)। निर्झराणाम् वारिधारापूरैः पूरितः प्रबलः प्रवाहः यस्यास्तयाः (बहुव्रीहि)। पश्चिमपारावारप्रान्तगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गतायाः=पश्चिमी समुद्र के किनारे की पर्वत श्रेणियों की गुफाओं के मध्य से निकलने वाली (नदी का विशेषण), पारावार=समुद्र, प्रान्त=तट पर, ग्राम=समूह, गुहा=गुफा, गर्भ=मध्य, निर्गता=निकली हुई। पश्चिमश्चासौ पारावारः तस्य प्रान्ते गिरीणां ग्रामस्तस्य गुहाः तासां गर्भतः निर्गतायाः (तत्पु०)। प्राच्यपयोनिधिचुम्बनचञ्चुरायाः= पूर्वी समुद्र के चुम्बन के लिये उतावली। 'प्राच्यः पयोनिधिस्तस्य चुम्बने चञ्चुरायाः' (तत्पु०); प्राच्यः=प्राच्यां भवः प्राच्यः (पूर्व में स्थित), पयोनिधि= समुद्र, पयसाम् निधिः पयोनिधिः। चञ्चुरा=चञ्चल (उतावली)। रिङ्गत्तरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशतभीमायाः=चञ्चल तरङ्गों के भङ्ग से उत्पन्न सैंकड़ों आवर्तों (भँवरों) के कारण भयानक (नदी का विशेषण), रिङ्गत्=सञ्चरणशील, तरङ्ग=लहर, भङ्ग=टूटने से, उद्भूत=उत्पन्न, आवर्त=भँवर, शत=सैंकड़ों, भीमा=भयानक। 'रिङ्गताम् तरङ्गाणाम् भङ्गैः उद्भूताः आवर्तानां शतास्तैः भीमायाः' (तत्पु०)। 'अनवरत' 'सुरभीकृतम्'=निरन्तर गिरने वाले बकुल पुष्प समूह से सुगन्धित, अनवरतं निपतताम् बकुल कुलस्य कुसुमानां कदम्बेन सुरभीकृतम् (तत्पु०)। वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः= जलक्रीड़ा (स्नान) करने वाले मतवाले हाथियों की मदधारा से, वगाहमान= जलक्रीडा करने वाले, 'अव+√गाह् (विलोडने)+शानच्' 'अव' के 'अ' का विकल्प से लोप हो जाता है—"वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः"। मतङ्गज=हाथी। मद=हाथी से बहने वाला जल। "वगाहमानानाम् मत्तमतङ्गजानां मदधाराभिः (तत्पु०)। कटूकुर्वन्=कटु बनाता हुआ। "हयहेषा.... वर्गः'=घोड़ों की हिनहिनाहट की ध्वनि की प्रतिध्वनि से बहरा कर दिया गया है दो कोस के मध्य के यात्रियों का वर्ग जिसके द्वारा (अश्वसेना का विशेषण)

कुलं = म्लेच्छ कुलम्, तेन, भुज्यमानस्य = शास्यमानस्य, विजयपुरस्य = यन्नामक-नगरस्य, अधीश्वरेण = स्वामिना, प्रेषितः = प्रहितः, पुण्यनगरस्य = पूनानगरस्य, समीपे एव = निकटे एव, प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलायाः = धौत गिरिच्युत स्थूल-शिला मण्डलायाः, निर्झराणाम् = स्रोतसाम्, वारिधारापूरैः = जलधारासमूहैः, पूरितः = भरितः, प्रबलः = वेगवान्, प्रवाहः = प्रवहणम्, यस्यास्तस्याः, पश्चिम-पारावारः = पश्चिमसमुद्रः, तस्य, प्रान्ते = निकटे, यः गिरीणां = पर्वतानाम्, ग्रामः = समूहः, तस्य, गुहानां = गह्वराणाम्, गर्भतः = मध्यतः, निर्गतायाः = समुत्पन्नायाः, अपि, प्राच्य पयोनिधेः = प्राच्य समुद्रस्य, चुम्बने = संश्लेषणे, चञ्चुरायाः = चञ्चलायाः, रिङ्गताम् = चलताम्, तरङ्गाणाम् = ऊर्मीणाम्, भङ्गैः = छेदैः, उद्भूताः = सञ्जाताः, ये आवर्तशताः = विभ्रमशताः, तैः भीमायाः = भीषणायाः, भीमायाः—'भीमा' इति नाम्न्याः, नद्याः = सरितः, अनवरतम् = निरन्तरम्, निपतताम् = प्रच्यवताम्, बकुलकुलकुसुमानाम् = वञ्जुलकुल पुष्पाणाम्, कदम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम् = सुगन्धायितम्, अपि, नीरम् = जलम्, वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः = निमज्जन्मत्तकरिदानवारिधाराभिः, कटूकुर्वन् = तिक्तीकुर्वन्, हयनाम् = अश्वानाम्, हेषाध्वनिः = 'हिन-हिने'ति रव-स्तस्य, प्रतिध्वनिः = प्रतिनिःस्वनस्तेन, बधिरीकृतः = श्रुतिशक्तिविकलीकृतः, गव्यूतिमध्यगः = गव्यूत्यन्तर्वर्ती, अध्वनीनवर्गः = पथिकसमूहः, येन सः, पट-कुटीरकूटैः = उपकारिकासमूहैः, विहिता = सम्पादिता, शारदाम्भोधराणाम् = शरन्मेघानाम् विडम्बना = अनुकृतिः, येन सः, निरपराधभारताऽभिजनजनपीडन-पातकपटलैः = निर्दोषभारतीयजनोत्पीडनपापराशिभिः इव, समुद्धूयमाननीलध्वजैः = प्रकम्पमाननीलपताकाभिः, विजयपुरेश्वरस्य = 'बीजापुरनरेशस्य,' अन्यतमः = अनेकेष्वेकः, सेनानीः = चमूपतिः, अपजलखानः = 'अफजलखाँ' नामकः, प्रताप-दुर्गात् = सिंहदुर्गात्, अविदूरे एव = निकटे एव, शिववीरेण सह, आहवद्यूतेन = युद्धदुरोदरेण, चिक्रीडिषुः = कर्तुमिच्छुः, ससेनः = सेनायुक्तः, तिष्ठति स्म = अतिष्ठत्।

हिन्दी व्याख्या—स्वतन्त्रयवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः = स्वेच्छा-चारी यवनकुल के द्वारा शासित विजयपुर नरेश के द्वारा प्रेषित (अफजलखाँ का विशेषण)। स्वतन्त्रम् यत् यवनकुलम् तेन भुज्यमानस्य विजयपुरस्य अधीशेन प्रेषितः (तत्पु०), भुज्यमान—√भुज् + शानच् = भोग किया जाता हुआ

पुण्यनगरस्य=पूनानगर के। प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलाया:=पर्वत से टूटकर गिरे हुए शिलाखण्डों को प्रक्षालित करने वाली (नदी का विशेषण), प्रक्षालित=धोये गये, गण्डशैल पर्वत से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर। 'प्रक्षालितानि गण्डशैलानाम् मण्डलानि यया तस्याः (बहुव्रीहि)'। निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहतया:=झरनों की जलधारा समूह से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली (नदी का विशेषण)। निर्झराणाम् वारिधारापूरैः पूरितः प्रबलः प्रवाहः यस्यास्तयाः (बहुव्रीहि)। पश्चिमपारावारप्रान्तगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गताया:=पश्चिमी समुद्र के किनारे की पर्वत श्रेणियों की गुफाओं के मध्य से निकलने वाली (नदी का विशेषण), पारावार=समुद्र, प्रान्त=तट पर, ग्राम=समूह, गुहा=गुफा, गर्भ=मध्य, निर्गता=निकली हुई। पश्चिमश्चासौ पारावारः तस्य प्रान्ते गिरीणां ग्रामस्तस्य गुहाः तासां गर्भतः निर्गतायाः (तत्पु०)। प्राच्यपयोनिधिचुम्बनचञ्चुराया:=पूर्वी समुद्र के चुम्बन के लिये उतावली। 'प्राच्यः पयोनिधिस्तस्य चुम्बने चञ्चुरायाः' (तत्पु०); प्राच्य:=प्राच्यां भवः प्राच्यः (पूर्व में स्थित), पयोनिधि=समुद्र, पयसाम् निधिः पयोनिधिः। चञ्चुरा=चञ्चल (उतावली)। रिङ्गत्तरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशतभीमाया:=चञ्चल तरङ्गों के भङ्ग से उत्पन्न सैकड़ों आवर्तों (भँवरों) के कारण भयानक (नदी का विशेषण), रिङ्गत्=सञ्चरणशील, तरङ्ग=लहर, भङ्ग=टूटने से, उद्भूत=उत्पन्न, आवर्त=भँवर, शत=सैकड़ों, भीमा=भयानक। 'रिङ्गताम् तरङ्गाणाम् भङ्गैः उद्भूताः आवर्तानां शतास्तैः भीमायाः' (तत्पु०)। 'अनवरत सुरभीकृतम्'=निरन्तर गिरने वाले बकुल पुष्प समूह से सुगन्धित, अनवरतं निपतताम् बकुल कुलस्य कुसुमानां कदम्बेन सुरभीकृतम् (तत्पु०)। वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः=जलक्रीड़ा (स्नान) करने वाले मतवाले हाथियों की मदधारा से, वगाहमान=जलक्रीडा करने वाले, 'अव+√गाह् (विलोडने)+शानच्' 'अव' के 'अ' का विकल्प से लोप हो जाता है—"वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः"। मतङ्गज=हाथी। मद=हाथी से बहने वाला जल। "वगाहमानानाम् मत्तमतङ्गजानां मदधाराभिः (तत्पु०)। कटूकुर्वन्=कटु बनाता हुआ। "हयहेषा...... वर्गः'=घोड़ों की हिनहिनाहट की ध्वनि की प्रतिध्वनि से बहरा कर दिया गया है दो कोस के मध्य के यात्रियों का वर्ग जिसके द्वारा (जलप्रवाह का विशेषण)

हेषा=घोड़े की हिनहिनाहट (ध्वनि), प्रतिध्वनि=ध्वनि के कारण उठने वाली ध्वनि, बधिरीकृत=बहराकर दिया गया है, 'बधिर+च्वि+कृ+क्त', गव्यूति =दो कोस, 'गो+यूति' (निपातन से), मध्य=मध्य के, मध्येगच्छतीति मध्यगः, अध्वनीन=पथिक, वर्ग=समूह। हयानां हेषाध्वनिः तेषां प्रतिध्वनिभिः बधिरीकृतः गव्यूतिमध्यमः अध्वनीनानां वर्गः येन सः (बहुव्रीहि)। 'पटकुटीर-विडम्बनः'=वस्त्र की कुटी (तम्बू) के समूह से शरद के मेघों को विडम्बित कर दिया है जिसने (अफजलखाँ का विशेषण), पटकुटीर=तम्बू या खेमा, कूट =समूह, शारद=शरत्कालीन, अम्भोधर=बादल, विडम्बना=उपहास। पटकुटीराणां कूटैः विहिता शारदानां अम्भोधराणां विडम्बना येन सः (बहुव्रीहि)। 'निरपराध···पटलैः'=निर्दोष भारत के अभिजन (निवासी) लोगों के उत्पीड़न के पाप समूह के। निरपराधाः=भारतताभिजनाः ये जनास्तेषां पीडनेन पातकपटलैः (तत्पु०)। समुद्धूयमाननीलध्वजैः=फहराने वाली नीली पताकाओं से। समुद्धूयमानाः नीलध्वजाः तैः (कर्मधारय)। समुद्धूयमान='सम्+उत्+√धूञ्+शानच्'। उपलक्षितः=प्रतीत होने वाला। अन्यतमः=अनेकों में एक। सेनानी=सेनापति, 'सेना+आनुक्+ङीष् (स्त्री)'। अविदूरे=समीप में। आहवद्यूतेन=युद्धरूपी जुआ से। 'आहवः एव द्यूतस्तेन', आहव=युद्ध। चिक्रीडिषुः=खेलने की इच्छा वाला, '√क्रीड्+सन्+उ'। तिष्ठति स्म= स्थित था, 'स्म' के योग में 'लिट्' के स्थान पर 'लट्' का प्रयोग होता है "लट् स्मे"।

टिप्पणी—(१) "निरपराध···नीलध्वजैः"—निरपराध भारतीयों के उत्पीडन से उत्पन्न पाप राशि की सम्भावना अफजलखाँ के नीलध्वज में की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(२) अनुप्रास अलङ्कार की समायोजना से वर्णन में सजीवता है।

(३) भीमा नदी का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है।

(४) 'पश्चिमी समुद्र के किनारे के पर्वतों से निकली नदी पूर्व के समुद्र के चुम्बन के लिये उतावली' इससे पाश्चात्य रमणियों का प्राच्य सम्पर्क रूप ——— ——— परिलक्षित होता है।

(५) 'हयहेषाध्वनिप्रतिध्वनि' में यद्यपि 'हेषा' घोड़े के शब्द को कहते हैं तथापि उस पूर्व 'हय' शब्द का निर्देश स्पष्टार्थ साहित्यिक है, यथा— 'संकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः" (रघुवंश)।

अथ जगतः प्रभातजालमाकृष्य, कमलानि सम्मुद्रय, कोकान् सशोकी कृत्य, सकल-चराचर-चक्षुःसञ्चार-शक्ति शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज-मण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी-सेवनेनेव माञ्जिष्ठमञ्जिम-रञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्त इव सुषुप्सुः, म्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःखाऽऽक्रान्त-वसुमतीवेदनामिव समुद्रशयिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-सञ्जातनिर्वेद इव गिरिगह्नेषु प्रविश्य तपश्चि-कीर्षुः, घर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः, साम्रं समयमवगत्य सन्ध्यो-पासनमिव विधित्सुः, "नास्ति कोऽपि मत्कुले ; यः सकण्ठग्रहं धर्म-ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञियादस्माद् भारतगर्भान्निस्सारयेत्" इति चिन्ताऽऽ-क्रान्त इव कन्दरि-कन्दरेषु प्रविविक्षुर्भगवान्, भास्वान्, क्रमशः क्रूर-करानपहाय, दृश्य-परिपूर्ण-मण्डलः संवृत्य, श्वेतीभूय, पीतीभूय, रक्ती-भूय च गगनधरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाऽण्डाकृतिमङ्गीकृत्य, कलि-कौतुक-कवलीकृत-सदाचार-प्रचारस्य , पातक-पुञ्ज-पिञ्जरित-धर्मस्य च यवन-गण-ग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुषामगोचर एव संजातः।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद जगत् के प्रकाश समूह को खींच करके, कमलों को सम्पुटित करके, चक्रवाकों को शोकमग्न करके, सम्पूर्ण जड़-चेतन के नेत्रों की सञ्चार शक्ति को शिथिल करके, कुण्डल के समान अपने मण्डल से पश्चिम दिशा को विभूषित करते हुए, मानो वारुणी (मदिरा तथा पश्चिम दिशा) के सेवन से मंजीठी की लालिमा से लाल हुए, मानो निरन्तर भ्रमण से श्रान्त होकर सोने को इच्छुक, मानो म्लेच्छों के दुराचार के दुःख से आक्रान्त पृथ्वी की वेदना को समुद्रशायी (भगवान्) से निवेदन करने के इच्छुक, मानो वैदिक

धर्म के ध्वंस को देखकर निर्वेद (वैराग्य) भाव को प्राप्त होकर दुर्गम पर्वतों में प्रवेश करके तपस्या करने के इच्छुक, मानो धूप से संतप्त हुए समुद्र-जल में स्नान करने के इच्छुक, "मेरे कुल में ऐसा कोई नहीं है, जो धर्मध्वंसी इन दुष्ट यवनों को यज्ञ के योग्य इस भारत भूमि से गला पकड़कर बाहर निकाल दे". इस चिन्ता से व्याकुल हुए से पर्वत की गुफाओं में प्रवेश करने के इच्छुक, भगवान् सूर्य क्रमशः कठोर किरणों को छोड़कर, अपने सम्पूर्ण मण्डल को दृश्य बनाकर, (क्रमशः) सफेद, पीला और फिर लाल होकर, आकाश और पृथिवी के द्वारा दोनों ओर से आक्रान्त हुए से अण्डाकार बनकर, कलियुग के प्रभाव से विनष्ट सदाचार वाले पाप पुञ्ज से पीले पड़े हुए धर्म वाले तथा यवनों से ग्रस्त भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए, संसार को घोर अन्धकार में गिराते हुए नेत्रों से अदृश्य हो गये।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, जगतः = संसारस्य, प्रभाजालम् = दीप्तिसमूहम्, आकृष्य = आकुञ्च्य, कमलानि = सरसिजानि, सम्मुद्रय, कोकान् = चक्रवाकान्, सशोकीकृत्य = दुःखिनो विधाय, सकलचराचरचक्षुसञ्चारशक्तिम् = समस्तस्थावरजङ्गमनेत्रक्रियाशक्तिम्, शिथिलीकृत्य = अवरुद्ध्य, कुण्डलेन = कर्णाभरणेन, इव, निजमण्डलेन = स्वबिम्बेन, पश्चिमाम् = वारुणीम्, दिशाम् = आशाम्, भूषयन् = अलङ्कुर्वन्, वारुणीसेवनेन = पश्चिमदिग्गमनेन मदिरा सेवनेन वा, इव, माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः = माञ्जिष्ठरक्तिमारक्तः, अनवरतभ्रमण-परिश्रमश्रान्तः सततसञ्चलनखेदखिन्नः इव सुषुप्सुः = स्वप्तुमिच्छुः, म्लेच्छ-गणस्य = यवनसमूहस्य, दुराचारैः = अनाचारैः, दुःखाक्रान्तायाः = व्यथाव्यथि-तायः, वसुमतेः = वसुन्धरायाः, वेदनाम् = पीडाम् इव, समुद्रशायिनि = भगवति विष्णौ, निविवेदयिषुः = निवेदनं कर्तुमिच्छुः, वैदिक-धर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेदः = सनातनधर्मविनाशोत्पन्ननिर्वेदः, इव, गिरिगहनेषु = पर्वतदुर्गमेषु, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, तपश्चिकीर्षुः तपष्कर्तुमिच्छुः, घर्मतापतप्तः = तपनतापपीडितः, इव, समुद्रजले = पयोधिपयसि, सिस्नासुः = स्नानं कर्तुमिच्छुः, सायम् समयम् = सूर्यास्तवेलाम्, अवगत्य = ज्ञात्वा, सन्ध्योपासनमिव = सायन्तनम् पूजन कर्म इव, विधित्सुः = चिकीर्षुः, नास्ति = न विद्यते, कोऽपि = कश्चिदपि मत्कुले = अस्मत्कुटुम्बे, यः सकण्ठग्रहम् = कण्ठं गृहीत्वा, धर्मध्वंसिनः = धर्मविनाशकान्,

यवनहतकान् = दुष्टम्लेच्छान्, यज्ञियात् = यज्ञसम्पादनयोग्यात्, अस्मात्, भारत-गर्भात् = भारतभूमेः, निःसारयेत् = बहिःकुर्यात्, इति = एतत्, चिन्ताक्रान्तः = चिन्ताग्रस्तः, इव, कन्दरकन्दरेषु = पर्वतगुहासुः, प्रविविक्षुः = प्रवेष्टुमिच्छुः, भगवान् भास्वान् = ऐश्वर्यशाली सूर्यः, क्रमशः = शनैः शनैः, क्रूरकरान् = तीव्र-किरणान्, अपहाय = परित्यज्य, दृश्यपरिपूर्णमण्डलः = दृश्य सकलबिम्बः, संवृत्य = सञ्छाद्य, श्वेतीभूय = धवलीभूय, पीतीभूय = पीतवर्णोभूत्वा, रक्तीभूय = रुधिर-वर्णोभूत्वा, च, गगनधरातलाभ्याम् = द्यावा-पृथिवीभ्याम्, उभयतः, आक्रम्यमाण इव = आक्रान्त इव, अण्डाकृतिम् = अण्डाकारम्, अङ्गीकृत्य = समेत्य, कलिकौतुक-कवलीकृतसदाचारप्रचारस्य = कलिकौतूहल विनष्टसदाचारस्य, पातकपुञ्ज-पिञ्जरितधर्मस्य = अघौघपीतधर्मस्य, यवनगणग्रस्तस्य = म्लेच्छवृन्दाक्रान्तस्य, अन्धतमसे = गाढ़ान्धकारे, च जगत् = संसारम्, पातयन् = समानयन्, चक्षुषाम् = नेत्राणाम्, अगोचरः = अदृश्यः, एव, संजातः = अभूत् ।

हिन्दी व्याख्या—प्रभाजालम् = दीप्ति समूह को। आकृष्य खींचकर। सम्मुद्र्य = सम्पुटित करके, 'सम् + √मुद् + ल्यप्'। कोकान् = चक्रवाकों को। सशोकीकृत्य = शोकमग्न करके, स (सह) + शोक + च्वि + √कृ + ल्यप्'। सकलचराचरचक्षुःसञ्चारशक्तिम् = सम्पूर्ण जड़ चेतन के नेत्रों की दर्शन शक्ति को, 'सकलस्य चराचरस्य चक्षुषाम् सञ्चारस्य शक्तिम् (तत्पु०)। शिथिलीकृत्य = शिथिल करके, 'शिथिल च्वि + √कृ + ल्यप्'। निजमण्डलेन अपने मण्डल से। पश्चिमाम् आशाम् = पश्चिम दिशा को, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः" (अमरकोष)। भूषयन् = विभूषित करता हुआ, '√भूष् (अलंकरणे) + णिच् + शतृ (प्रथमा ए० व०)"। वारुणीसेवनेन = पश्चिम दिशा में जाने से अथवा मदिरा के सेवन से, वारुणी = पश्चिम दिशा तथा मदिरा— 'सुरा प्रत्यक् च वारुणी' (अमरकोष)। इसका आशय यह है कि सूर्य पश्चिम दिशा में जाने से वैसे ही रक्ताभ हो रहा है मानो वह मदिरा (वारुणी) का सेवन किये हो। इव = उत्प्रेक्षावाचक। माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः = 'मंजीठ' की लाली से लाल। 'मंजिष्ठ' एक प्रकार के वृक्ष का द्रव है, जो लाल होता है। लोक में इसे 'मंजीठ' कहते हैं। मञ्जिष्ठायाः अयं माञ्जिष्ठः— 'मञ्जिष्ठ + अण्' ? 'माञ्जिष्ठश्चासौ मञ्जिमा तेन रञ्जितः (तत्पु०)। मञ्जिम

=लालिमा, रञ्जित=रक्त। अनवरतभ्रमणपरिश्रमश्रान्त इव=निरन्तर परिभ्रमण के परिश्रम से परिश्रान्त हुए से। 'अनवरतं यत् भ्रमणं तस्य परिश्रमस्तेन श्रान्तः, (तत्पु०)। सुषुप्सु=सोने का इच्छुक। म्लेच्छगणदुराचारदुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनाम्=यवनों के दुराचारों से आक्रान्त पृथिवी की वेदना को। म्लेच्छगण=यवनों, दुराचार=अत्याचार, दुःखाक्रान्त=कष्ट से पीड़ित, वसुमती=पृथिवी, वेदना=पीड़ा। "म्लेच्छगणस्य दुराचारैः दुःखाक्रान्तायाः वसुमत्या वेदनाम् (तत्पु०)"। इव=मानो। समुद्रशायिनि समुद्र में शयन करने वाले, समुद्रे शेते इति समुद्रशायी तस्मिन्–समुद्र+√शीङ्+इन् (सप्तमी, ए० व०)। निविवेदयिषुः=निवेदन करने का इच्छुक, 'नि+वि+√विद्+सन्+उ (प्रथमा, ए० व०)। वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेदः वैदिक धर्म के विनाश के दर्शन से उत्पन्न वैराग्य वाला। निर्वेद=वैराग्य। "वैदिकधर्मस्य ध्वंसस्तस्य दर्शनेन सञ्जातः निर्वेद यस्य सः" (बहुव्रीहि)। इव=उत्प्रेक्षावाचक। गिरिगहनेषु=दुर्गम पर्वतों में। तपश्चिकीर्षुः=तपस्या करने का इच्छुक। चिकीर्षुः=करने का इच्छुक—"√कृ+सन्+उ (प्रथमा ए० व०)"। घर्मतापतप्तः=धूप की गर्मी से संतप्त। सिस्नासुः=स्नान करने की इच्छा वाला, '√स्ना+सन्+उ (प्रथमा ए० व०)'। अवगत्य=जानकर, 'अव+√गम्+ल्यप्'। विधित्सु=करने का इच्छुक, '√वि+धा+सन् उ (प्रथमा)'। मत्कुले=मेरे कुल में। सकण्ठग्रहम्=कण्ठग्रहणपूर्वक, (अर्घं चन्द्र देकर), "कण्ठस्य ग्रहस्तेन सहितमिति, (अव्य०)"। धर्मध्वंसिनः=धर्म का विनाश करने वाले। यवनहतकान् दुष्ट यवनों को। यज्ञियात् यज्ञ करने के योग्य 'यज्ञ+घ (इय)' "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" सूत्र से 'घ' प्रत्यय तथा 'घ' को 'इय' हुआ है। भारतगर्भात्=भारत के गर्भ (भूमि) से। निस्सारयेत्=निकाल दे—'निस्+√सृ+णिच्+लिङ् (प्र० पु०, एकवचन)। कन्दरिकन्दरेषु=पर्वतों की गुफाओं में। कन्दरिन्=पर्वत, 'कन्दरिणाम्=कन्दरेषु' (तत्पु०)। प्रविविक्षुः=प्रवेश करने की इच्छा वाला, 'प्र+√विश्+उ (प्रथमा)'। भास्वान्=सूर्य। क्रूरकरान्=कठोर किरणों को। अपहाय=छोड़कर। दृश्यपरिपूर्णमण्डलः=देखने योग्य है सम्पूर्ण विम्ब जिसका, 'दृश्यम् सम्पूर्णम् मण्डलम् यस्य सः (बहुव्रीहि)'। श्वेतीभूय=सफेद होकर। पीतीभूय=पीला होकर रक्तिभूय=लाल होकर। उक्त तीनों पदों में 'च्वि

प्रत्यय तथा 'ल्यप्' हुआ। आक्रम्यमाण इव = आक्रान्त हुए के समान, 'आ + √क्रम् + य + शानच् (प्रथमा)। अण्डाकृतिम् = गोलाकार। अङ्गीकृत्य = अङ्गीकार करके। कलिकौतुककवली कृतसदाचारप्रचारस्य = कलियुग के प्रभाव से नष्ट कर दिया गया है सदाचार का प्रचार जिसके। कौतुक = कौतूहल, कवलीकृत = विनष्ट। "कलिकौतुकेन कवलीकृतस्य सदाचारस्य प्रचारः यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि)। पातकपुञ्जपिञ्जरितधर्मस्य = पाप राशि से पीले किये गये धर्म वाले। पातक = पाप, पुञ्ज = समूह, पिञ्जरित = पीला किया गया। 'पातकानां पुञ्जः तेन पिञ्जरितः धर्मः यस्य सः तस्य (बहुव्रीहि)'। यवनगणग्रस्तस्य = यवनों से ग्रस्त, यवनानां गणस्तेन ग्रस्तस्तस्य (तत्पु०)। स्मारयन् = स्मरण करता हुआ, '√स्मारि + शतृ'। पातयन् = गिराता हुआ, '√पत् + णिच् + शतृ (प्रथमा)। अगोचरः = अदृश्य, चरतीति चरः, गवाम् (इन्द्रियाणाम्) चरः गोचरः, न गोचरः इति अगोचरः 'नञ् + गो + √चर् + अच् (प्रथमा)।' सञ्जातः = हो गया, 'सम् + जनि + क्त (प्रथमा एकवचन)।

टिप्पणी—(१) सम्पूर्ण खण्ड अनुप्रास के चमत्कार से चमत्कृत है।

(२) कवि की प्रतिभा आकलन कल्पना से होती है। उत्प्रेक्षा अलंकार की मुख्य कल्पना होती है। "कुण्डेलेनेव···प्रविविक्षु" में मालोत्प्रेक्षा से काव्य अनुप्राणित होकर अत्यन्त रोचक एवं मनोहारी है। 'वारुणी सेवनेनेव' में श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षा है। 'क्रमशः क्रूरकरान्···अङ्गीकृत्य' में सूर्य का स्वाभाविक चित्रण होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

(३) 'सन्नन्त' शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

(४) पीड़ित पृथ्वी की वेदना उसके पति विष्णु से कहने की कल्पना में 'पत्नी के दुःख को पति से कहने का' भाव व्यंजित होता है।

(४) समास एवं व्यास दोनों प्रकार के वर्णन में व्यास जी पटु दिखाई पड़ते हैं।

(६) सूर्यास्त का वर्णन अत्यन्त मनोहारी ढंग से किया गया है।

ततः संवृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु भुशुण्डीं स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागतञ्च विदधानः, प्रतापदुर्ग—दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेपध्वनिमिवाऽश्रौषीत्। ततः स्थिरीभूय

पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽवतमसवशादागन्तारं कमप्यनव-लोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्—"कः कोऽत्र भोः ?" इति ।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरश्रावीति भूयः साक्षेपमवोचत्—"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति बधिरः ?"

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर, कुछ अंधेरा हो जाने पर तथा मानो धूप से होने वाले धुंआ से दिशाओं के व्याप्त हो जाने पर, बन्दूक कन्धे पर रखकर इधर उधर टहलता हुआ, भली-भाँति (चारों ओर) देखता हुआ प्रताप दुर्ग के द्वारपाल ने किसी के पैरों की ध्वनि सुनी । तब रुककर, सामने देखता हुआ, दीपक का प्रकाश होने पर भी हल्का अँधेरा होने के कारण किसी आने वाले को न देखकर (वह) गंभीर स्वर में बोला अरे ! कौन है यहाँ ? अरे ! कौन है यहाँ ?"

एक क्षण के बाद पुनः वही पाद ध्वनि सुनाई पड़ी । तब क्रोधपूर्वक बोला—"यह कौन बहरा है, जो मुझे उत्तर न देता हुआ मरने की इच्छा से चला आ रहा है ।

संस्कृत-व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, किञ्चित्=ईषत्, अन्धकारे=तमसि, संवृत्ते=जाते, धूपधूमेनेव=ग्रीष्मधूमेनेव, हरित्सु=दिशासु, व्याप्ता=आच्छादितासु, भुशुण्डीं=आग्नेयास्त्रम्, स्कन्धे=अंसदेशे, निधाय=स्थापयित्वा, निपुणम्=सम्यक्, निरीक्षमाणः=समवलोकयन्, आगतप्रत्यागतञ्च=गमनागमञ्च, विदधानः=कुर्वाणः, प्रतापदुर्गदौवारिकः=प्रतापनाम्नः दुर्गस्यद्वारपालः, कस्यापि=कस्यचिदपि, पादक्षेपध्वनिम्=पादसङ्क्रमणशब्दम्, अश्रौषीत=अशृणोत् । ततः=तदनन्तरम्, स्थिरीभूय=स्थित्वा, पुरतः=अग्रे, पश्यन्=अवलोकयन, दीपप्रकाशे=प्रदीपालोके, अवतमसवशात्=ईषदन्धकारवशात्, आगन्तारम्=आगन्तुकम्, कमपि=कञ्चिदपि, अनवलोकयन=अपश्यन्, गम्भीरस्वरेण=उच्चस्वरेण, अवादीत्—अवदत्, कः=कोऽत्र, भोः=कोऽस्त्यत्र भोः, इति=एवम् । अथ=अनन्तरम्, क्षणानन्तरम्=किञ्चिद्-विलम्ब्य, पुनः =भूयः, स एव=पूर्वविध एव, पादध्वनिः=चरणनिक्षेपशब्दः, अश्रावि=श्रुतिः इति, भूयः=पुनः साक्षेप=सक्रोधम्, अवोचत्=अवादीत्—क एषः, माम्=द्वारपालम्, अनुत्तरयत्=उत्तरमददन्, मुमूर्षुः=मर्तुमिच्छुः, बधिरः=श्रोतमशक्तः, समायाति=समागच्छति ?

हिन्दी व्याख्या—संवृत्ते=हो जाने पर, 'सम्+√वृत्+क्त (सप्तमी)'। किञ्चिदन्धकारे=कुछ अन्धकार के, 'यस्यभावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति। हरित्सु=दिशाओं के, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्चताः" (अमरकोष), उक्त नियम से सप्तमी। भुशुण्डीम्=बन्दूक को। निधाय =रखकर। निपुणम्=अच्छी तरह से। निरीक्षमाणः=देखता हुआ, 'निर्+√ईक्ष+शानच्' (प्रथमा)। आगतप्रत्यागञ्च=गमनागमन (गस्त लगाना)। विदधानः=करता हुआ 'वि+√दध्+शानच्'। प्रतापदुर्गदौवारिकः=प्रताप नामक किले का द्वारपाल, "प्रताप दुर्गस्य दौवारिकः (तत्पु०)"। पादक्षेपध्वनिम् =पैरों की आहट। 'अश्रौषीत्=सुना, 'श्रु+लुङ् (तिप्)'। स्थिरीभूय=रुककर, स्थिर से 'च्वि' प्रत्यय। पुरतः=सामने। अवतमसवशात=धुंधलेपन के कारण 'अवतमसस्य वशात्' (तत्पु०)। अवतमस् से समासान्त 'अच्' प्रत्यय हुआ है—'अवसमन्धेभ्यस्तमसः'। आगन्तारम्=आने वाले को, 'आ+√गम् +तृच्' (द्वितीया ए० व०)। अनवलोकयन्=न देखता हुआ, 'अन्+अव+√लोक+शतृ' (प्रथमा)। क्षणानन्तरम्=थोड़ी देर बाद। अश्रावि=सुनाई पड़ी। साक्षेपम्=क्रोधपूर्वक। अवोचत्=बोला। अनुत्तरयन्=उत्तर न देता हुआ, 'अन्+उत्+√तृ+शतृ (प्रथमा)'। मुमूर्षुः=मरने की इच्छा वाला, 'मृ+सन्+उ (प्रथमा ए० व०)। समायाति=आ रहा है, 'सम्+आ+√या+लट् (तिप्)।' बधिरः=बहरा।

टिप्पणी—(१) 'धूपधूमेनेव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(२) द्वारपाल को अति सचेष्ट दिखाया गया है।

ततो "दौवारिक! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि ?" इति वक्तारमपश्यतैवाऽऽकर्णि मन्द्रस्वरमेदुरा वाणी। अथ "तत्किं नाज्ञायि अद्यापि भवता प्रभुवर्य्याणामादेशो यद् दौवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिः पृष्टोऽपि प्रत्युत्तरमददद् हन्तव्य इति" इत्येवं भाषमाणेन द्वाःस्थेन "क्षम्यतामेष आगच्छामि, आगत्य च निखिलं निवेदयामि" इति कथयन् द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षुबटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि काषायवासाः, धृत-तुम्बी-पात्रः, भस्मच्छुरित-ललाटः, रुद्राक्ष-मालिका-सनाथित-कण्ठः, भव्यमूर्तिः संन्यासी दृष्टः। ततस्तयोरेवमभूदालापः—

हिन्दी अनुवाद—तब, "द्वारपाल ! शान्त हो, क्यों व्यर्थ में मरने वाला और बहरा कहते हो" इस प्रकार (द्वारपाल) बोलने वाले को बिना देखे ही गम्भीर स्वर में स्निग्ध वाणी सुनी। इसके बाद (द्वारपाल ने कहा) 'तो क्या आप अभी तक महाराज शिवाजी के इस आदेश को नहीं जानते हैं कि द्वारपाल या पहरेदार के द्वारा तीन बार पूछने पर भी उत्तर न देने वाले को गोली मार दी जाय।' द्वारपाल के इतना कहने पर—"क्षमा करो, यह मैं आ रहा हूँ, आकर सब कुछ बताऊँगा" ऐसा कहते हुए एक बारह वर्षीय भिक्षु बालक से अनुगम्यमान कषाय वस्त्रधारी, तुम्बी पात्र लिये हुए, मस्तक पर भस्म लपेटे हुए, रुद्राक्ष की माला गले में पहने हुए, भव्य मूर्ति वाले किसी सन्यासी को (द्वारपाल ने) देखा। तब दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

संस्कृत-व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, दौवारिक=द्वारपाल, शान्तो भव=तूष्णीं भव, किमिति=कथम्, व्यर्थम्=निष्प्रयोजनम्, मुमूर्षः=मर्तुमिच्छुः, इति, बधिर इति=श्रवणासमर्थ इति, च वदसि=कथयसि।' इति, वक्तारम्=कथयितारम्, अपश्यता एव=अनवलोकयता एव, मन्द्रस्वरमेदुरा गंभीर-स्वरस्निग्धगिरा, आकर्णि=अश्रावि। अथ=ततः, तत्किम्=इति प्रश्ने, किम् नाज्ञायि=किं न ज्ञातः, भवता=त्वया, प्रभुवर्य्याणाम्=स्वामिमहाभागानाम्, आदेशः=शासनः, यत्, दौवारिकेण=द्वारपालेन, प्रहरिणा वा=यामिकेन वा, त्रिः=वारत्रयम्, पृष्ठोऽपि,=जिज्ञासितोऽपि, प्रत्युत्तरम्=प्रतिवचनम्, अददद्=अप्रयच्छन्, हन्तव्यः=हननीयः इति," इत्येवं=इत्थम्, भाषमाणेन=उच्य-मानेन, द्वाःस्थेन=द्वारस्थितेन, क्षम्यताम्=क्षमा कर्त्तव्या, एषः=अयम्, आगच्छामि=आयामि, आगत्य च=समेत्य च, निखिलम्=सकलम् (वृत्तम्) निवेदयामि=कथयामि, इति=एवं, कथयन्=भाषमाणः, द्वादशवर्षेण=द्वादशहायनेन, केनापि, भिक्षुवटुना=भिक्षुबालकेन, अनुगम्यमानः=अनुसृतः, कोऽपि=कश्चित्, कषायवासाः=कषायवस्त्रधारी, धृततुम्बीपात्रः=गृहीत तुम्बीकः, भस्मच्छुरितललाटः=भस्मशोभितमस्तकः, रुद्राक्षमालिका-सनाथित-कण्ठः=रुद्राक्षस्रग्विभूषितकण्ठः, भव्यमूर्त्तिः=भव्याकृतिः, सन्यासी=विरक्तः साधुः, दृष्टः=अवलोकितः। ततः=तदनन्तरत्, तयोः=द्वारपाल सन्यासिनोः एवम्=इत्थम्, आलापः=वार्ता, अभूत्=अभवत्।

हिन्दी व्याख्या—दौवारिकः=द्वारपाल, 'द्वारे भवः दौवारिकः—द्वार+ठञ् (इक्)'। 'दौवारिक···वदसि' सन्यासी का वचन है, जो दिखाई नहीं पड़ रहा था। वक्तारम्=वक्ता को, 'वच्+तृच् (द्वितीया ए० व०)'। अपश्यता=न देखते हुए, 'नञ्+पश्य+शतृ (तृतीया ए० व०)'। आकर्णि=सुनी गई। मन्द्रस्वरमेदुरा=गंभीर स्वर से स्निग्ध, मन्द्र=गम्भीर, मेदुरा=स्निग्ध, या "सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुरः" (अमरकोष)। 'मन्द्रस्वरेण मेदुरा, (तृ० तत्पु०)। न अज्ञायि=नहीं मालूम है, 'ज्ञा+लुङ् (भावकर्म प्रक्रिया)।" प्रभुवर्य्याणाम्=आदरणीय स्वामी का (आदर सूचक ब० व०)। प्रहरिणा=पहरेदार के द्वारा। त्रिः=तीन बार। प्रत्युत्तरम्=उत्तर को। अवदत्=न देने वाला। हन्तव्यः=मार दिया जाना चाहिए, '√हन्+तव्यत् (प्रथमा ए० व०)।' भाषमाणेन=कहने वाले 'भाष्+शानच् (तृ० ए० व०)।' द्वारःस्थेन=द्वार पर स्थित (द्वारपाल का विशेषण)। क्षम्यताम्=क्षमा कीजिये। निखिलम्=सब कुछ। द्वादशवर्षेण=बारह वर्ष वाले। भिक्षुबटुना=भिक्षुबालक के द्वारा, 'भिक्षुश्चासो बटुस्तेन'। अनुगम्यमानः=पीछा किया जाता हुआ, 'अनु+√गम्+यक्+शानच्' (सन्यासी का विशेषण)। कषायवासाः=कषाय वस्त्र धारण किये हुए। धृततुम्बीपात्रः=तुम्बीपात्र को लिये हुए, 'धृतम् तुम्बीपात्रम् येन सः (बहुव्रीहि)। भस्मच्छुरितललाटः=मस्तक पर भस्म (राख) लगाये हुए। रुद्राक्षमालिका सनाथितकण्ठः=रुद्राक्ष की माला से विभूषित कण्ठ वाला, 'रुद्राक्षमालिकया सनाथितः कण्ठः यस्य सः (बहुव्रीहि)'। आलापः=परस्पर वार्तालाप। अभूत्=हुआ। तयोः=सन्यासी और द्वारपाल का।

टिप्पणी—(१) क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग न होने पर भी द्वारपाल और सन्यासी के परस्पर अभिभाषण को एक ही वाक्य में समेटने के प्रयास में आशु-बोधिता नहीं रह सकी है।

(२) कर्मवाच्य का प्रयोग बहुलता से किया गया है।

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्तिरस्करोषि ?

दौवारिकः—भगवन् ! भवान् संन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददेवाऽऽयातीत्याक्रुश्यते।

संन्यासी—सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि, संन्यासिनः, ब्रह्म-

चारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्याः, आत्मानंमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः ।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे । किन्तु यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः, तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः ।

हिन्दी अनुवाद—संन्यासी—हम संन्यासियों को कठोर भाषण से तुम क्यों अपमानित करते हो ?

द्वारपाल—भगवन् ! आप संन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम के सेवी हैं, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ; परन्तु आप स्वामी के आदेश का उल्लंघन करके अपना परिचय दिये बिना ही चले आ रहे हैं इसलिये क्रुद्ध हो रहा हूँ ।

संन्यासी—सत्य है, (तुम्हारा) यह अपराध क्षमा किया, आज से संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पण्डितों, स्त्रियों, और बालकों से कुछ भी नहीं पूँछना । अपना परिचय न देनें पर भी उन्हें प्रवेश करने देगा ।

द्वारपाल—संन्यासी ! संन्यासी ! बहुत कह चुके अब रुको, हम द्वारपाल लोग ब्रह्मा की भी आज्ञा नहीं मानते हैं । किन्तु जो वैदिक धर्म के रक्षा के व्रती है जो संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के संन्यास, ब्रह्मचर्य और तपस्या के विघ्नों के नाशक है, तथा जिसके द्वारा यह कोङ्कण देश की भूमि वीरप्रसविनी (वीरों को पैदा करने वाली) कही जाती है, उन्हीं महाराज वीर शिवाजी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं ।

संस्कृत-व्याख्या—संन्यासी—कथम् = किम्, अस्मान् संन्यासिनोऽपि = मादृशान् विरक्तान्नपि, कठोरभाषणैः = परुषवचनैः, तिरस्करोषि = अपमन्यसे ?

दौवारिकः—भगवन् = महाशय ! भवान् = त्वम्, संन्यासी = विरक्तः, तुरीयाश्रमसेवी = चतुर्थाश्रमसेवी, इति = अस्माद्धेतोः, प्रणम्यते = अभिवाद्यते, परन्तु, प्रभूणाम् = स्वामिनाम्, आज्ञाम् = आदेशम्, उल्लङ्घ्य = उल्लंघनं कृत्वा, निजपरिचयम् = स्वाभिज्ञानम्, अददत् = अप्रयच्छन्, एव, आयाति = आगच्छति, इति = अस्मात्, आक्रुश्यते = आकुप्यते ।

संन्यासी—सत्यम् = यथार्थम्, क्षान्तः = मर्षितः, अयम्, अपराधः = दोषः, परम = किन्तु, अद्यावधि = अद्यत आरभ्य, संन्यासिनः = तुरीयाश्रमस्था, ब्रह्मचारिणः = ब्रह्मचर्यवर्तिनः, पण्डिताः = विद्वांसः, स्त्रियः = नार्यः, बालाश्च = बालकाश्च, न किमपि = न किञ्चिदपि, प्रष्टव्याः = प्रश्नं कर्त्तव्याः, आत्मानम् = स्वम्, अपरिचाययन्तः = परिचयमददतः अपि, प्रवेष्टव्याः = प्रवेशं कर्त्तव्याः ।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहूक्तम् = बहुभाषितम्, विरम = विश्रम, वयम्, दौवारिकाः = द्वारपालाः, ब्रह्मणः = विधातुः, अपि, आज्ञाम् = आदेशम्, न प्रतीक्षामहे = न मन्ये । किन्तुः यः शिवः, वैदिकधर्मरक्षाव्रती = वेदविहितधर्मरक्षकः, यश्च, संन्यासिनाम् = तुरीयाश्रम सेविनाम्, संन्यासिन् ! ब्रह्मचारिणाम् = बटूनाम्, तपस्विनाञ्च = तपस्तप्तानाम् च, संन्यासस्य = वैराग्यस्य, ब्रह्मचर्यस्य, तपसः = तपस्यायाः, च, अन्तरायाणाम् = विघ्नानाम्, हन्ता = निवारयिता, येन = शिवेन, च, वीरप्रसविनि = वीरप्रसूता, इयम् = एषा, उच्यते = कथ्यते, कोङ्कणदेशभूमिः = कोङ्कणदेशनाम्नः वसुन्धरा, तस्यैव = एतद्विधस्यैव, महाराजशिवस्य = तत्रभवतः शिववीरस्य, आज्ञां = आदेशम्, वयम् = दौवारिकाः, शिरसा = मस्तकेन, वहामः = धारयामः ।

हिन्दी व्याख्या—कठोरभाषणैः = कठोर वचनों से । तिरस्करोपि = तिरस्कृत करते हो । तुरीयाश्रमसेवी = चतुर्थ आश्रम में रहने वाले, भारतीय संस्कृति के अनुसार १. ब्रह्मचर्य, २. गृहस्थ, ३. वानप्रस्थ और ४. संन्यास ये चार आश्रम हैं । इसमें चतुर्थ आश्रम संन्यास है । प्रणम्यते = प्रणाम किया जाता है "प्र + √नम् + य + क्त ।' उल्लङ्घ्य = उलङ्घन करके 'उत् + √लङ्घि + ल्यप् ।' अददत् = न देते हुए । आक्रुश्यते = क्रुद्ध होता हूँ 'आ + √क्रुश् + यक् + त्' । क्षान्तः = क्षमा किया । अद्यावधि = आज से । अपरिचाययन्तमपि = परिचय न देने पर भी । प्रवेष्टव्याः = प्रवेश करने देना चाहिये, 'प्र + √विश् + तव्यत्' (प्रथमा बहुव्रीहि) । बहूक्तम् = बहुत कह चुके । विरम = रुकिये । प्रतीक्षामहे = प्रतीक्षा करता हूँ । वैदिकधर्मरक्षाव्रती = वैदिक धर्म के रक्षा व्रती, 'वैदिक धर्मस्य रक्षायाः व्रती । (तत्पु०) संन्यासिनां, ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च के क्रम से संन्यास्य, ब्रह्मचर्य तपसश्च के साथ अन्वय होता हैं । अन्तरायाणाम् = विघ्नों के, विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' (अमरकोष) । वीरप्रसविनी = वीर पुत्र पैदा करने वाली । उच्यते = कही जाती है । वहामः = धारण करते हैं ।

टिप्पणी—(१) "संन्यासिनाम्...तपसश्च" में यथासङ्ख्य अलङ्कार है।

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु, पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीरनिकटे जिगमिषावः।

दौवारिकः—अलमालप्यापि वत; प्राह्णे महाराजस्य सन्ध्योपासन-समये भवादृशानां प्रवेशसमयो भवति; न तु रात्रौ ?

संन्यासी—तत्किं कोऽपि न प्रविशति रात्रौ ?

दौवारिकः— (सापेक्षम्)कोऽपि कथं न प्रविशति ? परिचिता वा प्राप्त-परिचयपत्रा वा आहूता वा प्रविशन्ति, न तु भवादृशाः; ये तुम्बीं गृहीत्वा द्वाराद् द्वारम्—इति कथयन्नेव तत्तेजसेव धर्षितो मध्य एव विरराम।

संन्यासी—(स्वागतम्) राजनीति-निष्णातः शिववीरः। सवथा दौवा-रिकता-योग्य एवायं द्वारपालः स्थापितोऽस्ति। परीक्षितमप्येनमेकस्मिन् विषये पुनः परीक्षिष्ये तावत्। (प्रकटम्) दौवारिक! इत आयाहि,-किमपि कर्णे कथयिष्यामि।

दौवारिकः—(तथा कृत्वा) कथ्यताम्।

हिन्दी अनुवाद—संन्यासी—अच्छा, कुछ भी हो, रास्ता दिखाओ, हम दोनों शिववीर के पास जाना चाहते हैं।

दौवारिक—उसकी तो बात भी न करें, आप जैसे लोगों के मिलने का समय पूर्वाह्न में महाराज के सन्ध्या-पूजन के समय होता है, रात्रि में नहीं।

संन्यासी—तो क्या कोई रात्रि में प्रवेश नहीं करता है ?

दौवारिक—(क्रोधपूर्वक) कोई क्यों नहीं प्रवेश करता है ? परिचित, परिचय पत्र प्राप्त करने वाले अथवा आमन्त्रित (व्यक्ति) प्रवेश करते हैं, न कि आप जैसे; जो तूम्बी लेकर एक द्वार से दूसरे द्वार—इतना कहते ही मानो उस (संन्यासी) के तेज से घबड़ा कर बीच में रुक गया।

संन्यासी—(अपने मन में) शिववीर राजनीति में पारंगत है। सर्वथा द्वार-रक्षक के योग्य ही द्वारपाल नियुक्त किया गया है। यद्यपि इसकी परीक्षा ले

चुका हूँ तथापि एक और विषय में पुनः परीक्षा लूंगा। (प्रकट रूप में) दौवारिक यहाँ आओ, कुछ कान में कहूँगा।

दौवारिक—(वैसा करके) कहिए ।

संस्कृत-व्याख्या—संन्यासी—अथ, किमप्यस्तु = किमपि भवतु, पन्थानम् = मार्गम्, निर्दिश = ज्ञापय, आवाम् = बटु-संन्यासिनौ, शिववीरनिकटे = शिववीर पार्श्वे, जिगमिषाव: = गन्तुमिच्छाव: ।

दौवारिकः—तत् अलमालप्यापि = एतदालपनीयमपि नास्ति, प्राह्णे = पूर्वाह्णे, महाराजस्य = शिववीरस्य, सन्ध्योपासनसमये = सान्ध्यपूजनावसरे, भवादृशानाम् = साधुसंन्यासिनाम्, प्रवेशसमयः = प्रवेशकालः, भवति, न तु रात्रौ = निशायां प्रवेशसमयो न भवति ।

संन्यासी—तत्किम् = तर्हिकिम्, कोऽपि = कश्चिदपि, रात्रौ = नक्तम्, न प्रविशति = न प्रविष्टो भवति ?

दौवारिकः—(सक्रोधम्) कोऽपि कश्चिदपि, कथम् - कस्मात्, न प्रविशति = प्रविष्टो भवति ? परिचिताः = परिज्ञातजनाः, प्राप्तपरिचयपत्राः = प्राप्ताभिज्ञपत्राः, वा = अथवा, आहूताः = आमन्त्रिताः, प्रविशन्ति = प्रवेशं कुर्वन्ति, न तु, भवादृशाः = त्वत्सदृशाः, ये, तुम्बीम् = तुम्बीपात्रम्, गृहीत्वा = संगृह्य, द्वाराद्द्वारम् = गृहाद्गृहम्, इति = एवम्, कथयन्नेव = भाषमाण एव, तत्तेजसा = संन्यासिदीप्त्या, धर्षितः = भीतः, मध्ये एव = अन्तरा एव, विरराम = तूष्णीमभूत। संन्यासी (मनसि) राजनीतिनिष्णातः = राजनीतिनिपुणः, शिववीरः = एतन्नामकः नृपतिः, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, दौवारिकतायोग्यः = द्वारपाल कर्मोचितः, एव अयम्, द्वारपालः = दौवारिकः, स्थापितोऽस्ति = नियुक्तोऽस्ति । परीक्षितम् = परीक्षाकृताऽस्य, अपि, एनम् = इमम्, एकस्मिन् = अन्यस्मिन्, विषये, पुनः = भूयः, परीक्षिष्ये = परीक्षां करिष्ये, तावत् । (प्रकटम् = प्रकाशम्) दौवारिक = द्वारपाल !, इत आयाहि = अत्र आगच्छ, किमपि = किञ्चिद्, कर्णे = श्रोत्रे कथयिष्यामि = वदिष्यामि ।

दौवारिकः—(तथाकृत्वा समेत्य तम्) कथ्यताम् = उच्यताम् ।

हिन्दी व्याख्या—निर्दिश = बताओ, 'निर् + √दिश + लोट (सिप्)'। जिगमिषावः = जाना चाहते हैं, 'गम + सन् + लट् (वस्)'। अलमालप्यापि = यह

कहने की भी बात नहीं है। संन्यासी की वार्ता के निषेध के लिये द्वौवारिक ने 'अलम्' का प्रयोग किया है, 'अलम्' के योग में 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है—आ लप् + क्त्वा (ल्यप्) = आलप्य'—"अलखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" से क्त्वा प्रत्यय हुआ है। माघ ने भी ऐसा प्रयोग किया है—"आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरत्"। प्राह्णे दिन के पूर्व भाग में। तूम्बीम् = 'तूम्बी' को। प्रकृत में 'तूम्बी' भिक्षापात्र के अर्थ में प्रयुक्त है। प्राप्तपरिचयपत्राः परिचय पत्र प्राप्त करने वाले, 'प्राप्तम् परिचयपत्रम् यैस्ते। (बहुव्रीहि)। आहूताः आमन्त्रित। तत्तेजसा संन्यासी के तेज से। धर्षित = भयभीत हुआ। विरराम = रुक गया। राजनीतिनिष्णातः = राजनीति में कुशल, 'राजनीतौ निष्णातः (तत्पुरुष)'। निष्णातः = 'नि + ष्णा + क्त (प्रथमा)'। दौवारिकतायोग्यः = द्वाररक्षक कर्म के लिये उचित। परीक्षिष्ये = परीक्षा करूँगा। स्वगतम् = मन में सोचना। इत आयाहि = इधर आओ। प्रकटम् = प्रकट रूप में।

टिप्पणी—(१) द्वारपाल एवम् संन्यासी का अत्यन्त रोचक वार्ता का संयोजन किया गया है। साथ ही द्वारपाल की कर्त्तव्य-परायणता निर्दिष्ट है।

(२) 'तत्तेजसेव धर्षितः' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संन्यासी—निरीक्षस्व त्वमधुना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन् जीविकां निर्वहसि, त्वं सहस्रं वाऽयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते।

दौवारिकः—आम्, अग्रे कथ्यताम्।

संन्यासी—वयञ्च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्वं रसायन-तत्वं विद्मः।

दौवारिकः—स्यादेवम्, अग्रे अग्रे ?

संन्यासी—तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धेः तदधुनैव परिष्कृतं पारद-भस्म तुभ्यं दद्याम्, यथा त्वं गुञ्जामात्रेणापि द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याकतुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।

हिन्दी अनुवाद—संन्यासी देखो, तुम इस समय द्वारपाल हो, प्राणों की

चिन्ता न करके जिविका प्राप्त करते हो, तुम हजार या दस हजार रुपये कभी भी इकट्ठा करोगे, यह किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं है।

दौवारिक—ठीक, आगे कहिए।

संन्यासी—हम तो संन्यासी हैं, जंगलों और पर्वत की गुफाओं में विचरण करते हैं, सभी रसायन तत्त्वों को जानते हैं।

दौवारिक—ऐसा हो सकता है, आगे-आगे कहिये।

संन्यासी—यदि तुम मुझको प्रवेश करने से न रोको, तो इसी समय तुम्हें परिष्कृत (शोधित) पारद भस्म दूँ, जिससे तुम रत्ती भर से भी मनों ताँबे को सोना बना सकते हो।

संस्कृत-व्याख्या—संन्यासी—निरीक्षस्व = अवलोकय, त्वम् = द्वारपाल !, अधुना = इदानीम्, दौवारिकोऽसि = द्वारपालोऽसि, प्राणान् = असून्, अगणयन् = अचिन्तयन्, जीविकाम् = जीवनवृत्तिम्, निर्वहसि = धारयसि, त्वम्, सहस्रं-त्राऽयुतं वा = अत्यधिकम्, मुद्राः = रूप्यकाणि, राशीकृताः = सञ्चिताः, कदापि, प्रापयसि = प्राप्तकरिष्यसि, इति = एतत्, कथमपि = केनापि प्रकारेण, न सम्भाव्यते = न सम्भवति।

दौवारिकः—आम् = वाढम्, अग्रे कथ्यताम् = अग्रे वदतु।

संन्यासी—वयञ्च संन्यासिनः = वयम् विरक्ताः, वनेषु = अरण्येषु, गिरि-कन्दरेषु पर्वत गुहासु च, विचरामः = भ्रमामः, सर्वम् = निखिलम्, रसायन-तत्वम् औषधिविशेषसामर्थ्यम्, विद्मः = जानीमः।

दौवारिकः—स्यादेवम् = भवेदेवम्, अग्रे-अग्रे, कथ्यताम् = कथयतु।

संन्यासी—तत् = तर्हि, यदि = चेत्, त्वम्, माम् = संन्यासिनम्, प्रविशन्तम् = प्रवेशं कुर्वन्तम्, न प्रतिरुन्धेः = न प्रतिवारयेः, तत् = तर्हि, अधुनैव = इदानी-मेव, परिष्कृतम् = शोधितम्, पारदभस्मं = रसविशेषम्, तुभ्यम् = द्वारपालाय, दद्याम = प्रयच्छेयम्, यथा = येन, त्वम् = द्वारपालः, गुञ्जामात्रेण = गुञ्जाप-रिभि = तेन, अपि, द्वापञ्चाशतसङ्ख्यातुलापरिमितम्, ताम्रम् = धातुविशेषम् जाम्बूनदम् = सवर्णम्, विधातुम् = निर्मातुम्, शक्नुयाः = समर्थ भवेः।

हिन्दी व्याख्या—निरीक्षस्व = देखो। दौवारिकोऽसि = द्वारपाल हो। प्राणान् = प्राणों को, 'प्राण' शब्द नित्य बहुवचन होता है। अगणयन् = न गिनते हुए,

'नञ् + √गंण् + शतृ (प्रथमा ए० व०)' । जीविकाम्=जीवन निर्वाहार्थं धन। निर्वहसि=प्राप्त करते हो। न सम्भाव्यते=संभव नहीं है। आम्=स्वीकृति सूचक। रसायनतत्वम्=रसायन तत्व को। 'रसायन' आयुर्वेदिक शब्द है। औषधियों से बनाये गये भस्म को रसायन कहते हैं। कुछ रसायन ऐसे भी होते हैं जिनसे ताँबे आदि को सुवर्णादि के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। विद्मः=जानते हैं। परिष्कृतम्=शोधित। पारदभस्म=विशेष प्रकार का रसायन। गुञ्जामात्रेण=रत्ती भर से ही। न प्रतिरुन्धेः=नहीं रोकते हो, 'प्रति +√रुधि, विधिलिङ् (सिप्)'। जाम्बूनदम्=सुवर्ण। विधातुम् बनाने में। शक्नुयाः=समर्थ हो सकते हो।

टिप्पणी—(१) संन्यासी द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिये सुवर्ण बनाने वाली पारद भस्म देने का लोभ देता है। यह राजनीति का एक अंग है।

(२) 'दौवारिकोऽसि' से व्यञ्जित होता है कि तुम अत्यन्त कष्ट से जीविका प्राप्त करते हो।

दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !। कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनञ्च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाताः, ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिव-गणास्तादृशाः। (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?

संन्यासी—(स्मित्वेद) अथ त्वं मां कं मन्यसे ?

दौवारिकः—अहं तु त्वामस्यैव ससेनस्याऽऽयातस्य अपजलखानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्य मध्य एव) धिग् धिग् !

दौवारिकः—कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये। तदादेशं पालयिस्यामि प्रभुवर्यस्य (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे, स एवाभिज्ञाय त्वया यथोचितं व्यवहरिष्यति।

ततः संन्यासी तुः—"त्यज, नाहं पुनरायास्यामि, नाहं पुनरेवं कथयि-

ष्यामि, महाशयोऽसि दयस्व दयस्व"—इति सहस्रधा समचकथत्, तथापि दौवारिकस्तु तमाकृष्य नयन्नेव प्रचलितः ।

हिन्दी अनुवाद—दौवारिक—अरे ! क्यों तू विश्वासघात और स्वामी से वञ्चना का उपदेश दे रहा है ? वे कोई और ही जार जात (स्वामी को धोखा देने वाले तथा 'घूस' लेने वाले) होते हैं, जो उत्कोच (घूस) के लोभ से स्वामी को छल कर अपने को प्रगाढ़ नरक में गिराते हैं, हम सब महाराज शिवाजी के गण (सेवक) ऐसे नहीं है । (संन्यासी का हाथ पकड़ कर) इधर आओ और सच-सच बताओ तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? अथवा किसके द्वारा भेजे गये हो ?

संन्यासी—(मुस्कराता हुआ सा) तो तुम मुझे क्या समझते हो ?

दौवारिक—मैं तो तुमको इसी सेनासहित आये हुये अफजल खाँ का—

संन्यासी—(बीच में ही रोककर) धिक्कार है, धिक्कार है ।

दौवारिक—अथवा किसी अन्य का गुप्तचर समझता हूँ । तो मैं अपने प्रभु के आदेश का पालन करूँगा । (हाथ खींचकर) दुर्गाध्यक्ष के समीप आओ । वे तुम्हें पहिचान कर जैसा उचित समझेंगे वैसा व्यवहार करेंगे ।

तब संन्यासी ने हजारों बार कहा—"छोड़ दो मैं पुनः नहीं आऊँगा ।" मैं ऐसा फिर नहीं करूँगा, आप उदार हैं, दया करिये ! दया करिये ।" तब पर भी द्वारपाल उसे खींचकर ले जाने लगा ।

संस्कृत-व्याख्या—हंहो = इति आश्चर्ये, कपटसंन्यासिन् = प्रवञ्चकयोगिन्, कथम्, विश्वासघातं = विश्वासविनाशम्, स्वामिवञ्चनञ्च = प्रभुप्रतारणम् च शिक्षयसि = उपदिशसि ? ते केचन, अन्ये = अपरे, भवन्ति = जायन्ते, जारजाताः = स्वैरजाताः, ये, उत्कोचलोभेन = कर्त्तव्यच्युतविधिनोपग्राह्यधनलोभेन, स्वामिनम् = प्रभुम्, वञ्चयित्वा = प्रतार्य, आत्मानम् = स्वम्, अन्धतमसे = घोरे नरके, पातयन्ति = प्रक्षिपन्ति, न वयम्, शिवगणाः = शिववीरस्य चाराः, तादृशाः = तथाविधाः । (संन्यासिनः करमुपगृह्य) इतस्तु = इतः आगच्छ, सत्यम् = अलीकम्, कथय = वद, कस्त्वम् = त्वं कोऽसि ? कुत आयातः = कुत्रस्य आगतः ? वा = आहोस्वित, केन प्रेषितः = कस्य प्रेरणयागतोऽत्र ।

संन्यासीः (स्मित्वेव) अथ=तावत, त्वम्=द्वारपालः, माम्=संन्यासिनम्, कम्, मन्यसे=जानासि ।

दौवारिकः—अहं तु, त्वाम्=संन्यासिनम्, अस्यैव=निकटस्थयैव, आयातस्य=आगतस्य, अपजलखानस्य=एतन्नामकस्य··· ।

संन्यासीः—(अवरुध्य मध्ये एव) धिक्तम् ।

दौवारिकः—कस्यापि=कस्यचिदपि, अन्यस्य=अपरस्य, वा=अथवा, गूढचरम्=गुप्तचरम्, मन्ये=जानामि, तदादेशम्=तर्हिण आदेशम्, पालयिष्यामि=पालनं करिष्यामि, प्रभूवर्यस्य=श्रीमतः स्वामिनः । (करमाकृष्य), आगच्छ=आयाहि, दुर्गाध्यक्षसमीपे=दुर्गपतिपार्श्वे, स एव=दुर्गाध्यक्ष एव, अभिज्ञाय=अवगम्य, त्वया=संन्यासिना, यथोचितम्=शासनादेशपूर्वकम्, व्यवहरिष्यति=व्यवहारं करिष्यति ।

ततः=तत्पश्चात्, संन्यासी=परिवाट्, तु "त्यज=मुञ्च, नाहम् पुनरेवं कथयिष्यामि=भूयरेवं भणिष्यामि, महाशयोऽसि=उदारहृदयोऽसि, दयस्व-दयस्व=दयां कुरु, दयां कुर्विति ।" सहस्रधा=बहुधा, समचकथत्=समवोचत्, तथापि, दौवारिकः=द्वारपालः, तु तमाकृष्य=संन्यासिनमाकृष्य, नयन्नेव=संकर्षन्नेव, प्रचलितः=संचलितः ।

हिन्दी व्याख्या—**हंहो**=आश्चर्य सूचक अध्याय । **स्वामिवञ्चनञ्च**=और स्वामी को ठगना । **शिक्षयसि**=सिखा रहे हो । **जारजाताः**=हरामजादे, पति के जीवित रहने पर स्त्री जब दूसरे पुरुष से संसर्ग करती है, तो उससे उत्पन्न संतति जारजात' कहलाती है—"अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्त्तरि गोलकः" । 'जारजात' स्वामिप्रवञ्चको एवम् उत्कोचलोभियों की निन्दा के लिये प्रयुक्त हुआ । **उत्कोचलोभेन**='घूस' के लोभ से । **वञ्चयित्वा**=ठगकर के । **आत्मानम्**=अपने को । **अन्धतमसे**=घोर नरक में, पुराणों में अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है उनमें से 'अन्धतमस' भी अन्यतम नरक है, जहाँ प्राणी को अति घोर यातनायें दी जाती हैं । **पातयन्ति**=गिराते हैं । **ससेनस्य**=सेना के सहित, 'सेनया सहितः तस्य (तत्पु०)' । **आयातस्य**=आये हुए (अफजलखान का विशेषण); 'आ √या क्त (षष्ठी एक वचन)' । **विनिवार्य**=रोककर, वि निं + √वृ + क्त्वा (ल्यप्)' । **गूढचरम्**=गुप्तचर (जासूस) । **पालयिष्यामि**=

पालन करूँगा। दुर्गाध्यक्षसमीपे=दुर्ग के अध्यक्ष के पास, दुर्ग (किला) की सम्पूर्ण सुरक्षा एवं उचित व्यवस्था करने वाला दुर्गाध्यक्ष होता था, वह अपने विषय पर पूर्ण अधिकार रखता था। अभिज्ञाय=जानकर, अभि √ज्ञा+ल्यप्। व्यवहरिष्यति=व्यवहार करेगा। त्यज=छोड़ दो। आयास्यामि=आऊँगा। महाशयोऽसि=विशाल हृदय वाले हो। दयस्व=दया करो। सहस्रधा=अनेकों बार। समचकथत्=कहा। नयन्नेव=ले जाता हुआ ही। प्रचलितः=चल पड़ा।

टिप्पणी—(१) द्वारपाल के चरित्र को बहुत प्रभावशाली ढङ्ग से प्रस्तुत किया गया है। उसकी सजगता सराहनीय है। उसकी निर्लुब्धता प्रशंसनीय है।

(२) संवाद योजना अच्छी एवं स्वाभाविक है।

अथ यावद् द्वारस्थ-स्तम्भोपरि संस्थापितायां काच-मञ्जूषायां जाज्वल्यमानस्य प्रबल-प्रकाशस्य दीपस्य समीपे समायातः, तावत्संन्यासिनोक्तम्—'दौवारिक! अपि मां पूर्वमपि कदाऽप्यद्राक्षीः ?" ततो दौवारिकः पुनस्तं निपुणं निरीक्षमाणो मन्द्रेण स्वरेण, अरुणापाङ्गाभ्यां लोचनाभ्याम्, गौरतरेण वर्णेन, चुम्बितयौवनेन वयसा, निर्भीकेण हारिणा च मुखमण्डलेन पर्यचिनोत्। भुशुण्डी-समुत्तोलन-किण-कर्कश-करग्रहमपहाय, सलज्ज इव च नम्रीभूय, प्रणमन्नुवाच—"आः! कथं श्रीमान् गौरसिंह आर्यः? क्षम्यतामनुचितव्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य"। तदवधार्य तस्य पृष्ठे हस्तं विन्यस्यन् संन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत—"दौवारिक!, मया बहुशः परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि चेति। त्वादृक्षा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयञ्च विजयन्ते। तव प्रामाणिकतां जानीत एवाऽत्रभवान् प्रभुवर्य्यः, परमहमपि विशिष्य कीर्तयिष्यामि। निर्दिश तावत् कुत्र श्रीमान्? किञ्चानुतिष्ठति?

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद जब द्वार पर स्थित खम्बे के ऊपर रखी हुई काँच की पेटिका में जल रहे तीव्र प्रकाश वाले दीपक के समीप में आया, तब

संन्यासी ने कहा—"द्वारपाल ! क्या तुमने इसके पहले भी मुझको कभी देखा था ? तब द्वारपाल पुनः उस (संन्यासी को अच्छी प्रकार से देखकर, (संन्यासी) के गम्भीर स्वर से, रक्त नेत्र प्रान्त वाले नयनों से, अधिक गौरे रङ्ग से प्राप्त होने वाली युवावस्था से तथा निर्भीक और मनोहर मुखमण्डल से उसे पहचान लिया। बन्दूक के उठाने से पड़े हुए घट्टों से कठोर हाथ को (संन्यासी के हाथ से) अलग करके लज्जित हुआ सा नम्र होकर प्रणाम करते हुए बोला—"अरे ! क्या आप श्रीमान् गौरसिंहजी आर्य हैं ? इस बेचारे गँवार के अनुचित व्यवहार को क्षमा कीजिये।" यह सुनकर द्वारपाल के पीठ पर हाथ फेरता हुआ संन्यासी वेषधारी गौरसिंह बोला—द्वारपाल ! मैं तुम्हारी अनेक बार परीक्षा ले चुका और यह समझ लिया कि तुम यथायोग्य पद पर ही नियुक्त किये गये हो तुम्हारे समान लोग ही स्वामी के पुरस्कार प्राप्त करने वाले होते हैं और दोनों लोकों को जीतते हैं। तुम्हारी प्रामाणिकता को प्रभुवर शिवाजी जानते ही हैं, फिर भी मैं विशेष रूप से तुम्हारी प्रशंसा करूँगा। तो बताओ कहाँ हैं श्रीमान् ? और क्या कर रहे हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, यावद् = यदा, द्वारस्थस्तम्भोपरि = द्वारेस्थितस्य स्तम्भस्य उपरिभागे, संस्थापितायाम् = विक्षिप्तायाम्, काचमञ्जुषायाम् = काचपेटिकायाम्, जाज्वल्यमानस्य = प्रज्वलनशीलस्य, प्रबलप्रकाशस्य = तीव्रप्रकाशस्य, दीपस्य = प्रदीपस्य, समीपे = पार्श्वे, समायातः = समागतः, तावत् = तदा, संन्यासिना = संन्यासि वेषधारिणा, उक्तम् = अभिहितम्, "दौवारिक = द्वारपाल, अपि किम्, माम् = सन्यासिनम्, पूर्वमपि = प्रागपि, कदापि = कदाचित्, अद्राक्षीः = अपश्यः ?" ततः = तदा, दौवारिकः = द्वारपालः, पुनः = भूयः, तम् = संन्यासिनम्, निपुणम् = सम्यक्, निरीक्षमाणः = पश्यन्, मन्द्रेण = गम्भीरेण, स्वरेण = गिरा, अरुणापाङ्गाभ्याम् = रक्तनेत्रप्रान्तभागाभ्याम्, लोचनाभ्याम् = नेत्राभ्याम्, गौरतरेण = अतिगौरेण, वर्णेन = रागेण, चुम्बितयौवनेन = स्पृष्ट यौवनेन, वयसा = अवस्थया, निर्भीकेण = भयरहितेन, हारिणा = मनोहारिणा, च, मुखमण्डलेन = वदनमण्डलेन, पर्यचिनोत् = परिचितवान्। भुशुण्ड्याः = आग्नेयास्त्रस्य, समुत्तोलनेन = उत्थापनेन, यः, किणः = अङ्कः, तेन, कर्कशस्य = कठोरस्य, करस्य = हस्तस्य, ग्रहम् = ग्रहणम्, अपहाय = त्यक्त्वा, सलज्ज इव =

संकुचित इव, च, नम्रीभूय = नतं भूत्वा, प्रणमन् = अभिवदन्, उवाच = जगाद— 'आः ! कथम् = किम्, श्रीमान् = श्री सम्पन्नः, गौरसिंह आर्य = पूर्ववर्णित गौर-ब्रह्मचारिवटो (असि) ? तदवधार्य = तच्छ्रुत्वा, तस्य = द्वारपालस्य, पृष्ठे = पृष्ठभागे, हस्तम् = करम्, विन्वस्यन् = संप्रसारयन्, संन्यासिरूपः = संन्यासि वेषधारी, गौरसिंहः एतन्नामक-वटुः, समवोचत् = उवाच—दौवारिक = द्वार-पाल । मया = गौरसिंहेन, बहुशः = अनेकशः, परीक्षितोऽसि = सम्यग्वीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि अवबुद्धोऽसि, यथायोग्ये = यथोचिते, एव, पदे = स्थाने, नियुक्तोऽसि = स्थापितोऽसि, च इति । त्वादृक्षा एव = त्वात्सदृशा एव, प्रभूणाम् = स्वामि-नाम्, पुरस्कारभाजनानि = उपहारपात्राणि, भवन्ति = जायन्ते, लोकद्वयञ्च = ऐहिकं पारलौकिकञ्च, विजयन्ते = विजयं प्राप्नुवन्ति । तव = भवतः, प्रामाणिकं-ताम् वास्तविकताम्, जानीते = जानाति, एव, अत्रभवान् = श्रीमान्, प्रभुवर्य्यः = स्वामिपदः, परम् = किन्तु, अहमपि = वटुरपि, विशेष्य = विशेषरूपेण, कीर्तं-यिष्यामि = प्रशंसा करिष्यामि । निर्दिश = ज्ञापय, तावत्, कुत्र, श्रीमान् = लक्ष्मीवान् शिववीरः ? किञ्च = अपरञ्च किम्, अनुतिष्ठति = करोति ।

हिन्दी व्याख्या—द्वारस्थस्तम्भोपरि = द्वार पर स्थित खम्बे के ऊपर, स्तम्भ = 'खम्बा' । द्वारे स्थितः यः स्तम्भः तस्य उपरि' । संस्थापितायाम् = रखी हुई । काचमञ्जूषायाम् = कांच की पेटिका अथवा बड़ी 'लालटेन' के समान दीपमञ्जूषा । जाज्वल्यमानस्य = जलने वाले, (दीपक का विशेषण) ।' √ज्वल् + शानच् । (यङन्त, षष्ठी एकवचन)' । प्रबलप्रकाशस्य = तीव्र प्रकाश वाले । समायातः = आया । अद्राक्षीः = देखा था, '√दृश् + लुङ् (सिप्)' । निपुणम् = भली प्रकार से । निरीक्षमाणः = 'निर + √ईक्ष + शानच्' । मन्द्रेण = गम्भीर । अरुणापाङ्गाभ्याम् = ईषद् रक्त नेत्र प्रान्त वाले (नेत्र का विशेषण), अरुणौ अपाङ्गौ ययोस्तौ, ताभ्याम् (बहुव्रीहि)' । गौरतरेण = अधिक गौर (वर्ण का विशेषण) । चुम्बितयौवनेन = यौवन के प्रारम्भिक (वयसा का विशेषण), 'चुम्बितं यौवनम् येन, तत् येन (बहुव्रीहि)' । वयसा = अवस्था से । निर्भीकेण = निडर । हारिणा = मनोहर । मुखमण्डलेन = मुखमण्डल से । पर्यचिनोत् = पहचान लिया, 'परि + √चिञ् (संज्ञाने) + लङ् (तिप्)' । भुशुण्डी समुत्तोलनकिणकर्क-

शकरग्रहम्=बन्दूक के उठाने से बने हुये चिह्न के कारण कठोर हाथ की पकड़ को। भुशुण्डी=बन्दूक, समुत्तोलन=उठाना, किण=बने हुये घट्टे, कर्कश=कठोर, करग्रह=हाथ की ग्रहण (पकड़) 'भुशुण्ड्याः समुत्तोलनेन यः किणः तेन कर्कशः यः करः तस्य ग्रहम्' (तत्पु०)। सलज्ज इव=लज्जित हुए के समान। नम्रीभूय=नम्र होकर, नम्र से 'च्वि' प्रत्यय। प्रणमन्=प्रणाम करता हुआ, 'प्र + नम् शतृ'। क्षम्यताम्=क्षमा कीजिये। ग्राम्यवराकस्य=बेचारे गँवार का, 'ग्रामे भवः ग्राम्यः, ग्राम्यश्चासौ वराकः, ग्राम्यवराकः तस्य (तत्पु०)'। तदवधार्य=यह सुनकर, 'अव + धृ ल्यप्'। विन्यस्यन्=फेरता हुआ। समवोचत्=बोला, सम् + वच् लङ् (तिप्)'। बहुशः=अनेक बार। परीक्षितोऽसि=परीक्षित हो चुके हो। ज्ञातोऽसि=जान लिये गये हो। यथायोग्ये=यथोचित। नियुक्तोऽसि=नियुक्त किये गये हो। त्वद्वंशाः=तुम्हारे समान। पुरस्कारभाजनानि=पुरस्कार प्राप्त करने वाले। लोकद्वयञ्च=इहलोक और परलोक दोनों को। विजयन्ते=जीतते हैं, 'वि + √जि लट् (झ)'। 'वि' उपसर्ग के कारण आत्मनेपद हुआ है 'विपराभ्यांजेः'। विशिष्य विशेष प्रकार से। कीर्तयिष्यामि=कहूँगा। निर्दिश=बताओ। अनुतिष्ठति=कर रहे हैं।

टिप्पणी—(१) काचमञ्जूषा—शीशे की बनी हुई पेटिका होती है, जिसके अन्दर दीपक जलता रहता है, 'लैम्प' का बड़ा रूप समझा जा सकता है। द्वारपाल के फाटक पर खम्बे के ऊपर वही जल रहा था।

(२) गौरसिंह इसके पूर्व भी जा चुका था और परिचित था किन्तु इस समय वह केवल द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिये संन्यासी का वेष धारण करके गया था और द्वारपाल उसकी परीक्षा में पूरी तरह खरा उतरा। इसमें राजनीतिक भावना निहित हैं।

ततः पुनर्बद्धाञ्जलेर्दौवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य प्रधान-द्वारमुल्लङ्घ्य, नेदीयस्यामेकस्या निम्बतरु-तल-वेदिकायां सहचरं समुपवेश्य, तुम्बीमेकतः संस्थाप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरण-काषायवसनं चैकतो निम्बशाखायामवलम्बय्य, पट-खण्डेन पक्ष्मणोः कपोलयोः कर्णयोर्भ्रुवो-

श्चिबुके नासायां केशप्रान्तेषु च छुरितामिव विभूतिं प्रोञ्छ्य स्कन्धयोः पृष्ठे च लम्बमानान् मेचकान् कुञ्चितान् कचानाबध्य, सहचरपोटलिकात उष्णीषमादाय, शिरसि चाऽऽधाय, सुन्दरमुत्तरीयं चैकं स्कन्धयोर्निक्षिप्य, दौवारिक-निर्देशानुसारं श्रीशिववीरालंकृतामट्टालिकां प्रति प्रतिष्ठत ।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर हाथ जोड़े हुए द्वारपाल के द्वारा कान में कुछ कही गई बात को सुनकर (गौरसिंह) प्रधान द्वार को लाँघकर पास के ही एक नीम के वृक्ष के नीचे चबूतरे पर (अपने) सहचर (बालक) को बैठाकर तुम्बी को एक ओर रखकर अपने अँगरखे को ढकने वाले कषाय (गेरुए) वस्त्र को एक ओर नीम की शाखा में टाँगकर, रुमाल से पलकों, गालों, कानों, भौहों, दाढ़ी, नासिका और बालों में लगी हुई भस्म को पोंछकर पीठ और कन्धों पर लटकते हुए काले-काले घुंघराले बालों को सँवार कर, सहचर की गट्ठर से एक पगड़ी निकालकर, सिर पर रखकर, एक सुन्दर उत्तरीय कन्धों पर डाल कर द्वारपाल के निर्देश के अनुसार श्री शिववीर के द्वारा अलंकृत अट्टालिका की ओर चल दिया ।

संस्कृत-व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, पुनः = भूयः, बद्धाञ्जले = करबद्धस्य, दौवारिकस्य = द्वारपालस्य, किमपि = किञ्चित्, कर्णे = श्रोत्रे, कथितम् = अभिहितम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, प्रधानद्वारम् = मुख्यद्वारम्, उल्लंघ्य = लङ्घयित्वा, नेदीयस्याम् = समीपवर्तिन्याम्, निम्बतरुतलवेदिकायाम् = निम्बवृक्षाधश्चत्वरे, सहचरम् सहयात्रिम्, समुपवेश्य = समुपस्थाप्य, तुम्बीम् = तुम्बीपात्रम्, एकतः = भागैके, संस्थाप्य निक्षिप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम् = स्वकञ्चुकाच्छादनकाषायवस्त्रम्, च, एकतः = एकस्मिन्, निम्बशाखायाम् = निम्बविटपे, अवलम्ब्य = अवलम्बितं कृत्वा, पटखण्डेन = लघुवस्त्रेण, पक्ष्मणोः = अक्षिलोम्नोः, कपोलयोः = गण्डयोः, कर्णयोः = श्रोत्रयोः, भ्रुवोः = भ्रकुट्योः, चिबुके = चिबुकप्रान्ते, नासायाम् = नालिकायाम्, केशप्रान्तेषु च = कुन्तलेषु च, छुरितामिव = संलग्नामिव, विभूतिम् भस्म, प्रोञ्छ्य = परामृज्य, स्कन्धयोः = अंसदेशयोः, पृष्ठे = पृष्ठभागे, लम्बमानान् = अवलम्बितान्, मेचकान् = कृष्णवर्णान् कुञ्चितान् = कुटिलान्, कचान् = केशान्, आबध्य = संप्रसाध्य, सहचरपोटलिकात् =

सह्यात्रिपुटकात्, उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम्, आदाय = गृहीत्वा, शिरसि = मूर्ध्नि, च, आदाय = संस्थाप्य, एकम्, सुन्दरम् = अच्छम्, उत्तरीयम् = आच्छादनपटम्, स्कन्धयोः = अंसयोः, निक्षिप्य = स्थापयित्वा, दौवारिकनिर्देशानुसारम् = द्वारपालकथनानुसारेण, श्रीशिववीररालंकृताम् = श्रीशिववीरयुक्ताम्, अट्टालिकाम् = प्रासादम्, प्रति, प्रतिष्ठत = प्राचलत् ।

हिन्दी व्याख्या—बद्धाञ्जलेः = हाथ जोड़े हुए (द्वारपाल का विशेषण); 'बद्धा अञ्जलिः येन सः तस्य' (बहुव्रीहि) । कथितम् = कहे हुए को (द्वारपाल के कथन को) । प्रधानद्वारम् मुख्य द्वार को । उल्लङ्घ्य पार करके, 'उत् √लँघि + ल्यप्' । नेदीयस्याम् = अति निकट के ही । निम्बतरुतलवेदिकायाम् = नीम के पेड़ के नीचे के चबूतरे पर, 'निम्बस्य तरोः तले या वेदिका तस्याम् (तत्पु०)' । वेदिका = चबूतरा । सहचरम् = साथ के बालक को, 'सह चरतीति सहचरः तम् ।' '√चर + अच्' । समुपवेश्य = बैठाकर, 'सम् उप + √विश् + ल्यप् ।' एकतः = एक ओर । संस्थाप्य = रखकर, सम् + √स्थापि + ल्यप् । स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम् अपने अङ्गरक्षिका (अंगरखा) को ढकने वाले गेरुए वस्त्र को । 'स्वस्य अङ्गरक्षिका तस्याः आवरण रूपं यत् काषायवसनम् तत् (तत्पु०)' । निम्बशाखायाम् = नीम की डाल में । अवलम्ब्य = लटकाकर । पटखण्डेन = वस्त्रखण्ड (रूमाल) से । पक्ष्मणोः = पलकों के । 'अक्षिलोम्नोः पक्ष्माक्षि लोम्नि' (अमरकोष) । चिबुके = ठोडी में । छुरिताम् = व्याप्त । विभूतिम् = भस्म को । प्रोञ्छ्य = पोंछकर, 'प्र + √उञ्छि (उञ्छे) + ल्यप्' । लम्बमानान् = लटकने वाले (बालों का विशेषण) । मेचकान् = कृष्णवर्ण के, 'नीलसितश्यामकालश्यामल मेचकाः' (अमरकोष) । कुञ्चितान् = टेढ़े-मेढ़े या घुंघराले । कचान् = बालों को । आबध्य = बाँधकर । उष्णीषम् = पगड़ी को । आधाय = रखकर या बाँधकर । उत्तरीयम् = दुपट्टे को । निक्षिप्य = डालकर, 'नि + √क्षिप् + ल्यप् । दौवारिकनिर्देशानुसारम् = द्वारपाल के निर्देश के अनुसार । श्रीशिववीरालंकृताम् = श्रीवीर शिवाजी से अलंकृत, 'श्री शिववीरेण अलंकृताम्' । अट्टालिकाम् प्रति = अट्टालिका की ओर । प्रतिष्ठत = प्रस्थान कर दिया ।

टिप्पणी—गौरसिंह संन्यासी के वेष के समग्र प्रसाधन को अलग करके

सहचर के साथ ही छोड़ दिया और स्वयम् साधुवेष में शिववीर से मिलने के लिये चल पड़ा ।

शिववीरस्तु कस्याञ्चिच्चन्द्रचुम्बिन्यां सान्द्र-सुधासार-संलिप्तभित्ति-कायां धूपधूपितायां गजदन्तिकावलम्बित-विविध-च्छुरिकाखड्गरिष्टि-कायां स्वर्ण-पिञ्जर-परिलम्बमान-शुक-पिक-चकोर-सारिका-कलकूजि-तायामट्टालिकायां सन्ध्यामुपास्योपविष्ट आसीत् । परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्वं पराक्रमां श्यामामपि यशःसमूह-श्वेतीकृत-त्रिभुवनां कुशा-सनाश्रयामपि सुशासनाश्रयां पठन-पाठनादि-परिश्रमानभिज्ञामपि नीति-निष्णातां स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनां ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि धर्म-धौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां शोभित-विग्रहामपि दृढ़-सन्धि-बन्धां कलितगौरवामपि कलितलाघवां विशाल-ललाटां प्रचण्ड-बाहुदण्डां शोणापाङ्गां कम्बुग्रीवां सुनद्धस्नायु वर्तुल-श्यामश्मश्रुं धारि-ताकृतिमिव वीरतां विग्रहिणीमिव धीरतां समासादित-समर-स्फूर्तिं मूर्ति दर्शं दर्शं परं प्रसादमासादयन्तस्तस्य वयस्याः कटानध्यवसन् ।

हिन्दी अनुवाद—वीर शिवाजी किसी चन्द्रचुम्बिनी, गाढ़े चूने से लिपी दीवालों वाली, धूप से सुगन्धित, (दीवालों में गड़ी हुई) खूंटियों में अनेक प्रकार के छुरे, तलवार तथा यष्टिका आदि लटक रहे थे जिसमें तथा सोने के पिंजड़े में लटक रहे शुक, कोयल, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से व्याप्त अट्टालिका (प्रासाद) में सन्ध्यापूजन करके बैठे हुए थे । उनके चारों ओर उन्हीं के साथी बैठे हुए थे, जो—अल्पकाय होती हुई भी महत्पराक्रमशालिनी, श्यामा होती हुई भी कीर्ति-समूह से समस्त त्रिभुवन को धवलित करने वाली, कुशासन पर बैठी हुई भी सु-शासन का आश्रय, पठन-पाठन आदि के परिश्रम से अनभिज्ञ होती हुई भी नीति में पारंगत, स्थूल दर्शनों वाली होती हुई भी सूक्ष्म दृष्टि वाली, (म्लेच्छों को) हिंसा व्यसनों वाली होती हुई भी धर्म के भार को धारण करने वाली, कठिन होती हुई भी कोमल, उग्र होती हुई भी शान्त, सुन्दर विग्रह (शरीर अथवा लड़ाई) वाली होती हुई भी दृढ़ सन्धिबन्धों वाली

गौरवशालिनी होती हुई भी लघु दर्शन वाली, विशाल ललाट वाली, प्रबल भुजाओं वाली, रक्त नेत्रों वाली, कम्बु (शंख) सदृश कण्ठों वाली, सुगठित स्नायु (नसों) वाली, वर्तुलाकार श्यामल दाढ़ी मूँछों वाली, मूर्तिमती वीरता के समान, शरीर धारिणी धीरता के समान और समरभूमि में स्फूर्ति प्रकट करने वाली मूर्ति (के समान) देह को देख-देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

संस्कृत-व्याख्या—शिववीरस्तु=शिववीरः राजा तु, कस्याञ्चित् चन्द्र-चुम्बित्याम्=अत्युच्चायाम्, सान्द्रसुधासारसंलिप्तभित्तिकायाम्=सघनश्वेत-चूर्णद्रव्यरूषितमित्याम्, धूपधूपितायाम्=सुगन्धसुवासितायाः, गजयन्तिकाम्=भित्तिशङ्कौ, अवलम्बिताः=प्रलम्बिताः, विविधाः=अनेकप्रकाराः छुरिकाखड्ग-रिष्टिकाः=विविधशस्त्राणि, यस्याम् सा, तस्याम्, सुवर्णपिञ्जरेषु=हैमनिर्मितपिञ्जरेषु, परिलम्बमानाम्=निवसताम्, शुकपिकचकोरसारिकाणाम्=विविधपक्षिणाम्, कलकूजितैः=मधुरशब्दैः, पूजिता=भूषिता या अट्टालिका=प्रासादः तस्याम्, सन्ध्याम्=सन्ध्यावन्दनादिकृत्यम्, उपास्य=सम्पाद्य, उपविष्टः=तिष्ठितः आसीत्। परितश्च=समन्तात्, तस्यैव=शिववीरस्यैव, खर्वाम्=ह्रस्वाम्, अपि, अखर्वपराक्रमाम्=अतिशयपराक्रमाम्, श्यामामपि=कृष्णामपि, यशः समूह-श्वेतीकृत्य त्रिभुवनाम्=कीर्तिकूटधवलित लोकत्रयाम्, कुशासनाश्रयामपि=दर्भविष्टरस्थितामपि, सुशासनाश्रयाम्=सुराज्याश्रयाम्, पठनपाठनादिपरिश्रमानभिज्ञामपि=अध्ययनाध्यापनश्रमापरिचितामपि, नीति-निष्णाताम्=नीतिमतीम्, स्थूलदर्शनामपि=विशालदर्शनवतीमपि, सूक्ष्मदर्शनाम्=कुशाग्रबुद्धियुक्ताम्, ध्वंसकाण्डव्यसनिनमपि=विधर्मिहिंसा व्यसनिनीमपि, धर्मधौरेयीम्=धर्मभारधारिणीम्, कठिनामपि=कठोरामपि, कोमलाम्=आक्लिष्टाम्, उग्रामपि=दुर्धर्षामपि, शान्ताम्=शान्तिमतीम् (दयादिगुणयुक्ताम्, शोभित-विग्रहामपि=सुशरीरामाहोस्वित् सुसमरवतीम्, अपि, दृढसन्धि-बन्धाम्=दृढ़-शरीरावयवसन्धानयुक्तामाहोस्वित् शत्रुभिः सह स्थिर सन्धियुक्ताम्, कलितगौरवामपि=गौरवान्वितामपि, कलितलाघवम्=चातुर्यसम्पन्नाम्, विशाललाटाम्=आयतमस्तकाम्, प्रचण्डबाहुदण्डाम्=प्रबलभुजदण्डाम्, शोणापाङ्गाम्=रक्तकटाक्षाम्, कम्बूग्रीवाम्=शंखतुल्यकण्ठाम्, सुनद्धस्नायुम्=प्रश्लिष्ट स्नायुतन्तुम्, वर्तुलश्यामश्मश्रुम्=वर्तुलाकारकृष्णश्मश्रुम्, धारिताकृतिम्=गृही-

ताकृतिम्, इव, वीरताम्=शूरताम्, विग्रहिणीम्=शरीरवतीम्, वीरताम्, समासादितसमरस्फूर्तिम्=लब्धाध्वरस्फूर्तिम्, मूर्तिम्=आकृतिम्, दर्शम् दर्शम् =दृष्ट्वा-दृष्ट्वा, परम्=उत्कृष्टम्, प्रसादम् प्रसन्नताम्, आसादयन्तः= प्राप्नुवन्तः तस्य=शिववीरस्य, वयस्याः=मित्राणि, कटान्=तृणनिर्मितोपवेश-नानि, अध्यवसन्=आवसन् ।

हिन्दी व्याख्या—चन्द्रचुम्बिन्याम्=चन्द्रमा को चूमने वाली अर्थात् अत्यन्त ऊँची। सान्द्रसुधासारसंलिप्तभित्तिकायाम्=घने चूने से लिपि हुई दीवालों वाली (अट्टालिका का विशेषण)। सान्द्र=घना, सुधासार=सफेदी या चूना, संलिप्त=पुती हुई, भित्तिका=दीवाल। सान्द्रेण सुधासारेण संलिप्ताः भित्तिकाः यस्याम् सा, तस्याम् (बहुव्रीहि)। धूपधूपितायाम्=धूप से सुगन्धित। गजदन्तिकावलम्बितविविधच्छुरिकाखड्गरिष्टिकायाम्=खूंटियों में टंगे हुए थे अनेक प्रकार के छुरी, तलवार तथा रिष्टिका आदि शस्त्र जिसमें (अट्टालिका का विशेषण)। गजदन्तिका=खूँटी। अवलम्बित=लटकी हुई, छुरिका=छुरी, खड्ग=तलवार, रिष्टिका=अस्त्रविशेष। गजदन्तिकायाम् अवलम्बिताः विविधाः छुरिकाः, खड्गाः, रिष्टिकाश्च यस्याम् सा तस्याम् (बहुव्रीहि)'। 'सुवर्णपिञ्जर···कूजितायाम्'=सोने के पिंजरे में स्थित शुकों, कोयलों, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से युक्त (अट्टालिका का विशेषण)। 'सुवर्ण-पिञ्जरेषु परिलम्बमानानां शुकपिकचकोरसारिकाणां कलकूजितैः पूजितायाम् (तत्पु०)'। अट्टालिकायाम्=प्रासाद में। सन्ध्याम्=सन्ध्यापूजन आदि (को)। उपास्य=सम्पादित करके, 'उप √आस्+ल्यप्'। उपविष्टः बैठे हुए, 'उप+√विश्+क्त'। खर्वामपि=ह्रस्व (लघु) होती हुई भी। यहाँ से 'मूर्ति' तक सभी स्त्रीलिंग द्वितीयान्त शब्द शिवाजी की मूर्ति के विशेषण हैं। अखर्वपरिक्रमाम्=अत्यधिक पराक्रम वाली। 'अखर्वः पराक्रमः यस्याः सा ताम्, (बहुव्रीहि) 'अखर्वः पराक्रमः अस्याः' इस विग्रह में विरोध भासित होता है क्योंकि खर्व में अखर्वः का पराक्रम कैसे हो सकता है। अतः प्रथम विग्रह (अखर्वः पराक्रमः यस्याम्) से परिहार हो जाता है। श्यामाम् अपि यशः समूह-श्वेतीकृतत्रिभुवनाम्=श्यामल होती हुई भी कीर्ति समूह से तीनों लोकों को धवलित करने वाली। श्यामलता से धवलित नहीं किया जा सकता

(विरोध), कीर्ति समूह की श्वेतिमा से धवलित किया गया है (विरोध परिहार)। 'यशः समूहेन श्वेतीकृत त्रिभुवनम् यया सा ताम् (बहुव्रीहि)'। श्वेतीकृत् =अश्वेत को श्वेत कर दिया गया है — श्वेत से 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। कुशासनाश्रयाम् अपि सुशासनाश्रयाम्=कु (खराब) शासन का आश्रय होती हुई भी सु (सुन्दर) शासन का आश्रय है (विरोध), कुश के आसन के आ य वाली होती हुई भी सु शासन का आश्रय (विरोध परिहार)। इसी क्रम में विग्रह --'कुत्सितम् शासनम् आश्रयो यस्याः, सा ताम् -- कुशासनाश्रयाम् (बहुव्रीहि)। (पक्ष में) कुशानाम् आसनम् आश्रयो यस्याः सा ताम्। शोभनम् शासनम् आश्रयो यस्याः सा ताम्। (बहुव्रीहि)। शासनम्=शास्यते अनेनेति शासनम् '√शास् घञ्। पठनपाठनादिपरिनीतिनिष्णाताम्=पठन-पाठन आदि के परिश्रम से अनभिज्ञ होती हुई भी। पठन-पाठनादीनाम् परिश्रमेण अनभिज्ञा या सा ताम् (तत्पु०)। नीतिनिष्णाताम्=नीति में निष्णात, 'नीतौ निष्णाता ताम्'। बिन पठन-पाठन के नीति में निष्णात कैसे ? (विरोध) पठन-पाठन रूप कर्म (ब्राह्मण कर्म) न करते हुए नीति में निष्णात है (विरोध) (परिहार)। निष्णात='नि + √स्ना + क्त (टाप्-स्त्री लि०)। स्थूलदर्शनाम् अपि = देखने से स्थूल होने पर भी, 'स्थूलम् दर्शनम् यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। सूक्ष्मदर्शनम् -- सूक्ष्म दृष्टि वाली अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचार वाली। स्थूल दर्शन (नेत्र) वाली सूक्ष्म दर्शन वाली कैसे हो सकती है ? (विरोध)। देखने में स्थूल अथवा स्थूल (विशाल) नेत्रों वाली तथा सूक्ष्म दृष्टि (अति तीक्ष्ण बुद्धि) वाली (विरोध परिहार)। ध्वंसकाण्डव्यसनिनीम् अपि=हिंसा आदि के व्यसन से युक्त होती हुई भी (विरोध), विधर्मियों या अनार्यों की हिंसा की व्यसनी होती हुई भी (विरोध परिहार) 'ध्वंसकाण्डस्य व्यसनम् अस्ति यस्यां तादृशीम् (बहुव्रीहि)। 'व्यसन + इन्' -- व्यसनिन् = अभ्यस्त धर्मधौरेयीम् -- धर्म के भार को धारण करने वाली। धौरेयीम्='धुर + दयञ् + ङीप् (स्त्रियाम्)'। कठिनाम् अपि कोमलाम् =कठिन होती हुई भी कोमल है। कठिन और कोमल का विरोध स्वाभाविक है। क्योंकि दुर्धर्षमय कठिन और नर्म विभूषित कोमल होता है अतः विरोध स्पष्ट है। इसका परिहार इस प्रकार है -- शरीर का स्पर्श अतिकठोर है तथा हृदयगत भाव अत्यन्त कोमल हैं। उग्राम् अपि शान्ताम् -- उग्र होती हुई भी

शान्त। उग्र और शान्त का भी स्वाभाविक विरोध है। दुर्धर्षों = अत्याचारियों और विधर्मियों के लिये उग्र स्वभाव वाली तथा सदाचारियों और धर्मानुयायियों के लिये शान्त (दयामय) है। शोभितविग्रहाम् अपि = सुन्दर संग्राम वाली होती हुई भी (विरोध), सुन्दर शरीर वाली (विरोध परिहार), विग्रह = युद्ध अथवा शरीर 'शोभितः विग्रहः यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। दृढ़सन्धिबन्धाम् = सुदृढ़ सन्धिबन्धों वाली। सन्धिबन्ध = अवयव-संस्थान अथवा मैत्री सम्बन्ध। सुन्दर संग्राम वाली है तो दृढ़सन्धि (मैत्री) बन्ध वाली कैसे हो सकती है (विरोध)? सुन्दर शरीर वाली तथा दृढ़ अवयव-संस्थानों वाली (विरोध परिहार)। कलितगौरवम् अपि = गौरवशालिनी होती हुई भी। 'कलितम् गौरवम् यया सा ताम् (बहुव्रीहि)'। कलितलाघवाम् = लघुता से युक्त है (विरोध पक्ष), चतुरता से युक्त है (विरोध परिहार)। गौरव लाघव का विरोध स्पष्ट होते हुए भी गौरव से गम्भीरता और लाघव से चतुरता का अर्थ करने पर विरोध का परिहार हो जाता है। यहाँ तक सम्भावित विरोध का कथन किया गया है। विशाललला-टाम् = विशाल ललाट वाली। प्रचण्ड-बाहुदण्डाम् = प्रबल भुजदण्डों वाली। शोणापाङ्गाम् = रक्तिम नेत्रों वाली, शोणे अपाङ्गे यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि)। कम्बुग्रीवाम् = शंख तुल्य कण्ठ वाली। 'कम्बु इव ग्रीवा यस्याः सा ताम्'। सुनद्धस्नायुम् = सुसंश्लिष्ट नसों वाली। वर्तुलश्यामश्मश्रुम् = गोल और काली दाढ़ी मूँछों वाली। वर्तुल = गोला। श्मश्रु = दाढ़ी-मूँछ। 'वर्तुलं श्यामं च श्मश्रुम् यस्याः सा ताम्' (बहुव्रीहि)। धारिताकृतिम् = आकृति को धारण करने वाली, धारिता आकृति यया सा ताम् (बहुव्रीहि)। धारिता = √'धृ + णिच् + क्त (स्त्रीलिङ्ग टाप्)'। विग्रहिणीम् = शरीर धारिणी। समासादितसमरस्फूर्तिम् = समर भूमि में स्फूर्ति प्राप्त करने वाली। समासादित = प्राप्त कर लिया है, 'सम् + आ + √षद् + क्त'। समर = युद्ध, स्फूर्ति = फुर्ती। समासादित समरे स्फूर्तिः यया ताम् (बहुव्रीहि)'। दर्शं दर्शम् = देख-देखकर 'दृश + णमुल्'। प्रसादम् = प्रसन्नता को। आसादयन्तः = प्राप्त करने वाले, 'आ + √षद् + शतृ (प्रथमा, बहुवचन)'। वयस्याः = मित्रगण, वयसि भवाः वयस्याः 'वयस् + यत्'। कटान् = चटाइयों पर, "उपान्वध्याङ्वसः" से अधिवस्' के योग मे द्वितीया हुई है। अध्यवसन् = बैठे थे अधि + √वस् + लङ् (झि)।"

टिप्पणी—(१) 'चन्द्रचुम्बिन्याम्'''अट्टालिकायाम्—चन्द्र चुम्बिनी अटारी (प्रासाद) में अतिशयोक्ति अलङ्कार है। असम्बन्ध में सम्बन्ध का वर्णन किया गया है।

(२) 'खर्वामपि'''कांलतलाघवाम्—इस स्थल में विरोधाभास अलङ्कार है। विरोध प्रकार 'हिन्दी व्याख्या' में दिखाया गया है।

(३) 'कम्बुग्रीवाम्' शङ्ख सदृश कंठ वाली में लुप्तोपमा अलङ्कार है।

(४) 'धारिताकृतिम् इव वीरताम्' तथा 'विग्रहिणीमिव धीरताम् में मूर्तिमती वीरता तथा शरीरधारिणी धीरता की सम्भावना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(५) प्रसाद गुण है।

तेषु च अपजलखान-दमन-विषयकवार्तामारिप्सुष्वेव कश्चिद् वेत्र-हस्तः प्रतीहारः प्रविश्य, वेत्रं कक्षे संस्थाप्य, शिरो नमयित्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा न्यवीविदत्—"प्रभो! श्रीमान् गौरसिंहो दिदृक्षतेऽत्र भवन्तम्" —तदाकर्ण्य "आम् प्रवेशय प्रवेशय" इति सानन्दं सोत्साहं च कथितवति महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डले, प्रतिहारो निवृत्य, सपद्येव तं प्रावीविशत्।

हिन्दी अनुवाद—उन सबके अफजल खाँ के दमन विषयक वार्ता के प्रारम्भ करते ही बेंत को हाथ में लिये हुये प्रतिहारी प्रवेश करके, बेंत को कक्ष (बगल) में दबाकर, शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया—"स्वामिन्! श्रीमान् गौरसिंह आपको देखना चाहते हैं। यह सुनकर—"ठीक है! प्रवेश कराओ" इस प्रकार आनन्द और उत्साहपूर्वक महाराष्ट्र मण्डल से इन्द्र के कहने पर प्रतीहारी ने लौटकर शीघ्र ही गौरसिंह को प्रवेश कराया।

संस्कृत-व्याख्या—तेषु = शिववयस्येषु, अपजलखानदमनविषयकवार्ताम् = अफजलखानविनाशसम्बद्धवृत्तान्तम्, आरिप्सुषु = प्रारम्भं चिकीर्षुषु एव, कश्चिद् = एकः, वेत्रहस्तः = वेत्रधारी, प्रतीहारः = समाचारसंवाहकः, प्रविश्य = शिवस्य समीपे गत्वा, वेत्रम् = वेत्रलताम्, कक्षे = पार्श्वे, संस्थाप्य = संरोप्य, शिरः = मूर्धानम्, नमयित्वा = नमनम् कृत्वा, अञ्जलिम् = हस्तसम्पुटम्, बद्ध्वा = निर्माय, न्यवीविदत् = निवेदितवान्, "प्रभो! = स्वामिन्, गौरसिंहः = तन्नामकः बटुः दिदृक्षते = द्रष्टुमिच्छति, अत्र भवन्तम् = श्रीमन्तम्" तदाकर्ण्य =

एतच्छ्रुत्वा, "आम्=स्वीकृतम्, प्रवेश्य=प्रवेशं कारय", इति=एवम्, सानन्दम्=आनन्दपूर्वकम्, सोत्साहम् उत्साहपूर्वकम्, च कथितवति=उक्तवति, महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले=महाराष्ट्रमण्डलेन्द्रे, प्रतीहारः=सन्देशहरः, सपद्येव=त्वरितमेव, तम्=गौरसिंहम्, प्रावीविशत्=अन्तर्णीतवान्।

हिन्दी व्याख्या—अपजलखानदमनविषयकवार्ताम्=अफजलखाँ के दमन से सम्बन्धित वार्ता को। आरिप्सुषु=प्रारम्भ करने की इच्छा वाले, 'आ+√रभ्+सन्+उ (सप्तमी बहुवचन)। वेत्रहस्तः=हाथ में बेंत लिए हुए। प्रतीहारः=सन्देशवाहक। कक्षे=बगल में। संस्थाप्य=रखकर, 'सम्+√स्था, णिच्+पुक्+ल्यप्'। नमयित्वा=झुकाकर, '√नम्+णिच्+क्त्वा'। अञ्जलिं बद्ध्वा=अञ्जलि बाँधकर अर्थात् हाथ जोड़कर, "√बध्+क्त्वा'। न्यवीविदत्=निवेदन किया—"नि+√विद्+लुङ् (तिप्)'। दिदृक्षते=देखने चाहते हैं। 'दृश्+सन्+लट् (त, आत्मनेपद—'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः)'। प्रवेशय=प्रवेश कराओ। सानन्दम्=आनन्दपूर्वक 'आनन्देन सहितम्' इति सानन्दम्, (अव्ययी०)। सोत्साहम्=उत्साहपूर्वक। कथितवति=कहने पर '√कथ्+क्तवतु (सप्तमी, एकवचन)'। महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले=महाराष्ट्र मण्डल के इन्द्र के। आखण्डल=इन्द्र। निवृत्य=लौटकर। 'नि+√वृत्+ल्यप्। प्रावीविशत्=प्रवेश कराया, 'प्र+√विश्+लुङ्'।

टिप्पणी—महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले='महाराष्ट्रमण्डल के इन्द्र' में श्रेष्ठ-पराक्रमी राजा शिवाजी में इन्द्र का आरोप किया है, अत रूपक अलङ्कार है।●

तमवलोक्यैव "इत इतो गौरसिंह! उपविश, उपविश। चिराय दृष्टोऽसि अपि कुशलं कलयसि? अपि कुशलिनस्तव सहवासिनः? अप्यङ्गीकृतमहाव्रतं निर्वहथ यूयम्? अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः?" इति कुसुमानीव वर्षता पीयूष-प्रवाहेणेव सिञ्चता मृदुना वचनजातेन तत्रभवता शिववीरेणाऽद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानश्च, त्रिः प्रणम्य, अन्तरङ्ग-मण्डली-जुष्ट-कटे समुपविश्य, करौ सम्पुटीकृत्य "भगवन्! अखिलं कुशलं प्रभूणामनुग्रहेणास्माकमखिलानाम्, अङ्गीकृत-महाव्रते च मा स्म पदं धात् कञ्चनान्तराय इत्येव सदा प्रार्थ्यते भगवान् भूत-

नाथः। नूतनः प्रत्नश्च को नामाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च वृत्तान्तः-ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्खलानामुच्छिन्नसच्छीलानां म्लेच्छ-हतकानाम्" इति कथयामास। ततश्च तेषामेवमभूदालापः।

हिन्दी अनुवाद—उसे (गौरसिंह को) देखते ही—"इधर-उधर गौरसिंह। बैठो, बैठो। बहुत समय बाद दिखे हो, कुशल तो है? तुम्हारी सहवासी सकुशल तो हैं? तुम लोग स्वीकृत महाव्रत का निर्वाह तो कर रहे हो? कोई नया समाचार है?" इस प्रकार फूलों की वर्षा सी करते हुये, अमृत प्रवाह से सींचते हुए से महाराज शिवाजी के मृदुवचन से समादृत होता हुआ गौरसिंह तीन बार प्रणाम करके, जिस पर मित्रमण्डली बैठी थी, उसी चटाई पर बैठकर, हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! प्रभु के अनुग्रह से हम सभी पूर्णरूप से कुशल हैं और हमारे स्वीकृत महाव्रत में किसी प्रकार का विघ्न न हो, यही भगवान् भूतनाथ (शङ्कर) से प्रार्थना किया करते हैं। आजकल नया अथवा पुराना वृत्तान्त क्या कथनीय अथवा श्रवणीय हो सकता है—केवल स्वच्छन्द उच्छृङ्खल, शील और सदाचार से रहित दुष्ट म्लेच्छों के दुराचार के अतिरिक्त।" उसके बाद में उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

संस्कृत-व्याख्या—तम् = गौरसिंहम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, एव, इत इते, गौरसिंह = अत्रागच्छ गौरसिंह, उपविश-उपविश = तिष्ठ-तिष्ठ, चिराय = चिरकालात्, दृष्टोऽसि = अवलोकितोऽसि, अपि कुशलं कलयसि? = किमसि कुशली? अपि कुशलिनस्तव सहवासिनः = किं ते सहचराः कुशलिनः सन्ति, अपि = इति प्रश्ने, अङ्गीकृतमहाव्रतम् = स्वीकृतमहाव्रतम्, निर्वहथ = निर्वाहम् कुरुथ, यूयम् भवन्तः? अपि कश्चिन्नूतनोवृत्तान्तः = किमस्ति कश्चिदभिनव-प्रवृत्तिः? इति = एतत्, कुसुमानीव = पुष्पाणीव, वर्षता = वृष्टि कुर्वता, पीयूष-प्रवाहेणेव = अमृतप्रवाहेणेव, सिञ्चता = सरसी कुर्वता, मृदुना = कोमलेन, वचनजातेन = गिरोद्भवेन, तत्रभवता = माननी येन, शिववीरेण = राज्ञा, आद्रियमाणः = समादृतवन्तः, आपृच्छ्यमानश्च = पृष्टः सन्, त्रिः = वारत्रयम्, प्रणम्य = प्रणामं कृत्वा, अन्तरङ्गमण्डलीजुष्टकटे = स्वजनवृन्दमध्युषितकटे, समुपविश्य = स्थितोभूत्वा, करौ = हस्तौ, सम्पुटीकृत्य = एकीकृत्य, भगवन् = श्रीमान्, अखिलम् = सर्वम्, कुशलम् = अनामयम्, प्रभूणाम् = स्वामिनाम्, अनुग्रहेण =